# विषय-सूची


| | | |
|---|---|---|
| मॉडयूल 3 | आधुनिक भारत | |
| पाठ 16 | भारत में ब्रिटिश शासन का संस्थापन 1857 तक | 1 |
| पाठ 17 | ब्रिटिश उपनिवेशवाद का आर्थिक प्रभाव | 19 |
| पाठ 18 | आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन | 31 |
| पाठ 19 | कंपनी शासन का जन विरोध | 48 |
| मॉडयूल 4 | भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन तथा तत्कालीन भारत | |
| पाठ 20 | राष्ट्रवाद | 59 |
| पाठ 21 | राष्ट्रीय आंदोलन तथा भारतीय प्रजातंत्र | 72 |
| मॉडयूल 5 | 20वीं शताब्दी का विश्व | |
| पाठ 22 | 19वीं शताब्दी का महत्त्व | 98 |
| पाठ 23 | प्रथम विश्व युद्ध तथा रूसी क्रांति | 112 |
| पाठ 24 | दोनों विश्व युद्धों के अंतराल का समय व द्वितीय विश्व युद्ध | 125 |
| पाठ 25 | शीत युद्ध व उसके प्रभाव | 148 |
| पाठ 26 | राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन | 166 |
| पाठ 27 | 20वीं शताब्दी में सामाजिक रूपांतरण | 182 |
| पाठ 28 | 20वीं शताब्दी में परिवर्तन | 193 |

■ प्रतिक्रिया पत्र

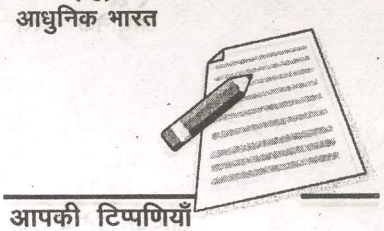



# 16

# भारत में ब्रिटिश शासन का संस्थापन 1857 तक

भारत में अंग्रेजों के औपचारिक शासन से पूर्व भारतीय–यूरोपीय आर्थिक संबंध भी पृष्ठ–भूमि में थे। अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी, जिसे कभी–कभी जॉन कंपनी भी कहा जाता था। सन् 1600 में स्थापित संयुक्त शेयर कम्पनी थी जिसे लंदन के उन व्यापारियों ने स्थापित किया था जो ईस्ट इण्डीज में व्यापार करते थे। इस दौरान अन्य व्यवसायिक कंपनियाँ जैसे पुर्तगाली, डच, फ्राँस, डेनमार्क भी, भारत में अपने प्रभुत्व का विस्तार कर रही थीं। भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी को अपने पाँव पसारने का मौका सन् 1612 में प्राप्त हुआ जब तत्कालीन मुगल बादशाह जहाँगीर ने ब्रिटेन की महारानी एलिज़ाबेथ प्रथम के राजदूत, सर टॉमसरो को सूरत में एक व्यापारिक केन्द्र स्थापित करने का अधिकार दिया। भारत में अंग्रेजीं राज की औपचारिक शुरुआत सन् 1757 में प्लासी के युद्ध के पश्चात् मानी जाती है जब बंगाल के नबाव ने अपने क्षेत्र को अंग्रेजों को समर्पित कर दिया था। इसके पश्चात् एक व्यापारिक कम्पनी धीरे–धीरे राजनीतिक शक्ति में बदलती गई जिसने बाद में भारत में शासन किया। अब उसके पास सहायक सरकार तथा सैन्य शक्तिया थी, जो सन् 1858 में इसके विघटन तक रही, जब अंग्रेजी सरकार ने भारत सरकार अधिनियम 1858 के तहत भारत को अंग्रेजीं सरकार के अधीन कर दिया।

## उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- भारत में राजनीतिक एवं व्यावसायिक क्षेत्र में यूरोपीय साझेदारियों को जान सकेंगे।
- 18वीं शताब्दी में अंग्रेजों एवं फ्रांसीसियों के मध्य संघर्ष के कारणों को पहचान सकेंगे।
- बंगाल में अंग्रेजीं शक्ति के उदय को जान सकेंगे।
- भारत में अंग्रेजीं शक्ति के विस्तार को जान सकेंगे।
- लार्ड वैलेसले द्वारा की गई सहायक संधियों को जान सकेंगे।
- लार्ड डलहौज़ी द्वारा आरम्भ की गई विलय नीति का अध्ययन करके, भारत में अंग्रेजीं शासन के विस्तार के कारणों को जान सकेंगे।

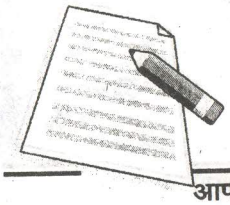

आपकी टिप्पणियाँ

## 16.1 एशिया के साथ यूरोपीय पूर्वी व्यापार का नया चरण

सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी में व्यापारिक मार्गों पर अधिकार स्थापित करने के बावजूद यूरोपीय उस मूल भूत ढाँचे को सुलझा न सके जो बरसों से भारत तथा पश्चिम के साथ व्यापार में चलता चला आ रहा था। यूरोप में भारतीय वस्तुओं की मांग, भारत में यूरोपीय वस्तुओं की माँग की तुलना में कहीं ज़्यादा थी। व्यापारी यूरोप में भारतीय वस्तुओं को बेचकर भारी मुनाफ़ा कमा रहे थे, क्योंकि यूरोपीय वस्तुओं की तुलना में भारतीय वस्तुएं उत्कृष्ट गुणवत्ता तथा कम मूल्य की थीं। इसके फलस्वरूप भारत में यूरोप का धन आने लगा तथा इसने उन यूरोपीय व्यापारियों के समक्ष कड़ी प्रतिद्वन्दिता प्रस्तुत की जो न तो मूल्यों के साथ समता कर सकते थे और न ही भारतीय वस्तुओं की गुणवत्ता का मुकाबला कर सकते थे।

वास्तव में अपनी स्थापना के पहले 50 वर्षों तक अंग्रेजीं ईस्ट इण्डिया कम्पनी की रुचि उपनिवेश के विकास में न होकर व्यापार में ही लगे रहने की थी जैसा कि पुर्तगालियों ने अपना ढाँचा स्थापित किया था। इस ढाँचे में 1650 ई. में बदलाव आया जब पुराने राजभक्त अंग्रेजीं वफादार व्यापारियों की शक्ति छिन्न–भिन्न हो गई तथा व्यापारियों के एक नए वर्ग ने कम्पनी पर अधिकार जमा लिया। उन्होंने अमेरिका तथा वेस्ट इण्डीज़ में उपनिवेशवादी व्यापारियों द्वारा स्थापित ढाँचे का अनुसरण किया तथा इंग्लैण्ड, अफ्रीका तथा भारत को आपस में जोड़ दिया तथा उपनिवेश्कि बस्तियों का जालतंत्र बिछा कर परस्पर संबंधों का जटिल जालतंत्र विकसित किया।

18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मुगल वंश पतन होने लगा। हालांकि इस राजनैतिक निर्वात को बंगाल, हैदराबाद, अवध, पंजाब तथा मराठा वंश जैसी क्षेत्रीय शक्तियों ने भर दिया। किन्तु ये शक्तियाँ भारत में राजनीतिक स्थिरता का माहौल नहीं बना पाई तथा इसने सत्तालोलुप अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी को भारत में अपने पैर पसारने के लिए उपयुक्त अवसर प्रदान किया। अब भारत में शासन करने के लिए औपनिवेशिक मशीनरी के माध्यम से संस्थानों तथा नियमों की आवश्यकता थी। उन्होंने अंग्रेजी साम्राज्य विस्तार के लिए 3 तरीकों को अपनाया। वे थे (i) युद्ध एवं विजय (ii) सहायक सन्धि प्रणाली तथा (iii) विलेय की नीति को अपना कर क्षेत्रों का अधिग्रहण। आरम्भिक तरीके पूर्णतया सैन्य अभियान अथवा राज्यों का प्रत्यक्ष अधिग्रहण था, ये वे क्षेत्र थे जिन्हें पूर्ण रूप से अंग्रेजों का भारत कहा जाता था। कालांत्तर में कूटनीतिक तौर से अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए स्थानीय शासकों से समझौते तथा संधियाँ भी की गई।

### पाठगत प्रश्न 16.1

1. भारत में अपना शासन स्थापित करने के लिए अंग्रेजों ने कौन से तरीके अपनाए?

2. 18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत की प्रमुख क्षेत्रीय राज्यों का नाम लिखें?

## 16.2 दक्षिण भारत में आंग्ल-फ्रांसीसी संघर्ष

अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सिर्फ दो ही यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियाँ भारत में थी। वे अंग्रेजी एवं फ्रांसीसी कम्पनियाँ थीं जो भारतीय संसाधनों का दोहन कर रही थीं। आंग्ल–फ्रांसीसी शत्रुता ने तीन कर्नाटक युद्धों का रूप लेकर अठारहवीं शताब्दी में दक्षिण भारत में अंग्रेजों की विजय के रूप में एक युगांतकारी घटना को जन्म दिया। अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लिए यह आवश्यक हो गया था कि वे फ्रांसीसियों को इस क्षेत्र से समाप्त कर दें। यूरोप में सात वर्षीय युद्ध (1756 1763) के परिणाम स्वरूप भारत में भी अंग्रेजी तथा फ्रांसीसी संस्थान आम प्रतिद्वन्दिता में शामिल हो गए। वांडीवाश के मैदान में तीसरे कर्नाटक युद्ध में फ्रांसीसियों को पराजित कर अंग्रेजों ने एक शताब्दी पुराने संघर्ष पर विराम लगा दिया। इस विजय ने अंग्रेजी व्यापारिक कम्पनी को अन्य यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों के मुकाबले कहीं ऊँची स्थिति प्रदान की। सर आईर कूट द्वारा वांडी वॉश के युद्ध में 1760 में फ्रांसिसियों का दमन किया गया तथा पांडिचेरी को अगले वर्ष अंग्रेजी राज्य का हिस्सा बनाया गया। दक्षिण में डुप्लीकस तथा बसी के द्वारा किए गए कार्य 1760–61 में नष्ट हो गए : भारत में फ्रांसीसी सम्पत्ति पेरिस की संधि–(1763) द्वारा पुनः लौटा दी गई। इस झगड़े को लंदन मे सुलझाकर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पक्ष में निर्णय दिया गया क्योंकि भारत में उनके पास थीं शक्तिशाली नौसेना, प्रगतिशील सैन्य शक्ति, तथा उत्कृष्ट नेतृत्व, इंग्लैंड की सरकार द्वारा मिलने वाला सहयोग तथा बंगाल में नियंत्रण के फलस्वरूप मिले संसाधन। कर्नाटक के संघर्षों की घटनाओं का नतीजा यह हुआ कि भारतीय क्षेत्रीय शक्तियों की दुर्बलताएँ (विशेषकर विशाल सेना के बावजूद छोटी यूरोपीय शक्तियों से निपटने में अक्षमता तथा नौ सैनिक अभियान चलाने में असमर्थता) स्पष्ट हो गई तथा 18वीं शताब्दी के शेष इतिहास पर उसने गंभीर प्रभाव डाला।

### पाठगत प्रश्न 16.2

1. तीसरे कर्नाटक संघर्ष के दौरान कौन से युद्ध ने एक शताब्दी पूर्व के अंग्रेज तथा फ्रांसीसी वर्चस्व के विवाद पर विराम लगाया?

   _____

2. कर्नाटक संघर्षो के परिणामों पर विचार कीजिए?

   _____

3. कर्नाटक युद्ध के संघर्ष में अंग्रेजों की सफलता के क्या कारण थे?

   _____

## 16.3 बंगाल पर अंग्रेजों का अधिकार: प्लासी से बक्सर तक (1757-1765)

किसी प्रमुख भारतीय शक्ति के साथ अंग्रेजों का प्रथम संघर्ष बंगाल का संघर्ष था। 1757 से 1763 के बीच का इतिहास नबावों द्वारा अंग्रेजों को धीरे–धीरे सत्ता के हस्तांतरण का इतिहास है। आठ वर्षों की इस छोटी सी अवधि में, तीन सुल्तानों, सिराज–उद–दौला,

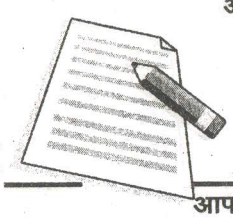

आपकी टिप्पणियाँ

मीर–जाफ़र तथा मीर कासिम नें बंगाल पर शासन किया किन्तु वे नवाबों की प्रभूसत्ता बनाए रखने में असफल रहे। अंततः नबावों के हाथों से फिसलकर सत्ता अंग्रेजों के हाथों में चली गई। व्यापार में एशियाई व्यापारियों के साथ मुकाबला करने में अक्षम रहे अंग्रेजी व्यापारियों ने शक्ति पर ज़ोर दिया तथा प्लासी विद्रोह के जरिए 1757 में बंगाल पर नियन्त्रण स्थापित कर लिया। नतीजा यह हुआ कि बंगाल में विज़य तो प्राप्त की जिसे वह अपनी सेना के प्रयोग के लिए इस्तेमाल करना चाहते थे परन्तु जिस व्यापार के लिए वह सब कुछ करने को लालायित थे उसी व्यापार का पतन हो गया। जब सिराजुद–दौला 1756 में अली वर्दी खान के उत्तराधिकारी के रूप में बंगाल की गद्दी पर बैठा तो व्यापारिक विशेषाधिकार तथा कम्पनी द्वारा उसका दुरुप्रयोग पहले ही संघर्ष का मुद्दा बन चुका था। कम्पनी को मुग़ल बादशाह फ़रुखसियार द्वारा उनके आयात एवं निर्यात के लिए कुछ विशेषाधिकार मिले हुए थे। इस शाही फ़रमान के मुताबिक कम्पनी को मात्र 3,000 रु. चुकाने थे तथा इसके बदले में वे बंगाल में कर मुक्त व्यापार कर सकते थे। कम्पनी के कर्मचारियों ने इस विशेषाधिकार का प्रयोग तटवर्तीय व्यापार के लिए करना प्रारम्भ कर दिया था, अंतः एशियाई तथा आखिर में अंतर्देशीय व्यापार में भी इस फरमान का स्पष्ट उल्लंघन था। नवाब की अनुमति के बगैर कलकत्ते के आसपास दुर्ग का निर्माण, नवाब के अधिकारों को चुनौती देना तथा उनके शत्रुओं को प्रश्रय देने की घटनाओं ने नवाब को कम्पनी के प्रति उकसाने का कार्य किया। कम्पनी के अधिकारियों को यह भी संदेह था कि नबाव बंगाल में फ्रांसीसियों के साथ संधि की तैयारी में है। कलकत्ता पर सिराजुद्दौला के आक्रमण को एक प्रारंभिक विराध संघर्ष के रूप में देखा गया। अंग्रेजी प्रतिक्रिया प्रारंभ हुई नबाव के खिलाफ षड्यंत्र रचने से जिसमें नवाब के करीबी राय दुर्लभ, अमीर चन्द, मीर–जाफ़र तथा जगत सेठ शामिल थे। अतः 1757 में अंग्रेजों की प्लासी युद्ध (23 जून 1757) में विजय पूर्व निर्धारित थी। यह सैन्य शक्तियों की श्रेष्ठता नहीं थी बल्कि वह षड्यन्त्र था जिसने अंग्रेजों को युद्ध जीतने में मंदद की। अंग्रेजों की मदद करने के एवज में नबाव के सेनापति मीर--ज़ाफर को क्लाइव नवाब का पद दिया गया। मीर–ज़ाफर ने कंपनी को उपहार स्वरूप एक करोड़ सत्ततर लाख रू.(1,77,00,000) की धनराशि उपहार में दी तथा कम्पनी अधिकारियों को रिश्वत के रूप में काफी धन दिया। किंतु मीरज़ाफर कम्पनी के अधिकारियों की बढ़ती मांगों को पूरा करने में असफल रहा तथा अंग्रेजों को भी डच कम्पनी के प्रति बढ़ती उसकी नज़दीकियों के प्रति संशय था। प्लासी के युद्ध के बाद नबाव बना सिराजुद्दौला को 1760 में गद्दी से उतार दिया गया तथा अंग्रेजों द्वारा मीर क़ासिम को इस उम्मीद में गद्दी सौंपी गई कि वह उनकी आर्थिक जरूरतों की पूर्ति करेगा। नए नवाब ने उनकी सहायता के बदले कम्पनी को उनके सैन्य खर्चों के लिए वर्द्धमान, मिदनापुर तथा चित्तागोंग का अधिकार दे दिया। इस सन्धि ने अंग्रेजी सेना की फ्रांसीसी सेना के विरूद्ध अभियान में सहायता की (1760–61), मीर कासिम द्वारा दी गई राशि से कलकत्ता परिषद को दक्षिणी युद्ध में वित्तीय सहायता मिली। नवाब को एक बेहतर प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित करने में सफलता प्राप्त हुई किन्तु विशेषाधिकारों के मसले पर जैसे कि कम्पनी द्वारा कर मुक्त निजी व्यापार के मुद्दे पर टकराव होने लगा। प्रत्युत्तर में मीर कासिम ने दो वर्षों के लिए भारतीय तथा अंग्रेजी व्यापार को कर मुक्त कर दिया। इस कदम ने अंग्रेजों के विशेषाधिकार पर चोट की जो उन्होंने खुद के लिए संरक्षित कर रखे थे। वे बराबर शर्तों पर भारतीय उत्पाद का मुकाबला नहीं कर सके। नवाब द्वारा सेना को संगठित करने का प्रयत्न तथा मुर्शिदाबाद से मुंगेर राजधानी स्थानान्तरण को भी कम्पनी के प्रति अपराध के रूप में देखा गया।

जून 1763 में मेजर ऐडमस के नेतृत्व में अंग्रेजी सेना ने बंगाल के नवाब मीर कासिम को पराजित कर दिया। मीरकासिम पटना भाग गया तथा बादशाह शाह आलम द्वितीय एवं शुजा–उद–दौला (जो अवध का नवाब तथा मुगल सल्तनत का वज़ीर था) से सहायता तक ली। झगड़ा एक शिखर तक पहुँच गया जब पटना में कम्पनी के अधिकारियों ने पटना पर आधिपत्य स्थापित करने का प्रयास किया। यह युद्ध का कारण बना। मीरकासिम एक कुशल प्रशासक तो था परन्तु एक योग्य एवं कुशल सेनापति नहीं

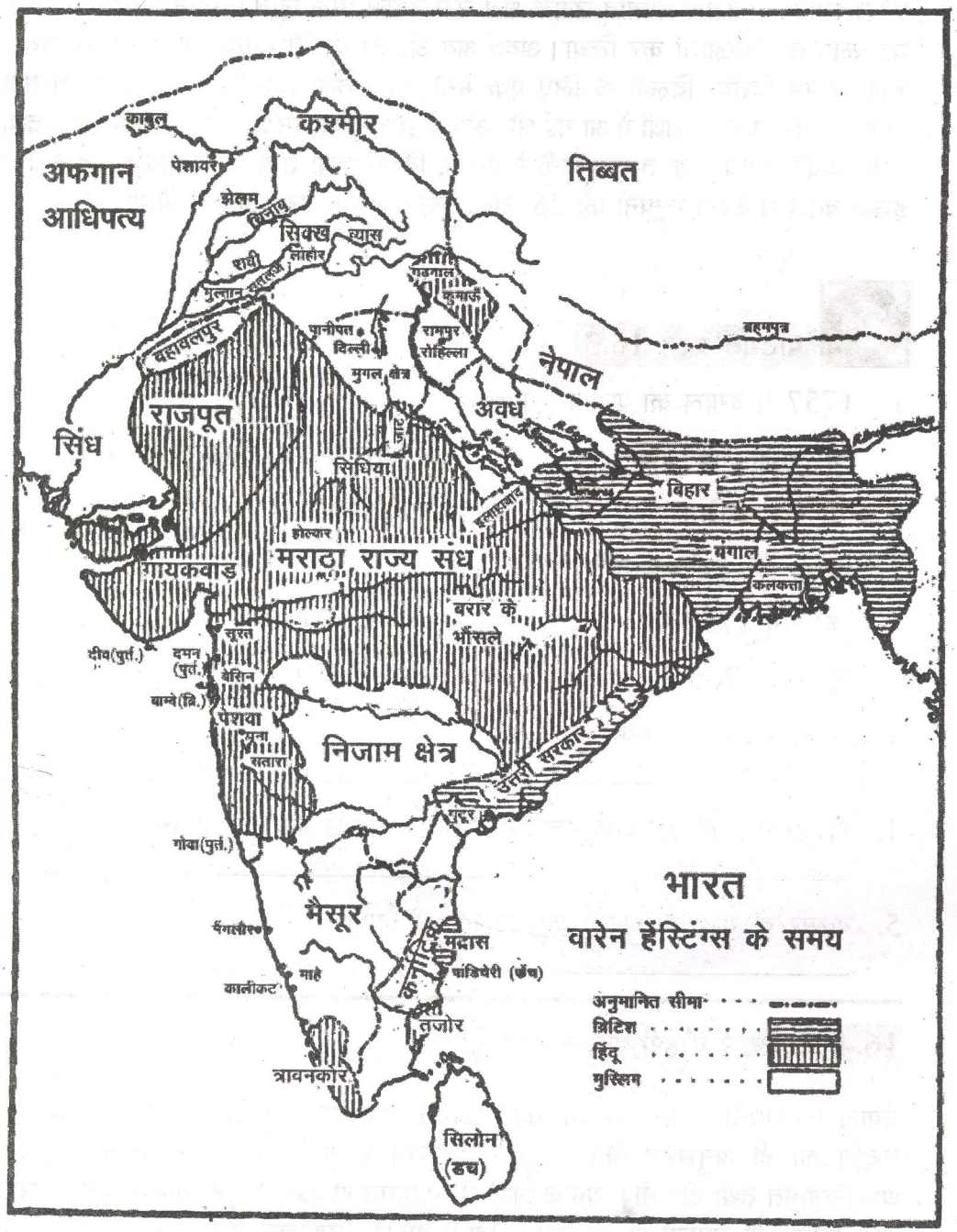


*मानचित्र 16.1 भारत 1783 में*

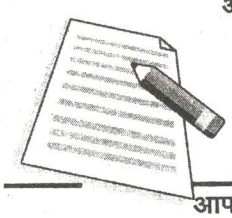

आपकी टिप्पणियाँ

था। अतः उसकी सेना पराजित हुई। जब वह अवध की ओर पलायन करने को बाध्य हुआ तो शाहआलम द्वितीय तथा नवाब वज़ीर अपनी रियासत के पूर्वी सूबों के बचाव में आए। यह संघर्ष पटना तक बढ़ा तथा 22 अक्टूबर 1764 में बक्सर का युद्ध लड़ा गया। बक्सर में भारी विज़य के पश्चात् अंग्रेजी सेना अवध की ओर बढ़ी। नवाब वज़ीर रोहिला क्षेत्र की ओर भाग गया किन्तु शाह आलम द्वितीय ने अंग्रेजों से संधि कर लीं। बंगाल के तत्कालीन अंग्रेज गवर्नर लार्ड क्लाइव ने इलाहाबाद की संधि अवध के नवाब वज़ीर शुज़ा–उद्–दौला से की जिसके तहत उसे युद्ध के खर्चों के रूप में 50 लाख रुपए का भुगतान कम्पनी को करना था, जिसके पश्चात् उसके क्षेत्र उसे वापस मिल जाते। उसने कम्पनी के साथ यह रक्षात्मक समझौता कर लिया। अवध अब अंग्रेजों के लिए मध्यवर्ती राज्य बन गया। शाह आलम द्वितीय दिल्ली के लिए एक भगौड़ा था तथा दिल्ली अब रोहिल्ला शासक नजीब–उद–दौला के हाथों में आ गई थी। अंग्रेजों ने शाह आलम द्वितीय को **कड़ा** किया तथा इलाहाबाद का क्षेत्र दिया तथा कम्पनी ने बंगाल, बिहार, तथा उड़ीसा की दीवानी प्रदान की। इसके बदले में उसने कम्पनी को 26 लाख रुपया वार्षिक देना स्वीकार किया।

### पाठगत प्रश्न 16.3

1. 1757 में बंगाल का शासक था :

   (क) शुजा–उद–दौला (ख) सिराज़–उद–दौला

   (ग) मीर कासिम (घ) मीर ज़ाफर

2. प्लासी का युद्ध कब लड़ा गया–

   (क) सन् 1757 में (ख) सन् 1764 में

   (ग) सन् 1765 में (घ) सन् 1771 में

3. प्लासी के युद्ध के क्या कारण थे?

   _____

4. मीर ज़ाफर को हटाने के पश्चात् 1760 में बंगाल का नवाब कौन बना?

   _____

5. बक्सर के युद्ध के कारणों का उल्लेख कीजिए।

   _____

## 16.4 बंगाल में दोहरी शासन प्रणाली

बंगाल में कम्पनी शासन स्थापना की आरंभिक अवस्था में मुगल साम्राज्य की प्रशासन पद्धति का ही अनुसरण किया। मुगल प्रशासन मुख्यतः दो विभागों में कार्य करता था–निज़ामत तथा दीवानी। व्यापक अर्थों में निज़ामत से अर्थ कानून व्यवस्था एवं प्रशासन तथा फौजदारी मामलों से था तथा दीवानी राजस्व प्रशासन तथा नागरिक कानून से संबंधित थी।

प्रान्तीय सूबेदार निज़ामत का प्रभारी हुआ करता था (उसे नज़ीम भी कहा जाता था) तथा दीवान राजस्व प्रशासन का प्रभारी हुआ करता था। इलाहाबाद की संधि–के उपरांत अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कंपनी को बंगाल का दीवान बनाया गया किन्तु लार्ड क्लाइव ने बंगाल शासन पर प्रत्यक्ष नियंत्रण न लेना ही पसन्द किया। यह जिम्मेदारी नवाब के नायब दीवान तथा नायब नज़ीम मुहम्मद रज़ा खान को सौंपी गई। नायब नज़ीम के तौर पर वह नवाब का प्रतिनिधि था वहीं नायब दीवान के नाते वह कम्पनी का प्रतिनिधित्व भी करता था। इस प्रकार नवाब को ही दीवानी तथा फौज़दारी दोनों ही कानूनों को देखना पड़ता था। हाँलाकि उसे अपना कार्य मुहम्मद रज़ा खान के माध्यम से करना था जो अंग्रेजी कम्पनी के नियंत्रण, निर्देशन तथा निरीक्षण में था। दीवान के तौर पर कम्पनी राजस्व की वसूली प्रत्यक्ष किया करती थी जबकि उप–निज़ाम की नियुक्ति के अधिकार द्वारा वह निज़ामत अर्थात पुलिस/न्यायिक शक्तियों पर नियंत्रण रखती थी। इस व्यवस्था को शासन की दोहरी प्रणाली के रूप से जाना गया। इस प्रणाली के तहत अंग्रेजों के पास बिना किसी ज़िम्मेदारी के शक्ति और संसाधन थे वहीं नवाब के पास बिना शक्ति के शासन चलाने की ज़िम्मेदारी थी। इस प्रकार कुशासन का पूर्ण उत्तरदायित्व नवाब का ही होता था। मुगल बादशाह को अदा की जाने वाली मामूली राशि के बदले में एकत्र राजस्व कम्पनी की आय का एक अनन्य साधन रहा।

### पाठगत प्रश्न 16.4

1. निज़ामत तथा दीवानी को स्पष्ट कीजिए।

   _____

2. दोहरी शासन प्रणाली से क्या तात्पर्य है?

   _____

3. लॉर्ड क्लाइव ने दोहरी या दैद्यात्मक शासन पद्धति की शुरुआत क्यों की?

   _____

## 16.5 विस्तार की विचारधारा-साधन और तरीके

एक व्यापारिक कम्पनी की भूमिका से बदल कर अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी धीरे–धीरे भारत में सर्वोच्च राजनीतिक शक्ति बन गई। कई अन्य क्षेत्रीय शक्तियाँ भी अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधीन हो गई थी। अठारवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मैसूर (आधुनिक कर्नाटक) के महान् शासक हैदर अली तथा उसके पुत्र टीपू सुल्तान ने अंग्रेजी फौज की नाक में दम किए रखा। हैदर अली सन् 1749 से मैसूर की सेना का सेनापति था। 1761 ई0 में वह मैसूर का शासक बना। सन् 1781 में सर आयर कूटी के हाथों पराजित होने तक हैदर ने कम्पनी के खिलाफ अपना संघर्ष जारी रखा। अंततः सन् 1799 में टीपू सुल्तान की वीरगति के पश्चात् मैसूर पर अंग्रेजों का अधिकार स्थापित हो गया। सन् 1772 से 1818 के दौरान हुए अंग्रेज–मराठा युद्ध के चलते मराठा साम्राज्य की शक्ति भी धीरे–धीरे क्षीण होती गई तथा अंत में कुछ मराठा क्षेत्र भी अंग्रेजों के कब्ज़े

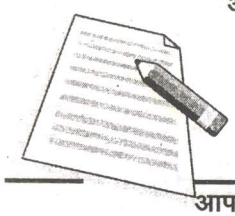

आपकी टिप्पणियाँ

में चले गए। मराठा तथा मैसूर के अभियानों के दौरान आर्थर वेलेज़ली के नेतृत्व में अंग्रेजों ने पूरे दक्षिण भारत (कुछ फ्रांसीसी तथा स्थानीय शासकों की बस्तियों के अतिरिक्त), पश्चिमी भारत तथा पूर्वी भारत के भूभाग पर आधिपत्य स्थापित कर लिया था।

दूसरा तरीका अंग्रेजों तथा स्थानीय शासकों के बीच हुई सहायक संधियों (सनद) का था। इस योजना के चलते आने वाले समय में देशी रियासतों का निर्माण किया गया। सन् 1798 तथा उसके बाद लॉर्ड वेलेज़ली द्वारा सहायक संधि का प्रस्ताव लाया गया। इस संधि के अंतर्गत, अंग्रेजों ने भारतीय रियासतों की बाहरी खतरों तथा आंतरिक विवादों से रक्षा करना स्वीकार किया। जिसके बदले में इस संधि को अपनाने वाले भारतीय शासकों को अंग्रेजी सैन्य दलों की छावनी बनानी थी तथा उसकी देखभाल के लिए उन्हें अंग्रेजों को आर्थिक सहायता प्रदान करनी थी। इस संधि पर हस्ताक्षर करने वाला शासक अंग्रेजों की पूर्वानुमति के बगैर न तो कोई और संधि कर सकता था न ही किसी युद्ध में भाग ले सकता था। इन राज्यों में एक अंग्रेज पदाधिकारी (रेज़ीडेण्ट) की नियुक्ति होती थी जो राज्य के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप कर सकता था। यह व्यवस्था अंग्रेजी विस्तार के लिए वरदान सिद्ध हुई क्योंकि बिना एक भी पैसा खर्च किए अंग्रेजों के पास विशाल सेना उपलब्ध हो गई थी। यहाँ तक कि इस व्यवस्था ने भारतीय दरबार से विदेशी प्रभाव को भी बाहर निकाल दिया। इस संधि में शामिल होने वाला पहला राज्य हैदराबाद था जिसके निज़ाम ने सन् 1798 में इस संधि पर हस्ताक्षर किए। वह अपने दरबार से फ्रांसीसी अधिकारियों को निकालने तथा उनके स्थान पर अंग्रेजी अधिकारियों की नियुक्ति करने को बाध्य हुआ। उसने अंग्रेजी सेना के रखरखाव के लिए बेल्लारी तथा कुडप्पा क्षेत्र अंग्रेजों को प्रदान कर दिये। इस संधि ने महाराजाओं एवं नवाबों की देशी रियासतों का निर्माण किया। इनमें मुख्य थे–कोचीन (1791 जयपुर (1794), त्रावणकोर (1795), हैदराबाद (1798) तथा मैसूर (1799)। जीतें हुए राज्यों में शामिल था उत्तर– पश्चिमी भूभाग (रोहिलखण्ड, गोरखपुर तथा दोआब) 1801, दिल्ली (1803) तथा सिंध (1843)। सन् 1849 में आंग्ल–सिख युद्ध के उपरान्त पंजाब, उत्तर–पश्चिमी सीमा क्षेत्र तथा कश्मीर जीत लिए गए। अमृतसर की संधि (1850) के तहत् कश्मीर–जम्मू डोगरा वंश को बेच दिया गया तथा इस प्रकार वह भी राजसी रियासत हो गया। सन् 1854 में बेरार तथा 2 वर्ष उपरान्त अवध का राज्य भी अंग्रेजी राज्य का हिस्सा बन गया था। सहायक संधि व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य नए राज्यों को अपने नियन्त्रण में लाना तथा फ्रांसीसी शक्ति को घटाना था जिससे अंग्रेज भारत की प्रमुख राजनीतिक शक्ति बन सके।

अंग्रेजों के अधीन होने वाला अन्तिम राज्य पंजाब था जो 1849 में अंग्रेजी राज का हिस्सा बना। यहाँ महाराजा रणजीत सिंह का शासन था जिन्होंने विभिन्न सिक्ख मिसलों को एक राज्य में संगठित कर लिया तथा उन्होंने प्रशासन की आधुनिक पद्धति की स्थापना की थी। उसकी सेना अंग्रेजी सेना के बाद एशिया की दूसरी सबसे बड़ी संगठित सेना थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने महाराजा रणजीत सिंह के साथ दोस्ताना संबंध कायम किये। किन्तु 1839 में उनकी मृत्यु के एक दशक के भीतर ही 2 अंग्रेज–सिख युद्ध हुए तथा अंततः 1849 में पंजाब भी अंग्रेजी राज्य का हिस्सा बन गया।

**राज्य विलेय नीति** लॉर्ड डलहौजी (जो कि भारत में 1848 से 1856 तक कम्पनी का गवर्नर था) द्वारा लाई गई अधिग्रहण नीति थी। उन दिनों भारतीय राजाओं में प्राकृतिक उत्तराधिकारी, अर्थात् पुत्र के न होने की स्थिति में अपने राज्य की सुरक्षा के लिए बच्चा

गोद लेने का चलन था। (दत्तक पुत्र गोद लेने का चलन था।) किन्तु राज्य विलेय नीति के तहत् कोई भी भारतीय राज्य जो या तो अंग्रेजी राज्य के अधीन था या उसके द्वारा ब्रिटिश अधनिस्थ प्रणाली के सहायक राज्य के रूप में निर्मित थे, वे शासक के अक्षम होने की स्थिति या उसके पुत्र न होने की स्थिति में ब्रिटिश राज्य के अधीन हो जाएंगे। इस प्रकार भारतीयों द्वारा उत्तराधिकारी न होने की स्थिति में उत्तराधिकारी चयन करने की सर्वोच्चता को ही समाप्त नहीं किया बल्कि अंग्रेजों ने भारतीय शासकों की क्षमताओं को आँकने का भी अधिकार हासिल कर लिया।

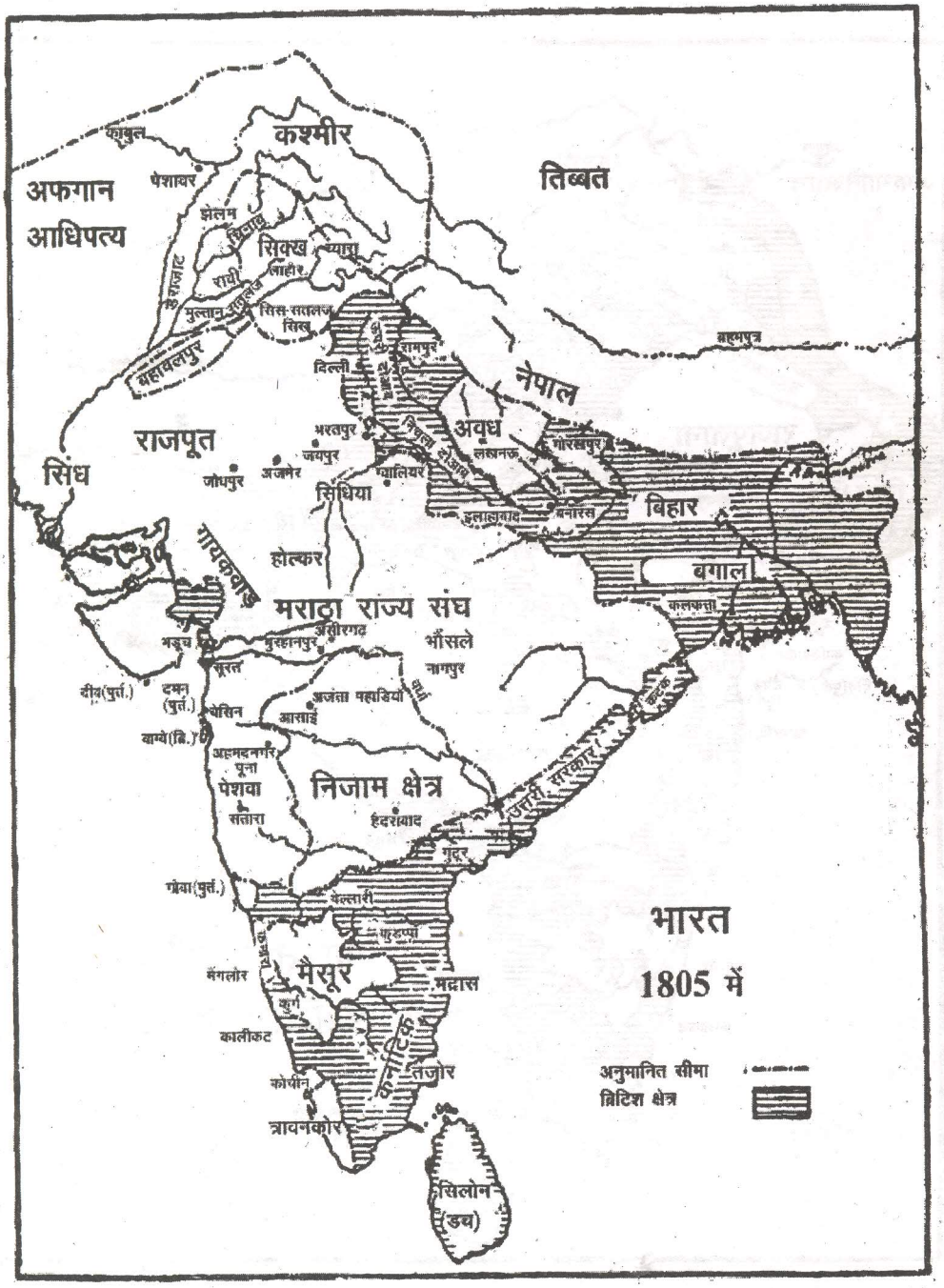


*मानचित्र 16.2 भारत 1797–1805*



HINDI BOOK 2

चूंकि की इस नीति के लागू करने के साथ ही अंग्रेजों ने इस उपमहाद्वीप पर पूर्ण तथा प्रभावी प्रशासनिक नियंत्रण स्थापित कर लिया। इस सिद्धान्त के उपयोग द्वारा सतारा, जयपुर, संभलपुर, नागपुर तथा झाँसी जैसी रियासतों को अंग्रेजों ने विलेय कर लिया था। अक्सर अंग्रेजों द्वारा किये गये रियासतों के अधिग्रहण को न्यायसंगत ठहराया जाता था कि शासक अयोग्य है तथा प्रजा के कल्याण के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी को निभा नहीं पा रहा है जैसा कि अवध के नवाब के साथ 1850 में किया गया।

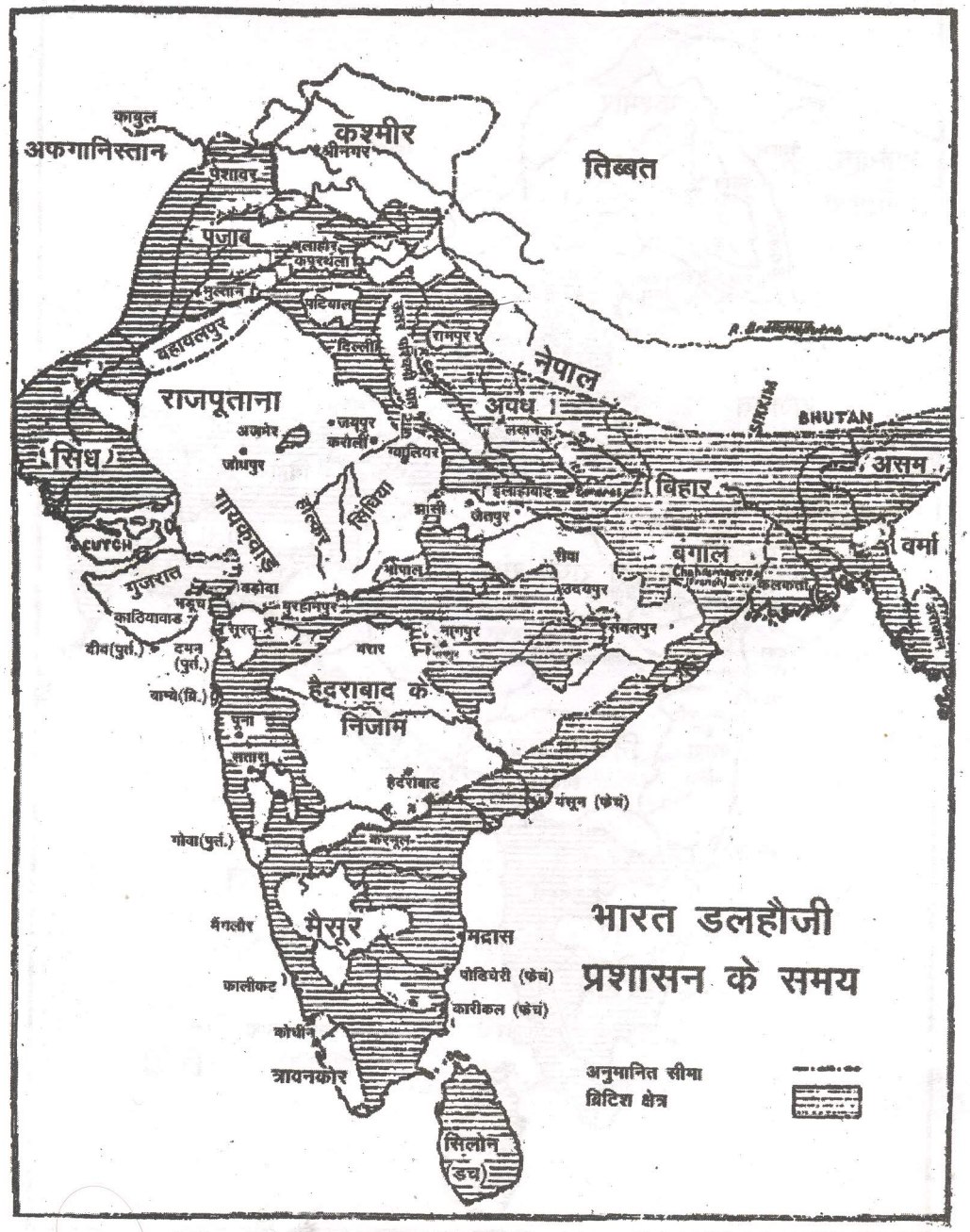


*मानचित्र 16.3 भारत–1857*

## पाठगत प्रश्न 16.5

1. भारत में अंग्रेजी राज्य के विस्तार के लिए लॉर्ड वेलेज़ली द्वारा कौन से उपाय किये गये।

2. सहायक संधि से आप क्या समझते है?

3. लॉर्ड डलहौजी की राज्य विलेय नीति को स्पष्ट कीजिए।

## 16.6 औपनिवेशिक प्रशासनिक प्रणाली का विकास

सन् 1757 में कम्पनी के एक बड़ी राजनीतिक शक्ति के रूप में स्थापित होने के पश्चात् संवैधानिक परिवर्तनों की आवश्यकता महसूस हुई। कम्पनी के मामलों को अनियंत्रित छोड़ने में अब अंग्रेजी सरकार इच्छुक नहीं थी। व्यापारियों तथा उत्पादकों की तरफ से कम्पनी का एकाधिकार समाप्त करने का दबाव बढ़ता ही जा रहा था। सरकार द्वारा बंगाल में फैलाए भ्रष्टाचार को लेकर जनता आक्रोश में थी। मुक्त व्यापार मुख्य माँग थी। अंग्रेजी संसद ने कई अधिनियम लागू किए जिनमें सबसे पहले 1773 का रेग्युलेटिंग एक्ट आता है, जो कम्पनी के व्यापारियों की उन्मुक्त गतिविधियों पर लगाम लगाने पर कम्पनी के अधिनस्थ क्षेत्रों में कुछ कानून लागू करने से संबंधित था। कम्पनी के शासन की अवधि को 20 वर्ष तक सीमित कर तथा उसके बाद समीक्षा करने का निर्णय लेकर इस अधिनियम ने बंगाल, मुम्बई तथा मद्रास क्षेत्रों पर सर्वोच्च अधिकार अंग्रेजी सरकार को दे दिया। इस अधिनियम ने इन तीनों क्षेत्रों को बंगाल के गवर्नर के अधीन संयुक्त कर भारत में एकीकृत प्रशासन व्यवस्था की शुरुआत की। बंगाल का गर्वनर अब गवर्नर जनरल कहलाता था। वारेन हेस्टिंग्स पहला गवर्नर जनरल था (1773.1785)। पिट्स इंडिया एक्ट (1774) को आधी–अधूरी व्यवस्था कहा जाता है। क्योंकि इसने संसद तथा कम्पनी के बोर्ड अधिकारियों की मध्यस्थता का प्रयास किया, बोर्ड ऑफ कंट्रोल (नियंत्रण बोर्ड) की स्थापना कर संसद के प्रभाव में वृद्धि की जिसके सभी सदस्य ब्रिटिश मत्रिमंड़ल से चुने जाते थे। एक गवर्नर जनरल के रूप में लॉर्ड कार्नवालिस ने कंपनी के प्रशासन को व्यावसायिक, अफ़सरशाही तथा यूरोपीय रुप प्रदान किया (1786.1793)। उसने कम्पनी के कर्मचारियों द्वारा व्यापार को गैरकानूनी घोषित किया, व्यापारिक तथा प्रशासनिक कार्यों को पृथक किया तथा कंपनी के कर्मचारियों के वेतन में सुधार किया।

राजस्व संग्रह कम्पनी का मुख्य प्रशासनिक कार्य बन गया था। अतः लॉर्ड कार्नवालिस ने बंगाल में जमीन का कानूनी स्वामित्व जमींदारों को प्रदान किया। बदले में जमींदार सरकार को एक निश्चित राजस्व एक निर्धारित तारीख पर चुकाते थे। यह व्यवस्था हमेशा के लिए चलनी थी अतः इसे 'स्थाई बंदोबस्त' का नाम दिया गया। इस व्यवस्था को जमींदारी व्यवस्था के नाम से जाना गया। इस व्यवस्था का तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि अब जमींदार भूमि के मालिक हो गए, किसान अपनी ही जमीन पर किराएदार हो गया। और तो और जमीन अब क्रय विक्रय की सम्पत्ति हो गई तथा शासन को कृषि संबंधी विस्तार तथा

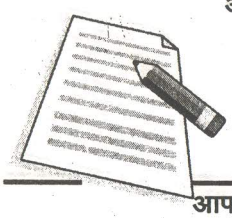

आपकी टिप्पणियाँ

विकास से प्रतिबंधित कर दिया गया। हालाँकि मुम्बई तथा मद्रास में रैयतवाड़ी बंदोबस्त अमल में लाया गया जिसमें किसान एक मुश्त रकम सीधे सरकार को देते थे।

1813 ई. के चार्टर एक्ट ने भारत के साथ व्यापार पर कम्पनी का एकाधिकार समाप्त किया। राजस्व, प्रशासन तथा नियुक्ति के क्षेत्र हालाँकि कम्पनी के नियंत्रण में ही रहे। 1833 के चार्टर एक्ट ने चीन के साथ कम्पनी के व्यापार के एकाधिकार पर विराम लगाया। इस एक्ट ने गर्वनर जनरल तथा उसकी सलाहकार परिषद् से कानून बनाने की शक्ति, तथा विधायी से संबंधी शक्तियाँ छीन लीं।

अंग्रेजी क्षेत्र के विस्तार तथा बढ़ती प्रशासनिक आवश्यकताओं को देखते हुए नौकरशाही की आवश्यकता थी जो अंग्रेजी आधिपत्य क्षेत्रों को नियंत्रित कर सके। सन् 1785 में लॉर्ड कार्नवालिस ने कम्पनी के अधिकारियों को एक पेशेवर संगठन में ढाला जिन्हें अच्छा वेतन मिलता था, भारत में जो न तो निजी व्यवसाय करते थे तथा न उत्पादन में उनके कोई स्वार्थ थे। वे नियमित पदोन्नति तथा पेंशन के भी हकदार हुआ करते थे। सभी उच्च पद अंग्रेजों के ही लिए आरक्षित होते थे तथा भारतीय उनसे बहिष्कृत थे। कॉर्नवालिस ने बंगाल के हर ज़िले के लिए अंग्रेजी न्यायाधीशों की तथा राजस्व संग्रह के लिए अंग्रेजी राजस्व क्लेक्टरो को नियुक्त किया। सन् 1806 से कम्पनी ने अपने युवा अभ्यर्थियों को लंदन के निकट हेलीबॅरी कॉलेज में प्रशिक्षण प्रदान करना प्रारंभ किया। नियुँक्तियाँ हालाँकि संरक्षणात्मक व्यवस्था के अंतर्गत ही होती थी। सन् 1829 में पूरे ब्रिटिश भारत में छोटे छोटे जिलों की स्थापना कर इस प्रणाली को सुदृढ़ किया गया क्योंकि एक ही व्यक्ति जो कि राजस्व संग्रहक, न्यायाधीश तथा पुलिस प्रमुख का दायित्व संभाले था, वे पूर्ण निरंकुश ढंग से कार्य करते थे। 1833 के उपरांत कम्पनी अपने मनोनीत अभ्यर्थी प्रतियोगिओं में से परीक्षाओं द्वारा चुनती थी। सन् 1853 के पश्चात् इनका चयन परीक्षा के द्वारा योग्यता के आधार पर किया जाने लगा जिसमें कोई भी ब्रिटिश उम्मीदवार भाग ले सकता था। भारतीय नागरिक सेवाएं (i) अत्याकर्षक वेतन प्रदान करने वाली, (ii) इनके पास इतने राजनीतिक अधिकार थे जिसकी इंग्लैण्ड में कोई भी अफसर कल्पना नहीं कर सकता था।

## पाठगत प्रश्न 16.6

1. ईस्ट इण्डिया कम्पनी की गतिविधियों को नियंत्रित करने के लिए ब्रिटिश संसद ने सर्वप्रथम कौन सा अधिनियम लागू किया था?

   _____

2. बंगाल का प्रथम गवर्नर जनरल कौन था?

   _____

3. चार्टर एक्ट 1833 की मुख्य विशेषताएं क्या थी?

   _____

4. लंदन के निकट कौन से कॉलेज में कंपनी के अधिकारियों को प्रशिक्षण प्राप्त होता था?

   _____

## 16.7 न्यायिक संगठन

अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक अंग्रेज बंगाल, कलकत्ता तथा बम्बई जैसे प्रमुख क्षेत्रों में अपनी पैठ बना चुके थे। साथ ही साथ यहीं पर अंग्रेजी न्यायिक व्यवस्था का भी उदय हुआ। बम्बई, कलकत्ता तथा मद्रास में सन् 1727 में दीवानी मुकदमों के लिए महापौर न्यायालयों की स्थापना हुई। सन् 1772 में एक व्यापक न्यायिक व्यवस्था, जिसे अदालत कहा गया, की स्थापना दीवानी तथा फ़ौजदारी न्याय क्षेत्रों के लिए हुई। अपने–अपने रूढ़िगत कानूनों की जानकारी उपलब्ध कराने के लिए हिन्दू पंडित तथा मुस्लिम काज़ियों (शरीय कानून–न्यायाधीश) की नियुक्ति की गई, किन्तु व्यापक स्तर पर अंग्रेजी सामान्य तथा वैधिक कानून ही लागू हुआ करते थे। भारत में पूरी अंग्रेजी न्याय प्रणाली में दो मूल सैद्धान्तिक नियम निरुपित हुए थे–कानून का शासन (Rule of Law) तथा कानून के समक्ष समानता (Equality before Law)। अतः सिद्धांत के अनुसार कानून सर्वोपरि था (कुछ नियम जो अधिकारों, विशेषाधिकारों तथा कर्तव्यों की व्याख्या करते थे, तथा सभी नागरिक चाहे वो किसी भी धर्म, जाति या वर्ग के हों, कानून के समक्ष समान थे। बन्दी प्रत्यक्षीकरण याचिका के सिद्धांत ने यह स्पष्ट किया कि स्थानीय अधिकारी अथवा न्यायिक प्राधिकरण के लिखित आदेश के बगैर किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार कर जेल में नहीं डाला जा सकता था। यहां तक कि सरकारी कर्मचारियों को भी उनके कृत्यों के आधार पर कानून की परिधि में चुनौती दी जा सकती थी। कानून के शासन (Rule Of Law) की स्वाभाविक परिणिति कानून के समक्ष समानता थी जो कानून का शासन (Rule Of Law) का अनुसरण करती थी। कानून के समक्ष समानता, जातियों में बंटे भारतीय समाज के लिए आदर्श कानून बनकर आया।

रेग्युलेटिंग एक्ट (1773) के तहत् कांउसिल में सम्राट द्वारा कलकत्ता के प्रेसीडेंसी शहर में एक सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की गई। इस अधिनियम के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय के पास बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा में सभी प्रकार के न्याय क्षेत्रों को देखने का अधिकार था, सिर्फ एक अपवाद के अतिरिक्त, उन परिस्थितियों में विवादित राशि रू. 4,000. से अधिक होती थी, तो उनके न्याय के लिए लंदन की प्रीवीकाउन्सिल में अपील की जा सकती थी। मद्रास तथा बम्बई में अतंत क्रमशः 1801 तथा 1823 में सर्वोच्च न्यायालयों की स्थापना हुई।

लॉर्ड कॉर्नवालिस ने जिला स्तर पर कार्यकारी तथा न्यायिक कर्तव्यों को अलग–अलग किया, सदर दीवानी अदालत दीवानी मामलों में अपील करने वाली सर्वोच्च संस्था थी, जिसके अधीन दीवानी अपील के चार प्रान्तीय न्यायालय कलकत्ता, ढाका, मुर्शिदाबाद तथा पटना थे। तत्पश्चात् स्थानीय स्तर पर जिला न्यायालय, रजिस्ट्रार न्यायालय तथा कई अधिनस्थ न्यायालय थे जो पदानुक्रमानुसार थे। कई फौजदारी आपराधिक मामलों को सुलझाने में सक्रिय थे, जो कि सर्कट न्यायालय कलकत्ता, ढाका, मुर्शिदाबाद तथा पटना के अधिकार क्षेत्र में आते थे, जो कलकत्ता की सदर निज़ामत अदालत द्वारा नियंत्रित होते थे। सन् 1831 में विलियम बेन्टिंक ने इन चारों प्रान्तीय न्यायालयों को समाप्त कर उनके कार्य को जिलाधिकारियों तथा आयुक्तों में वितरित कर दिया।

आपकी टिप्पणियाँ

## पाठगत प्रश्न 16.7

1. कानून का शासन (Rule Of Law) तथा कानून के समक्ष समानता (Equality before Law) को स्पष्ट कीजिए?

2. सन् 1773 में रेग्युलेटिंग एक्ट के तहत् किस जिले में सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना हुई?

अतः निष्कर्ष स्वरूप भारत पर अंग्रेजी शासन ने भारतीय इतिहास के रुख को बदल दिया। अंग्रेज भारत में सत्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ में आए। अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना एशिया में व्यापार पर एकाधिकार को लेकर हुई। भारत में व्यापारिक अधिकारों को प्राप्त करने के लिए, अंग्रजों ने कई भारतीय रियासतों का अधिग्रहण किया तथा अपने नियमों तथा नीतियों की स्थापना की। शीघ्र ही सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप अंग्रेजी शासन के अधीन हो गया। हालाँकि उसकी नीतियाँ भारतीयों द्वारा पसन्द नहीं की गई तथा उन्होनें मिलकर कम्पनी के खिलाफ 1857 में विद्रोह किया। इसने कम्पनी के शासन को समाप्त किया तथा भारतीय शासन ब्रिटेन की महारानी के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में चला गया। 1858 के इण्डियन गवर्नमेंट एक्ट भारत सरकार अधिनियम के अनुसार कम्पनी के शासन के स्थान पर ब्रिट्रेन के राजवंश का शासन भारत में कायम हुआ।

## आपने क्या सीखा

आपने भारतीय उपमहाद्वीप पर अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन की स्थापना के विषय में पढ़ा। आपने पढ़ा कि किस प्रकार 1757 में प्लासी के युद्ध के पश्चात्, बंगाल के नबाब ने अंग्रेजी सेना के समक्ष अपने अधिकार क्षेत्रों का समर्पण कर दिया, तथा सन् 1765 में जब कम्पनी को बंगाल तथा बिहार की दीवानी अर्थात राजस्व संग्रह के अधिकार की प्राप्ति, अथवा सन् 1772 में जब कम्पनी ने कलकत्ता में अपनी राजधानी की स्थापना कर प्रथम गवर्नर जनरल वॉटेन हेस्टिंस की नियुक्ति कर शासन में प्रत्यक्ष रुप से लिप्त हो कर किस प्रकार अंग्रेजी शासन का विस्तार हुआ। यह प्रक्रिया भारत के अन्य हिस्सों में भी चलती रही। अंग्रेजी सरकार के विस्तार एवं संस्थापना ने सहायक संधि व्यवस्था, तथा डलहौजी की राज्य विलेय नीति के तहत् अधिग्रहण नीति का सहारा लिया। इस अध्याय में भारत में 1858 से पूर्व ब्रिटिश प्रशासनिक तथा न्यायिक संस्थाओं की संस्थापना को भी बतलाया है। अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन 1858 तक चला जब गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट 1858 के परिणाम स्वरूप ब्रिटिश सरकार ने भारत का प्रत्यक्ष नियन्त्रण अपने हाथ में ले लिया।

## पाठांत प्रश्न

1. भारत में अंग्रेजों ने सर्वोच्चता कैसे प्राप्त की?
2. लॉर्ड वेलेज़ली ने ब्रिटिश शक्ति का विस्तार किस प्रकार किया? सहायक संधि के गुण–दोषों की व्याख्या कीजिए।
3. भारत में अंग्रेजी राज्य के विस्तार के लिए डलहौज़ी द्वारा अपनाई गई नीति की विस्तृत जानकारी दीजिए।
4. भारत में ब्रिटिश न्यायिक संगठन का वर्णन कीजिए।

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

### 16.1

1. अंग्रेजों ने, i. युद्ध तथा विजय, ii. सहायक संधि व्यवस्था तथा, iii. राज्य विलेय नीति के तहत राज्यों का अधिग्रहण कर ब्रिटिश शासन का विस्तार किया।
2. बंगाल, मैसूर, हैदराबाद, अवध, पंजाब तथा मराठा साम्राज्य।

### 16.2

1. जनवरी 1760 में वांडी वाश का युद्ध
2. अंग्रेजी सर्वोच्चता स्थापित हुई तथा भारतीय क्षेत्रीय शक्तियों का नौसैनिक हस्तक्षेप में असमर्थता, बड़ी सेनाओं के होते हुए छोटी यूरोपीय शक्तियों को रोकने में अप्रभावी रहना इत्यादि दुर्बलताएँ और अधिक स्पष्ट हुईं।
3. भारत में हुए कर्नाटक युद्धों में अंग्रेजी सफलता के मुख्य कारण थे–भारत में उनकी सुदृढ़ नौ–शक्ति, अच्छा नेतृत्व तथा प्रगतिशील सैन्य शक्ति, इंग्लैण्ड की सरकार से मिला कम्पनी को सहयोग तथा बंगाल के संसाधनों पर अधिकार।

### 16.3

1. सिराज–उद–दौला
2. (क) 1757
3. जून 1756 में सिराजुद्दौला का कलकत्ते के कोर्ट विलियम पर आरम्भिक आक्रमण तथा कब्ज़ा, भारत में मुगल शाही निर्यात व्यापार दस्तकों जो 1717 में ब्रिटिश को दिए गए आंतरिक व्यापार के लिए, का गैरकानूनी प्रयोग, नवाब के दरबार में अंग्रेजी हस्तक्षेप, तथा नवाब की अनुमति के बगैर कोर्ट विलियम किले की किलेबन्दी एवं शस्त्रीकरण।
4. मीर कासिम

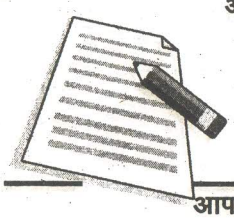

आपकी टिप्पणियाँ

5. अंग्रेजी तथा भारतीय व्यापारियों के लिए समान व्यापार कर तथा नवाब द्वारा मुर्शिदाबाद से मुंगेर राजधानी स्थानान्तरण एवं सेना पुर्नसंगठन मीर कासिम को पदच्युत करने के मुख्य कारण थे जिसकी परिणिती अन्ततः बक्सर के युद्ध में हुई।

## 16.4

1. निज़ामत से अभिप्राय है: कानून व व्यवस्था का प्रशासन तथा फौज़दारी मामलों का निपटारा; दीवानी का अर्थ राजस्व प्रशासन तथा नागरिक न्याय।
2. कम्पनी का दीवान होने के नाते वह राजस्व इकट्ठा करता था, नवाब का डिपटी नवाब होने के नाते वह निज़ामत या पुलिस अथवा न्यायिक शक्तियों का नियंत्रण करता था।
3. कम्पनी बंगाल के प्रशासन् की जिम्मेदारी को प्रत्यक्ष रुप से नहीं लेना चाहती थी। वह तो राजस्व इक्ट्ठा करने की ही इच्छुक थी।

## 16.5

1. सैन्य अभियान तथा सहायक संधि व्यवस्था।
2. इस व्यवस्था के तहत्, अंग्रजों के अधीन भारतीय शासकों को अपने राज्य में अंग्रेजी सेना का रख रखाव करना पड़ता था। तथा इन सेनाओं के लिए भुगतान करना पड़ता था। उन्होंने अपने बाह्य मामलों का नियंत्रण ब्रिटिश को सौंप दिया। जिसके बदले में ईस्ट इण्डिया कम्पनी उनके प्रतिद्वन्दियों से उनकी रक्षा करती थी।
3. राज्य विलेय नीति, लॉर्ड डलहौजी द्वारा लागू की गई अधिग्रहण नीति थी। कोई भी भारतीय राज्य, जो अंग्रेजी अधीनस्थ व्यवस्था के तहत् दास राज्य के रूप में अंग्रेजों के प्रत्यक्ष नियंत्रण में हो या अंग्रेजों द्वारा निर्मित हो, शासक का पुत्र न होने की स्थिति तथा उसके अक्षम होने की स्थिति में अपने आप ही ब्रिटिश राज्य के अधीन हो जाएगा।

## 16.6

1. 1773 का रेग्युलेटिंग एक्ट
2. वारेन हेस्टिंग्स
3. 1833 के चार्टर अधिनियम में चीनी व्यापार पर कम्पनी के एकाधिकार को समाप्त किया।
4. हेलीबरी कॉलेज।

## 16.7

1. कानून का शासन (Rule of law) तथा कानून के समक्ष समानता (Equality before law) का अर्थ था कि कानून से बढ़कर कोई नही है (कुछ नियम जिनमें अधिकार, विशेषाधिकार तथा कर्तव्यों की व्याख्या की गई थी) तथा सभी नागरिक वे किसी भी धर्म, जाति, या हैसियत के हों कानून के समक्ष बराबर हैं।
2. कलकत्ता का प्रेसीडेंसी शहर

आपकी टिप्पणियाँ

## पाठगत प्रश्नों के संकेत

1. देखें उपखंड 1.2
2. देखें उपखंड 1.5, अनुच्छेद 1–2
3. देखें उपखंड 1.5, अनुच्छेद 4
4. देखें उपखंड 1.7

## शब्दावली

1. **ईस्ट इंडिया कंपनी**
   सन् 1600 में स्थापित संयुक्त–शेयर कम्पनी थी क्योंकि कम्पनी के व्यापारी लंदन से भारत में व्यापार करने आए थे। आरम्भ में व्यापार में संलग्न यह कम्पनी भारत में 1858 तक शासन करती रही।
2. **द्वैद्यात्मक अथवा दोहरा प्रशासन**
   बक्सर के युद्ध के पश्चात् यह व्यवस्था बंगाल में लागू हुई। बंगाल के दीवान के रूप में कम्पनी राजस्व की प्रत्यक्ष वसूली करती थी जबकि निज़ामत या पुलिस तथा न्यायिक शक्तियाँ नवाब के पास ही रही।
3. **सहायक सन्धि व्यवस्था**
   भारतीय रियासतों को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित करने के उद्देश्य से लॉर्ड वैलेस्ले ने सहायक संधि व्यवस्था लागू की। इस सिद्धान्त के तहत् अंग्रेजी शासन के अधीन देशी राज्यों को अपनी सेना के बजाय अंग्रेजी सेना की अपने राज्य में देखभाल/रखरखाव करना पड़ता था। अपने बाह्य मामलों के लिए उन्हें अंग्रेजी सरकार पर निर्भर रहना पड़ता था जिसके बदले में ईस्ट इण्डिया कम्पनी प्रतिद्वन्दियों से उनकी रक्षा करती थी।
4. **राज्य विलेय नीति**
   भारत के गर्वनर जनरल लॉर्ड डलहौजी द्वारा प्रस्तावित यह नीति अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा लाई गई अधिग्रहण नीति थी। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत अंग्रेजी राज्य के अधीन सभी भारतीय रियासतें स्वतः ही अंग्रेजी राज्य का हिस्सा बन जाएंगी यदि या तो शासक अक्षम हो, अयोग्य हो या बिना उत्तराधिकारी के मृत्यु को प्राप्त हो गया हो।
5. **चार्टर एक्ट**
   ईस्ट इंडिया कम्पनी की गतिविधियों को नियन्त्रित करने के लिए अंग्रेजी संसद में चार्टर एक्ट पास किया गया जिसमें कम्पनी को कई व्यापारिक विशेषाधिकार तथा 1858 तक भारत पर शासन करने का अधिकार प्रदान किया गया। 1793 में पारित चार्टर एक्ट के अनुसार कम्पनी को भारत में शासन करने के लिए 20 वर्ष के लिए अधिकार दिया गया। तत्पश्चात् क्रमशः 1813, 1833 तथा 1853 में यह अधिनियम संशोधित हुआ।
6. **कानून का शासन**
   इसका अर्थ था कि कानून सबसे ऊपर है। कोई भी कानून से बढ़कर नहीं है एवं यह सब पर लागू होता हैं। चाहे शासक हो या प्रजा, सरकार या नागरिक, कोई भी

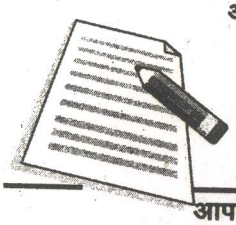

आपकी टिप्पणियाँ

कानून से ऊपर नहीं है तथा कानून से मुक्त कोई नहीं है तथा कानून की परिधि में कोई भी छूट का हकदार नहीं है।

7. **कानून के समक्ष समानता**

कानून के समक्ष समानता के सिद्धान्त के अनुसार कानून के सामने हर कोई बराबर था, किसी को कोई कानूनी विशेषाधिकार प्राप्त नहीं था। कानूनी समकक्षता ने जाति, धर्म तथा वर्ग से परे कानूनी कार्यवाई को जन्म दिया।

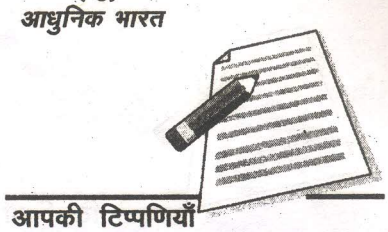



# 17

# ब्रिटिश उपनिवेशवाद का आर्थिक प्रभाव

अपने भारतीय उपनिवेश के साथ ब्रिटेन का संबंध राजनीतिक सहयोगी के समान था किन्तु इस रिश्ते का केन्द्र बिन्दु आर्थिक शोषण बन गया था। उपनिवेशवाद की प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य था अपने राष्ट्र को लाभ पँहुचाना, भले ही वह उपनिवेश की कीमत पर हो। इस अध्याय में हम उपनिवेशवाद की प्रक्रिया के अन्तर्गत होने वाले आर्थिक शोषण के विविध पहलुओं के बारे में चर्चा करेंगे।

## उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद की प्रक्रिया के तीन चरणों को जान सकेंगे;
- भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में उपनिवेशीय राजस्व समझौते के द्वारा आए परिवर्तनों को समझ सकेंगे;
- उपनिवेशों में किए जा रहे उपनिवेशी–पूंजीवादी–परिवर्तनों के मिश्रित प्रभावों का विश्लेषण कर सकेंगे;
- पूर्ववर्ती राष्ट्रवादियों द्वारा बतलाए गए 'संपत्ति के प्रवाह' सिद्धान्त की व्याख्या कर सकेंगेः
- उपनिवेश में उपनिवेशवादी आधुनिकता की भिन्न प्रकृति को समझ सकेंगे तथा यह भी समझ सकेंगे कि प्रगति आवश्यक रुप से इसका परिणाम नहीं थी।

### ब्रिटिश उपनिवेशवाद के चरण

औपनिवेशिक शोषण मुख्यतः तीन चरणों में विकसित हुआ। 'वाणिज्यवाद' का **प्रथम चरण** (1757-1813) एक तरह की प्रत्यक्ष लूटपाट थी, जिसमें कि अतिरिक्त भारतीय राजस्व का प्रयोग इंग्लैण्ड निर्यात किये जाने के लिए, भारतीय तैयार उत्पादों को खरीदने के लिए किया जाता था। **द्वितीय चरण** (1813-1858) 'मुक्त व्यापार' था जिसमें भारत कच्चे माल के स्रोत के रूप में परिवर्तित हो गया तथा ब्रिटेन के उत्पादों का एक बाज़ार बन गया। **तीसरा चरण** (1858 से आगे) 'आर्थिक साम्राज्यवाद' का था जिसमें ब्रिटिश पूँजी ने भारत के बैंकों, विदेशी व्यापारिक संस्थाओं तथा प्रबंध संस्थानों को नियंत्रित

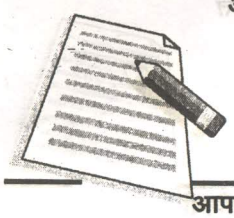

आपकी टिप्पणियाँ

किया। इस चरण में मुख्यतया उपनिवेशवादी अर्थव्यवस्था के औद्योगिक तथा कृषि क्षेत्रों की अनेक आर्थिक नीतियों द्वारा शोषण किया गया।

**ब्रिटिश उपनिवेशवाद का प्रथम चरण**

प्रथम चरण सामान्यतया 1757 से प्रारंभ हुआ जब ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने उपमहाद्वीप के पूर्वी तथा दक्षिणी हिस्सों में राजस्व एकत्र करने के अधिकार प्राप्त कर लिए। यह सिलसिला 1813 तक चला, जब भारतीय व्यापार पर कम्पनी का एकाधिकार समाप्त हो गया।

ब्रिटिश भारत में इंग्लैण्ड की महारानी एलिज़ाबेथ प्रथम द्वारा समर्थित विशिष्ट शाही अधिकार पत्र के साथ एक विशुद्ध व्यापारिक कम्पनी की हैसियत से सत्रहवीं शताब्दी में भारत में व्यापार करने आए थे। उन्होंने अपना पहला कारखाना बंगाल में हुगली नदी के तट पर स्थापित किया। कम्पनी मुग़ल बादशाह से यह अनुमति या दस्तक पाने में सफल रही कि उसे अपने व्यापार पर करों में छूट प्राप्त होगी। इससे कम्पनी के कर्मचारियों में बड़े स्तर पर भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिला क्योंकि उन्होंने व्यापक स्तर पर इस फ़रमान का गलत उपयोग अपने व्यक्तिगत व्यापार के लिए किया। इसका अर्थ यह भी था कि इससे बंगाल के सूबेदारों (जो बाद में नवाब कहलाए) को सीमा शुल्क के रूप में राजस्व में भारी नुकसान उठाना पड़ा। यह एक ज्वलन्त, विवादास्पद मुद्दा था जो 1751 में हुए पलासी के युद्ध के प्रमुख कारणों में से एक बन गया।

इस काल में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी का मुख्य कार्य भारत से मसाले, कपास तथा रेशम खरीदकर उन्हें ब्रिटेन के ऐसे बड़े बाजार में भारी फायदे में बेचना होता था जिनकी वहाँ भारी माँग थी। इसका अर्थ यह हुआ कि ब्रिटेन से भारी मात्रा में सोना–चांदी इन वस्तुओं के भुगतान के लिए भारत आ जाता था। भरसक प्रयत्नों के बाद भी ब्रिटेन की वस्तुओं की खपत भारत में नहीं हो पाती थी जिससे इस बहिर्प्रवाह की पूर्ति हो सके। वस्तुओं की खरीद फरोख्त के अतिरिक्त कंपनी को एक बड़ी राशि यूरोप की अन्य शक्तियों के साथ होने वाले युद्धों पर भी खर्च करनी पड़ती थी जो अधिकतर व्यापार के लिए एक जैसी ही वस्तुओं की खोज के लिए होते थे। इनमें शामिल थे पुर्तगाली, डच तथा फ्रांसीसी। बक्सर की लड़ाई और उसके बाद पलासी की लड़ाई हुई तत्पश्चात् बंगाल में दीवानी (अर्थात राजस्व एकत्रित करने का अधिकार) प्राप्त होने से कम्पनी के लिए भारत में होने वाले ख़र्चे के लिए पर्याप्त धन प्राप्त होने लगा।

**भू - राजस्व नीतियाँ**

1765 में ईस्ट इंडिया कम्पनी को बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा से दीवानी की प्राप्ति के पश्चात् ब्रिटिश प्रशासन का मुख्य कार्य उपनिवेश से राजस्व की अधिक से अधिक वसूली करना रह गया। कृषि लगान कम्पनी की आय का मुख्य स्रोत हो गया था, जिससे वह ब्रिटेन में अपने निवेशकों को लाभांश का भुगतान करती थी। अतः इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ब्रिटिश प्रशासन ने भू– राजस्व की प्राप्ति के कई तरीके अपनाए। इन से कुछ हद तक उन रिश्तों पर भी प्रभाव पड़ा जो उपनिवेश तथा शासक के बीच थे।

आपकी टिप्पणियाँ

सन् 1772 में बंगाल के गर्वनर वारेन हेस्टिंग्स ने बंगाल क्षेत्र में राजस्व खेती की व्यवस्था प्रारम्भ की। इस व्यवस्था के तहत् यूरोपीय जिला कलक्टर अधिक बोली लगाने वाले को राजस्व एकत्र करने का अधिकार दे देते थे। यह प्रणाली पूर्णतया असफल रही तथा इसने निरंकुश राजस्व मांगों की वजह से किसानों को बर्बाद कर दिया।

इस भयंकर गलती को सुधारने के लिए सन् 1793 में लॉर्ड कार्नवालिस ने स्थाई बंदोबस्त की शुरुआत की। इस व्यवस्था के तहत् जमींदार, जिन्हें पहले राजस्व एकत्र करने का ही अधिकार था, अब वे भूमि के स्वामी भी हो गए। कम्पनी की राजस्व माँग पूर्णतया निर्धारित थी किन्तु यदि जमींदार पूरे करों को चुकाने में असफल रहता था तो उसकी भूमि से उसे बेदखल कर दिया जाता था और राज्य द्वारा भूमि नीलाम कर दी जाती थी। इस व्यवस्था के जरिए राज्य ने जमींदारों का एक व्यापारी वर्ग तैयार कराया जो लाभ कमाने के लिए अपनी भूमि पर अधिक से अधिक अन्न उगा सकें। इसके अतिरिक्त कम्पनी के लिए भी प्रत्येक किसान की जगह कुछ जमींदारों से बातचीत करने में सुविधा हुई तथा समाज का एक शक्तिशाली वर्ग ब्रिटिश प्रशासन का वफ़ादार बन गया।

किन्तु इस व्यवस्था की वजह से बढ़ते राजस्व के बोझ ने किसानों को गरीबी के दलदल में घसीट दिया। कई जमींदारों को भी यह शर्त मानने में समस्या हुई जो समय पर धन का भुगतान न कर सके तथा भूमि से हाथ धो बैठे। इस व्यवस्था ने उप सामन्तवाद को भी बढ़ावा दिया अर्थात जमींदार तथा किसानों के मध्य कई दलाल पैदा हो गए थे जिन्होंने किसानों की मुश्किलें बढ़ा दीं।

दलालों को राजस्व संग्रह से बाहर रखने के लिए, ताकि राज्य भूमि से होने वाली आय का बड़ा हिस्सा ले सकें, सन् 1792 में अलैक्ज़ेन्डर रीड ने मद्रास क्षेत्र के लिए रैयतवाड़ी व्यवस्था आरम्भ की। बाद में इसे बम्बई में भी लागू किया गया। इस व्यवस्था के तहत् आरम्भ में हर गाँव से पृथक् रूप से राजस्व एकत्रित किया जाता था किंतु बाद में प्रत्येक किसान का मूल्यांकन अलग से होता था। इस प्रकार ज़मींदार के बदले किसान भूमि के मालिक हो गए। हालाँकि इस व्यवस्था ने राजस्व संग्रह में वृद्धि की किन्तु मूल्यांकन त्रुटिपूर्ण था तथा किसान करों के भारी बोझ से दब गए। भूमि के दलाल हालाँकि फलते– फूलते रहे।

भारत के उत्तरी तथा उत्तर–पश्चिम में 1822 के उपरांत महलवाड़ी व्यवस्था लागू की गई, जिसमें ग्राम समाज तथा अधिकतर मामलों में तालुकदारों से समझौते किए गए। ऐसी हर वित्तीय इकाई 'महल' कहलाती थी। इस व्यवस्था के तहत् कुछ महत्ता सामूहिक सम्पत्ति अधिकार को भी प्राप्त हुई।

अंग्रेजों की राजस्व नीतियों के परिणामस्वरूप कृषि विकास की गति अवरुद्ध हो गई तथा किसान अपनी ही भूमि पर किराएदार बन गए। इसकी वज़ह से भूमि के दलालों की संख्या में वृद्धि हुई तथा ग्रामीण इलाकों में सूदखोरों की संख्या को भी पनपने का मौका मिला। भू–मालिक तथा ज़मींदार ब्रिटिश उपनिवेशवाद के मुख्य वर्ग तथा सहयोगी बन गए।

दीवानी अधिकार की प्राप्ति का अर्थ था कि अब बंगाल के समृद्ध क्षेत्र में कम्पनी स्थानीय शासकों, ज़मींदारों तथा व्यापारियों की दौलत को नियन्त्रित कर सकती थी तथा उन्हें ब्रिटेन में बिकने के लिए भेजे जा रहे माल को खरीदने के लिए उनका उपयोग कर सकती

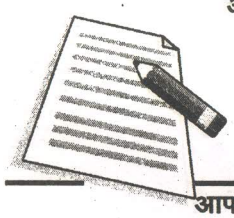

आपकी टिप्पणियाँ

थी। बड़ी मात्रा में पैसे ने, जिसमें कम्पनी अधिकारियों की अवैध सम्पत्ति भी शामिल थी, बंगाल से ब्रिटेन की राह पकड़ ली। घर लौटने से पहले कम्पनी अधिकारियों ने बहुत माल कमाया तथा अपनी विलासी जीवनशैली की वज़ह से उन्हें ब्रिटेन में 'नाबोब' कहा जाता था। इस पैसे का बड़ा भाग कंपनी को ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति में जान डालने के काम आया। भूमि राजस्व से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने के लालच ने भारत के क्षेत्रीय विस्तार में अधिक उग्र तथा आक्रामक नीतियाँ अपनाने को बाध्य किया।

### पाठगत प्रश्न 17.1

1. भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के तीन चरण कौन–कौन से थे?

2. पलासी के युद्ध के लिए ज़िम्मेदार मुख्य घटक कौन–कौन से थे?

3. किसके साथ कम्पनी ने बंगाल में स्थाई राजस्व समझौता किया?

4. किस क्षेत्र में सर्वप्रथम रैय्यतवाड़ी प्रथा का आरंभ हुआ?

## 17.2 ब्रिटिश उपनिवेशवाद का द्वितीय-चरण (मुक्त व्यापार)

द्वितीय चरण 1813 में चार्टर एक्ट के अमल के साथ प्रारंभ होता दिखलाई पड़ता है जब कम्पनी ने भारत में अपने व्यापार पर एकाधिकार खोया तथा 1858 में वह समाप्त हो गया, जब भारत में ब्रिटिश क्षेत्रों पर ब्रिटिश राजसत्ता ने प्रत्यक्ष नियंत्रण तथा प्रशासन स्थापित कर लिया।

ज्यों–ज्यों कम्पनी का मुनाफ़ा बढ़ता गया, ब्रिटिश सरकार से मिलने वाला समर्थन कम होता गया। पहले संसद के कई सदस्यों को 'ईस्ट इण्डियन' का लाभ मिलता था जो सरकार में अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाए रखने के लिए कम्पनी के संसाधनों का प्रयोग करते थे। किन्तु जैसे ही ब्रिटेन में औद्योगिकीरण की विभिन्न स्तरों पर प्रगति हुई संसद के संविधान में धीरे–धीरे परिवर्तन होने लगा। एडम स्मिथ द्वारा लिखी गई पुस्तक "एन इन्क्वारी इन टू द नेचर एंड कॉलेज ऑफ द वेल्थ ऑफ नेशन्स" तथा "कौसाज ऑफ द पैल्थ ऑफ नेशन" आर्थिक विचारों की एक शैली पर प्रकाश डालती है जो कम्पनियों द्वारा उठाई जा रही मुक्त व्यापार की नीति के फ़ायदे को बतलाती है। कम्पनी की आय पर अधिकार जमाने के लिए संसद ने कम्पनी के अधिकारियों को व्यक्तिगत रूप से निशाना बनाना प्रारम्भ कर दिया तथा उन पर दुराचार के आरोप लगाए गए। संसद में मुक्त व्यापार की माँग करने वाले, 19वीं शताब्दी में भारत में सीधे आने की बात करने वालों में तब्दील हो गए जिससे 1813 में चार्टर एक्ट पारित किया गया। इस प्रकार भारत में कम्पनी के एकाधिकार

की समाप्ति हुई तथा कम्पनी के अधीन भारत के क्षेत्रों का पूर्ण नियंत्रण ब्रिटेन की महारानी के हाथों में चला गया।

'मुक्त व्यापार' ने एक दोहरी नीति के द्वारा भारतीय उपनिवेश की प्रकृति को बदल कर रख दिया। पहले तो इसने भारतीय बाज़ारों को सस्ते, अधिक मात्रा में उत्पादित तथा मशीन आधारित ब्रिटिश सामानों के लिए खोल दिये, जिनके ऊपर नाम मात्र के या काई भी व्यापार कर नहीं थे। महँगे तथा हाथ से निर्मित भारतीय वस्त्रों, जो कि ब्रिटेन में बहुत लोकप्रिय थे, उनपर प्रतिबन्धित सीमा शुल्क दर की वजह से रोक लग गई। तथा दूसरे

ब्रिटिशों –भारतीय क्षेत्र खाद्य पदार्थों तथा कच्चे माल के स्रोंत के रूप में ब्रिटेन के लिए विकसित हुआ, जिसमें निर्माण क्षेत्र में तीव्र प्रगति ने जान फूँक डाली, जो पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के उदय के लिए अत्यावश्यक थी। इन परिवर्तनों ने भारत के अनुकूल व्यापारिक हितों को एक दम पलट कर रख दिया। इस चरण ने भारत में कृषि के व्यावसायीकरण की जटिल प्रकिया तथा औद्योगीकीकरण की प्रक्रिया द्वारा विशुद्ध औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था की नींव डाली, जो नीचे दर्शाए गए हैं।

**कृषि का व्यावसायीकरण**

ऐसा अक्सर माना जाता है कि औपनिवेशवादी प्रशासन ने कृषि के व्यावसायीकरण को जन्म दिया जिसने भारतीय उपनिवेश में कई स्थानों पर किसानों की स्थिति में सुधार किया। सन् 1860 के उपरान्त कृषि उत्पादन की प्रवृत्ति समुद्रपार के बाज़ार में प्राथमिक भारतीय वस्तुओं की माँग द्वारा संचालित होने लगी। 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में निर्यात होने वाली वस्तुओं में मुख्य थे–अफ़ीम, कपास तथा रेशम। धीरे–धीरे कच्चे जूट, अनाज, तेल, बीज तथा चाय ने अफ़ीम का स्थान ले लिया। कच्चा कपास सर्वाधिक माँग वाला उत्पाद बना। पैसा उगाहने वाली इन फसलों के विस्तार ने 1850 ई. में रेल नेटवर्क को जन्म दिया, जिससे व्यापार तन्त्र सें सुधार आ सके।

किन्तु यहं व्यावसायीकरण एक कृत्रिम प्रणाली के रूप में सामने आया जिसकी वज़ह से कृषि क्षेत्र में विकास की गति सीमित हो गई। इसने कृषि क्षेत्र में विषमताओं को तो पैदा किया किंतु ब्रिटेन की तरह पूँजीवादी भू–मालिक का ढाँचा खड़ा नहीं कर पाया। बड़े स्तर पर एक साथ हुए औद्योगिक विकास के अभाव का अर्थ था–संचित कृषि आय के निवेश के लिए कोई उचित तरीका नहीं था, जिसके वह औद्योगिक पूँजी में तब्दील हो सके। उत्पादक क्षमता में विस्तार तथा कृषि का संगठन भी एक जोखिमपूर्ण कार्य ही थे क्योंकि इस क्षेत्र में दूरस्थ विदेशी बाज़ार था जहाँ दाम ऊपर–नीचे होते रहते थे। जबकि उपनिवेशवादी राज्यों ने कृषि विशेषज्ञों को कोई सुरक्षा भी प्रदान नहीं कर रखी थी। इस प्रकार व्यावसायीकरण ने उप–ज़ागीरदारी के स्तर को पूरे देश में बढ़ावा दिया तथा यह धन व्यापार तथा सूद खोरी के माध्यम से संयोजित हुआ।

निर्यात व्यापार के माध्यम से उगाहा हुआ धन ब्रिटेन के व्यावसायी घरानों में पहुँचा जिसने नौपरिवहन तथा बीमा उद्योग को नियन्त्रित किया। साथ ही कमीशन एजेंट, व्यापारियों तथा बैंकरों पर भी लगाम लगाई गई। उपनिवेश में जो लोग भाग्यशाली रहे उनमें मुख्य थे बड़े कृषक, कुछ बड़े भारतीय व्यापारी तथा पैसा उधार देने वाले। व्यावसायीकरण ने ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि स्वामी तथा पैसा उधार देने वालों के सामंती ढांचे को सुदृढ़ किया।

आपकी टिप्पणियाँ

व्यावसायीकरण की इस तथाकथित व्यवस्था, अक्सर शोषण वाली तथा गुलाम की तरह काम करनेवाले श्रमिकों द्वारा काम करवाया जाता था जिससे पूँजीवादी कृषि की अपेक्षा थी। असम के बागानों में चाय का उत्पादन होता था, जिनके मालिक गोरे हुआ करते थे तथा वे इकरारनामे के तहत बंधे श्रमिकों का प्रयोग करते थे जो दास के समान होते थे। गोरे किसानों के पास नील की खेती के लिए किसान नहीं थे क्योंकि इससे लाभ कम होता था तथा यह कृषि चक्र को भी प्रभावित करता था। अतः वे किसानों को नील की खेती के लिए बाध्य करते थे। इसमें अमानवीय जोर जबरदस्ती होती थी जिसने 1859-60 में नील विद्रोह को जन्म दिया। व्यावसायीकरण ने 1860 में भारत के पश्चिम क्षेत्र में कपास उत्पादक क्षेत्र में तथा पूर्वी भारत में जूट उत्पादन में सीमित सफलता पाई किन्तु यह बढ़ी हुई माँग का नतीजा था, न कि उत्पादन या संगठन से पूँजीवादी सुधार का।

किसानों को पैसा उगाहने वाले फ़सलों की भी खेती करनी पड़ी क्योंकि उन्हें कर, राजस्व तथा कर्ज एवं किराये का भुगतान नकद में करना पड़ता था। एक ओर खाद्य पदार्थों की खेती से दूरी तथा दूसरी और ज्वार, बाजरा तथा दलहन ने अकालग्रस्त समय में तबाही का कार्य किया। भारतीय सूत की विश्व में कम होती माँग ने 1870 में दक्किन कपास क्षेत्र में कर्ज, अकाल तथा कृषि संबंधी दंगों को जन्म दिया। सन् 1930 में जूट उद्योग ढह गया, तत्पश्चात् बंगाल में 1943 में भीषण अकाल पड़ा। हालाँकि इन अकालों के लिए उत्तरदायी घटकों को लेकर इतिहासकारों में मतभेद है किन्तु इस बात से सभी सहमत हैं कि बढ़ती जनसंख्या के मुकाबले खाद्य –उत्पादन कम रहा तथा लाखों लोग भूखमरी तथा महामारियों से मारे गए।

कृषि उत्पादन को सुधारने के लिए उठाए गए सीमित कदमों में मुख्य था–उत्तरी, उत्तर–पूर्वी तथा दक्षिण–पश्चिमी भागों में जुताई के लिए नहरों का निर्माण करना। "स्थाई रूप से व्यवस्थित" पूर्वी भारत को सरकार के इस अभियान से दूर रखा गया क्योंकि वहाँ पर राजस्व वृद्धि की कोई संभावना नहीं थी। इसी प्रकार राजस्व को ऊँचे स्तर तक ले जाना तथा विषम स्थितियों में सीमित सहायता ऐसे घटक थे जो इस धन–निवेश का कारण बने। इसने सीमित क्षेत्रों, विशेषकर पंजाब के नहर उपनिवेशों में समृद्धता की नींव डाली किन्तु यह उन्हीं अमीर किसानों तक सीमित रह गया जो उच्च जल दरों का भुगतान कर सकते हों। इसने नकदी फ़सलों, जैसे चीनी, कपास तथा गेहूँ के अधिक उत्पादन को प्रोत्साहित किया जबकि मोटे अनाज तथा दाल के उत्पादन को कम किया। कुछ मामलों में, जैसे संयुक्त क्षेत्रों में, यह तरीका स्थानीय स्थितियों के अनुकूल नहीं रहा तथा यह दलदल तथा अत्यधिक खारेपन का कारण बना।

सन् 1853 में लॉर्ड डलहौजी ने भारत में रेल मार्ग निर्माण का निश्चय किया। अक्सर रेलवे को ही ब्रिटिश शासन में हुए भारत के विकास के मुख्य चिह्न के रूप में देखा जाता है। किन्तु भारत में रेलवे के निर्माण ने भारत के आर्थिक विकास के औपनिवेशवादी ढाँचे को मजबूत किया। रेलवे के तन्त्र ने आन्तरिक बाज़ारों को चिह्नित करने में मदद की तथा उपनिवेश में कच्चे माल का स्रोत ढूँढने में सहायता की। साथ ही आंतरिक बाज़ारों को एक दूसरे से जोड़ने के स्थान पर तटीय शहरों से उन्हें जोड़ा। रेलवे तन्त्र ने इस प्रकार विदेशी व्यापार के मुनाफे में वृद्धि की। सीमा क्षेत्र में बनी रेलवे लाइन सैन्य अभियानों को प्रारम्भ कर सकती थीं तथा कुछ 'आपदा लाइनें'' एकान्त क्षेत्र में बनवाई गई। इस प्रकार यह पूरी परियोजना ब्रिटिश पूँजी से तैयार हुई तथा ब्रिटेन में निवेशकों को पाँच प्रतिशत

ब्याज की गारन्टी दी गई, जिसका भारतीय राजस्व से भुगतान किया गया। उच्चस्तरीय कुशलता तथा रेलवे उपकरण जैसे मशीनरी, रेलवे लाइन तथा कुछ हद तक कोयला भी ब्रिटेन से आयात किया गया। इसने सुनिश्चित किया कि रेलवे निर्माण के विविध प्रभाव भारत से दूर ही रहें।

अन्य घटकों के साथ–साथ भारत के आंतरिक क्षेत्रों में दखल ने भारतीय हस्तशिल्प उद्योग को नष्ट कर दिया जिसे स्थानीय शासन तथा समुद्र पार से संरक्षण समर्थन प्राप्त था। ब्रिटेन के बढ़ते प्रभावों की वज़ह से देशी न्यायालय समाप्त हो गए। ब्रिटिशों ने असमान सीमा शुल्क भी लगाए, जहाँ एक ओर भारत के बने उत्पादों को ब्रिटिश बाज़ार में प्रवेश करने के लिए भारी चुंगी चुकानी होती थी वहीं यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप निर्मित सस्ते उत्पादों से भारत का बाज़ार भर गया। इसका मुकाबला करने में असमर्थ भारतीय वस्तुओं ने समुद्र पार तथा घरेलू दोनों ही बाज़ार खो दिए। इस घातक प्रणाली ने अनौद्योगीकरण को जन्म दिया जिससे भूमि पर दबाव बढ़ गया।

### पाठगत प्रश्न 17.2

1. 18वी शताब्दी में किस अर्थशास्त्री ने मुक्त व्यापार के सिद्धान्त की स्थापना की?

2. कृषि के व्यावसायीकरण ने किस प्रकार अकाल को जन्म दिया?

3. अंग्रेजों द्वारा बन गई सिंचाई नहरों से कौन सा क्षेत्र सर्वाधिक लाभान्वित हुआ?

4. ब्रिटेन की औद्योगिक क्रान्ति ने किस प्रकार ब्रिटिश भारत में 'अनौद्योगीकरण' को जन्म दिया?

## 17.3 ब्रिटिश उपनिवेशवाद का तीसरा चरण

ब्रिटिश भारत में तीसरे चरण की शुरुआत 1860 ई. से प्रारम्भ होती है, भारत जब निरंतर विस्तारित ब्रिटिश साम्राज्य का हिस्सा बन गया तथा ब्रिटिश राज सिंहासन के नियन्त्रण तथा संप्रभुता के अधीन हो गया। यह काल एक प्रकार का आर्थिक–साम्राज्यवाद का था जब ब्रिटिश पूँजी उपनिवेश में निवेश हुई थी। यह पूँजी ब्रिटिश बैंकों, आयात–निर्यात संस्थाओं तथा प्रबन्धन सेवाओं के बड़े तन्त्र द्वारा जुटाई गई थी।

हालाँकि उपनिवेशवाद की प्रक्रिया को चरणों में विभाजित किया गया है तब भी यह ध्यान में रखना चाहिए कि काल निर्धारण की प्रक्रिया मनमाने ढंग से की गई है। तीसरा चरण मात्र उन प्रवृत्तियों का सम्मिलित रूप था जो पहले के दो चरणों में स्पष्टतः दिखाई दे रही थी। इन चरण का पढ़ना अधिक लाभकारी हो सकता है क्योंकि इस चरण में शोषण के पुराने तथा क्रूर तरीकों के साथ नए एवं कठोर तरीके भी अपनाए थे। हालाँकि तीसरे चरण की महत्त्वपूर्ण गतिविधि थी–विकसित तथा औद्योगिक देशों तथा एशिया, अफ्रीका

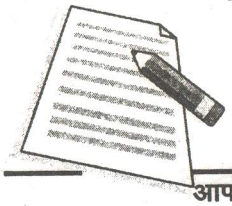

आपकी टिप्पणियाँ

तथा लैटिन अमेरिका के उपनिवेशों के बीच प्रबल प्रतिद्वन्द्विता। 19वीं शताब्दी में फ्रांस, जर्मनी, बेल्जियम तथा अमेरिका एवं यहाँ तक कि जापान ने भी औद्योगिकीकरण का स्वाद चखा। विश्व बाज़ार में प्रतिद्वन्द्विता के कारण ब्रिटेन की पकड़ धीरे–धीरे कम होने लगी। नए बाज़ारों की तलाश तथा कच्चे माल की खोज में इन देशों ने उपनिवेशों की तलाश प्रारम्भ कर दी तथा वर्तमान औपनिवेशिक बस्तियों पर अपनी पकड़ मजबूत कर दी। आर्थिक विकास ने पूँजी संग्रह की व्यवस्था का भी श्री गणेश किया जो कि कम संख्या में बैंकों तथा व्यवसायों में केन्द्रित थी। इस पूँजी को औद्योगिक उत्पादन की गति को और तीव्र बनाने के लिए एवं कच्चे माल के तीव्र प्रवाह को बनाए रखने के लिए उपनिवेश मेंनिवेशित किया गया।

अन्य विकासशील पूँजीवादी देशों में ऊँचे शुल्क के प्रतिबंध ने ब्रिटेन में निर्मित उत्पादों के बाज़ार के संक्षिप्तीकरण की प्रक्रिया को जन्म दिया। तथा ब्रिटेन में कृषि उत्पादों के भारी आयात की आवश्यकता ने इसकी स्थिति को अन्य देशों के साथ व्यापार में दुर्बल बना दिया। ब्रिटेन के घाटे की समस्या को सुलझाने में भारत की भूमिका महत्त्वपूर्ण साबित हुई। भारत के ऊपर ब्रिटेन के नियन्त्रण ने यह सुनिश्चित किया कि उसके कपड़ों के लिए एक बंदी बाज़ार मौजूद है। हालाँकि भारत के कच्चे माल के अतिरिक्त निर्यात (ब्रिटेन के अतिरिक्त अन्य देशों के साथ) ने उसके घाटे को कहीं और से पाटने में मदद की।

जहाँ एक ओर देशी हथकरघा उद्योग दम तोड़ रहा था वहीं उपनिवेश में नए उद्योग प्रारम्भ करने के भी कुछ प्रयास हुए। हालाँकि उपनिवेशी सरकार ने हमेशा "मुक्त व्यापार" की बात की किन्तु राज्य की भेदभाव पूर्ण नीति के परिप्रेक्ष्य में स्वदेशी व्यावसायियों को कई बाधाओं का सामना करना पड़ता था। ब्रिटिश पूँजी आरम्भ में रेलवे, जूट उद्योग, चाय बागान तथा खनन में निवेश की गई थी। भारतीय पूँजी बाज़ार यूरोपीय बैंकिग संस्थाओं द्वारा संचलित होता था। जहाँ एक ओर इन बैंकों के तन्त्र से ब्रिटिशों को पूँजी आसानी से प्राप्त होती थी वहीं भारतीय व्यापारी अभी भी परिवार या जातिगत संगठनों पर ही आश्रित थे। ब्रिटिश बैंकिग कम्पनी तथा ब्रिटिश ट्रेडिंग लाभ बहुत ही सुनियोजित रूप से चैम्बर्स ऑफ कॉमर्स तथा प्रबन्धक संस्थाओं द्वारा संचालित होता था। प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व ब्रिटिश प्रबन्धन संस्थाओं द्वारा औद्योगिक पूँजी के 75 प्रतिशत हिस्से को नियन्त्रित किया जाता था तथा इस सीमित औद्योगिकीकरण से प्राप्त अधिकतम लाभ ब्रिटेन वापस भेज दिया जाता था।

किन्तु भारी कठिनाइयों के बावजूद भारतीय व्यापारियों ने आगे बढ़ने के अपने अवसर तलाशे। जब भी ब्रिटेन आर्थिक संकट के दौर से गुजरा, प्रथम विश्व युद्ध के दौरान, कलकत्ता के मारवाड़ी व्यवसायी, जैसे जी-डी- बिड़ला तथा स्वरूप चन्द हकीम चन्द ने जूट उद्योग में निवेश किया। शीघ्र ही उन्होंने अपना प्रभाव क्षेत्र अन्य क्षेत्रों, जैसे–कोयला की खदानों, चीनी मिलों तथा कागज़ उद्योग तक विस्तृत किया तथा उन्होंने कुछ यूरोपीय कम्पनियां भी खरीदीं। भारतीय पूँजी की जबरदस्त सफलता पश्चिम में कपड़ा उद्योग में देखी जा सकती है, जिसने अपनी सफलता को संगठित करने के लिए विश्व युद्ध (1914-18) के दौरान बढ़ी माँगों का लाभ उठाया तथा वह लगभग लंकाशायर से बराबरी की स्थिति में आ गया। कुछ निश्चित व्यवसायी समाज, जैसे गुजराती, बनिया, पारसी, बोहरा तथा भाटिया इस क्षेत्र में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो गए थे। टाटा लौह एवं इस्पात कम्पनी को सरकारी संरक्षण मिला जिससे भारत की इस अनुभवहीन लौह एवं इस्पात कम्पनी को नेतृत्व करने का मौका प्राप्त हुआ था।

प्रथम विश्व युद्ध के उपरान्त विदेशी व्यापार के सूत्र पुनः जुड़ने प्रारम्भ हुए किन्तु पुनः निराशावादी दौर (1929-33) में घरेलू बाज़ार तुलनात्मक रूप से देशी उद्योगों द्वारा दोहन के लिए मुक्त हो गया क्योंकि विदेशी व्यापार घटा था। उपनिवेशवादी सरकार ने चीनी तथा कपास उद्योग को कुछ सुरक्षा प्रदान की थी, कृषि क्षेत्र में गिरते मूल्यों को देखते हुए यह कदम उठाया गया था। कम कीमतों ने पूँजी का रुख औद्योगिक क्षेत्र की ओर मोड़ दिया था। भारतीय भी बीमा तथा बैंकिग क्षेत्र में कूद पड़े थे। पुनः द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान (1939-45) जैसे ही विदेशी आर्थिक प्रभाव कम होना प्रारम्भ हुआ, भारतीय उद्योगपतियों ने भारी लाभ कमाया। अपनी सीमित सफलताओं से उत्साहित होकर भारतीय पूंजीवादी वर्ग ने अपने संबंध भारतीय राष्ट्रवादियों से जोड़े। शीघ्र ही उन्होंने राज्य के अधीन भारी उद्योगों की स्थापना की माँग प्रारम्भ कर दी तथा विदेशी पूँजी के प्रवेश को लेकर उन्होंने स्वयं को संगठित करना प्रारम्भ कर दिया था।

किन्तु व्यापक स्तर पर इन सफलताओं को सही परिप्रेक्ष्य में देखें तो ये विकास घरेलू बाज़ार तक ही सीमित थे तथा आगे स्वदेशी पूँजी को उपनिवेशवादी अर्थव्यवस्था की ढाँचागत दुर्बलताओं के खिलाफ एक लम्बी लड़ाई लड़नी थी। भारतीयों की गरीबी को देखते हुए प्रगति की संभावनाएँ निराशा ही उत्पन्न करती रहीं।

आरम्भिक भारतीय राष्ट्रवादी, जैसे–दादा भाई नौरोजी, एम. जी. रानाडे तथा आर. सी. दत्त ने ब्रिटेन से भारतीय पूँजीवादी औद्योगिकीकरण की अपेक्षा रखी थी। किन्तु उपनिवेशवादी आर्थिक नीतियों से वे असंतुष्ट नज़र आए। परिणामतः उन्होंने 19वीं शताब्दी के अन्त में उपनिवेशवाद की भयंकर आर्थिक आलोचना की। दादा भाई नौरोजी ने "समृद्धि का पलायन" अवधारणा को आगे बढ़ाया। उनके अनुसार भारत में गरीबी, भारतीय संपदा का धीरे–धीरे ब्रिटेन में पलायन का परिणाम थी। यह पलायन उस ब्याज की वज़ह से हुआ जो भारत ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को विदेशी कर्ज चुकाने, सैन्य खर्चों, रेलवे तथा अन्य ढाँचागत सेवाओं में विदेशी निवेश पर निश्चित ब्याज, इंग्लैंड से हर लेखन सामग्री का आयात तथा ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत पर शासन करने के लिए सैन्य तथा नागरिक अधिकारियों की नियुक्ति, राज सचिव के वेतन, अधिकारियों की पेंशन वगैरह के लिएं भारतीय धन का प्रयोग किया। हालाँकि यह पलायन भारत के कुल निर्यात का छोटा सा ही अंश था, यदि इसका निवेश देश में हो गया होता तो पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के निर्माण में यह मदद कर सकता था।

उपनिवेशवादी आर्थिक नीतियों को लेकर एक मुख्य प्रश्न उठता था कि क्या भारत में कुछ विकास हुआ? इस प्रश्न का उत्तर सरल नहीं है। हम 19वीं शताब्दी के मुगल साम्राज्य से देखना प्रारंभ करते हैं जब तक कि ब्रिटिशों ने खुद को मुख्य शक्ति के रूप में स्थापित नहीं किया था। यह मत कि 18वीं शताब्दी का मुगल काल पतन की ओर जा रहा था तथा गंभीर आर्थिक समस्याओं के तले आ गया था, इस पर इतिहासकार एक मत नहीं हैं। हमें मुग़ल साम्राज्य के पतन को लेकर एक बड़ा नजरिया अपनाने की आवश्यकता है। क्योंकि बाद में कुछ इतिहासकारों ने इस सिद्धांत को पलट दिया तथा उन्होंने नए विद्रोह समूहों के उदय को मुग़ल साम्राज्य के पतन का कारण बताया। उन्होंने तर्क दिया कि संपूर्ण मुग़ल काल संपन्नता तथा आर्थिक विकास का युग था, न कि संकट का। राजनीतिक ढाँचे में स्थानीय प्रमुख के हाथों में व्यापक शक्ति तथा स्वायत्तता थी ताकि अतिरिक्त सम्पत्ति का संग्रह कर सकें। मुरादाबाद, बरेली, अवध, बनारस तथा

आपकी टिप्पणियाँ

बंगाल इन्हीं अतिरिक्त क्षेत्रों में मुख्य थे। सिंचाई को बढ़ावा देने के लिए बड़ी मात्रा में वन क्षेत्र खाली कर दिया गया। कृषि क्षेत्र में लगातार वृद्धि तथा जटिल संबंधों की स्थापना ने जमींदार तथा भूमि मालिकों को अतिरिक्त संग्रह के योग्य बनाया जिन्होंने नई क्षेत्रीय शक्तियों के रूप में मुग़ल वर्चस्व को चुनौती दी।

## पाठगत प्रश्न 17.3

1. किस प्रथम वैश्विक घटना ने भारत के उद्योगों को पनपने का अवसर दिया?

2. सम्पत्ति के पलायन का सिद्धांत किसने बतलाया?

3. क्या बाद के इतिहासकार 18वीं शताब्दी को आर्थिक रूप से पिछड़ा बतलाते हैं?

इस प्रकार भारत की जो छवि हमें मिलती है वह ऐसे आर्थिक माहौल की थी जिसमें प्रगति की अपार संभावनाएं थीं। फिर हम उस गरीबी की व्याख्या किस प्रकार कर पाएंगे जिसका परिचय हमें 200 वर्षों के ब्रिटिश उपनिवेशवाद के अंत में मिलता है? कुछ लेखकों का मत है कि ब्रिटिशों ने भारत को आंशिक रूप से आधुनिक बनाने का प्रयत्न किया किन्तु मजबूत परम्परागत ढाँचों की वजह से असफल हो गए। किन्तु हमने यह महसूस किया कि ये आधे–अधूरे विकास मात्र उनकी मातृभूमि को फायदा पहुँचाने के लिए किए गए थे। निम्न वर्ग में पिछड़ेपन को भी औद्योगिक क्रान्ति के दूसरे पहलू के रूप में देख सकते हैं जबकि इस क्रान्ति का मुख्य बिन्दु पश्चिम था। इसी प्रक्रिया ने ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया, जिसने भारतीय समाज में पिछड़ापन कायम रखा क्योंकि ब्रिटिश अर्थव्यवस्था, भारतीय अर्थव्यवस्था पर परजीवी के रूप में आश्रित थी। 'मुक्त व्यापार' रूपी विश्व की अर्थव्यवस्था की अभिन्न प्रणाली के रूप में।

सन् 1947 में भारत पूर्व औद्योगीकरण की स्थिति में नहीं था। अतः स्वतन्त्रता के बाद की आर्थिक प्रगति के ढंग को हम पश्चिम की औद्योगीकरण की प्रणाली से तुलना नहीं कर सकते। 1947 में भारत पहले ही पश्चिम के पूँजीवादी विकास का अंग बन चुका था, किन्तु उपनिवेश की हैसियत से। अतः 1947 में स्वतन्त्र भारत ने उपनिवेशवादी तरीके से आधुनिकीकरण में कदम रखा जो कि परम्परागत, ढाँचागत रूप से पिछड़ा तथा अविकसित था।

## आपने क्या सीखा

भारत में अपना शासन स्थापित करने के लिए चरणबद्ध तरीके से आर्थिक दोहन ही ब्रिटिशों का मुख्य उद्देश्य था। शोषण की इस प्रवृत्ति ने शासन का रूप ही बदल दिया जिसने ब्रिटेन में भी परिवर्तन को जन्म दिया। इससे भी उपनिवेश में आर्थिक, सामाजिक

तथा राजनीतिक परिणाम हुए। उपनिवेशी राज्य के अंतर्गत होने वाले विकास को आधुनिकीकरण की संज्ञा दी गई किन्तु उपनिवेश पर इसके भिन्न प्रभाव पड़े जो प्रगति के बदले पिछड़ेपन का कारण बना। और अन्ततः संसाधनों के दोहन ने देश को यूरोप में औद्योगीकरण के योग्य बनाया।

## पाठांत प्रश्न

1. ब्रिटिश द्वारा लागू की गई राजस्व नीतियाँ क्या थी तथा उपनिवेश के ग्रामीण क्षेत्रों में उसके क्या प्रभाव पड़े?
2. उपनिवेश में कृषि का व्यावसायीकरण एक 'जबरदस्ती/जबरन' प्रणाली किस प्रकार थी?
3. 'आर्थिक साम्राज्य' की व्याख्या कीजिए?

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

### 17.1

1. पहला चरण व्यापारवाद का था (1757-1813), प्रत्यक्ष लूट पाट, द्वितीय चरण (1813-1858) मुक्त व्यापार तथा तीसरा चरण 1850 से आगे आर्थिक साम्राज्यवाद का था।
2. कम्पनी के अधिकारियों द्वारा अपने व्यक्तिगत व्यापार के लिए दस्तक के दुरुपयोग ने बंगाल के नवाब को क्रोधित कर दिया?
3. जमींदार
4. मद्रास तथा बम्बई क्षेत्र

### 17.2

1. एडम स्मिथ
2. नगदी फ़सलों के उत्पादन को खाद्य फ़सलों की कीमत पर प्रोत्साहन दिया गया।
3. पंजाब
4. ब्रिटेन के मशीन से बने उत्पादों से भारतीय बाज़ार पट गया जबकि भारतीय हस्तशिल्प उनसे मुकाबला नहीं कर पाया।

### 17.3

1. प्रथम विश्व युद्ध
2. दादा भाई नौरोजी
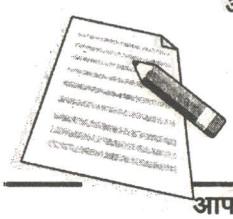
आपकी टिप्पणियाँ

3. नहीं, बाद मे इतिहासकारों से 18वीं शताब्दी को आर्थिक विकास तथा सम्पन्नता का युग बताया?

**पाठांत प्रश्नों के संकेत**

1. देखें प्रभाग 17.1 'भूमि राजस्व नीतियाँ'
2. देखें प्रभाग 17.2 'कृषि का व्यावसायीकरण'
3. देखें प्रभाग 17.3 'ब्रिटिश उपनिवेशवाद का तृतीय चरण'

**शब्दावली**

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | **व्यापारवाद** | - | 16वीं तथा 18वीं शताब्दी में यूरोप में प्रचलित एक आर्थिक सिद्धांत जिसमें राज्य उपनिवेश के माध्यम से सोने चांदी का प्रवाह सुनिश्चित करता था तथा व्यापार एवं संसाधनों पर नियंत्रण रखता था। |
| 2. | **बुलियन** | - | बहुमूल्य धातु के रूप में सम्पत्ति जैसे सोना और चाँदी |
| 3. | **दीवानी** | - | राजस्व एकत्र करने का अधिकार |
| 4. | **तालुकदार** | - | ब्रिटिश शासन से पूर्व, ग्रामीण क्षेत्र में राजस्व अधिकारी |
| 5. | **एकाधिकार** | - | व्यापार विशेष के लिए विशेष अधिकार |
| 6. | **सीमा शुल्क** | - | निर्यात के लिए दिया जाने वाला शुल्क |
| 7. | **व्यवसायीकरण** | - | व्यापारिक उद्देश्य के लिए किसी नियम को बदलना |
| 8. | **मुक्त व्यापार-** | | अंतराष्ट्रीय व्यापार जो सरकार के किसी भी प्रतिबन्ध से मुक्त हो |
| 9. | **श्रमिकों का बंधन युक्त प्रकार** | - | न सिर्फ पैसों के रूप में बल्कि अन्य शक्तियों के **युक्त प्रकार** परिणाम स्वरूप बाध्यकारी श्रम जैसे–मानसिक, शारीरिक, रूढ़िगत,राजनीतिक इत्यादि। |
| 10. | **विविध प्रभाव** | - | अर्थशास्त्र में एक सिद्धात जहाँ अन्य आर्थिक गतिविधियों को प्रभावित करने के लिए अतिरिक्त खर्च करना। जैसे रेलवे के निर्माण में डब्बों तथा ट्रैक का निर्माण होने की स्थिति में लौह, इस्पात तथा कोयले की माँग में वृद्धि होना। इसकी वज़ह से बड़ी संख्या में लोगों को रोजगार भी प्राप्त हुआ। |
| 11. | **घाटा** | - | जब व्यापार में आय से अधिक खर्च हो। |

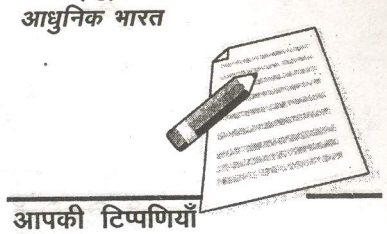



# 18

# आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन

18 से 19वीं शताब्दी के दौरान भारतीय उपमहाद्वीप में कई महत्त्वपूर्ण सामाजिक बदलाव आए। ब्रिटिश शासन की शुरुआत, सामाजिक तथा धार्मिक सुधार की बढ़ती इच्छा, मध्य वर्ग का उदय, ब्रिटिश तथा भारतीय भाषाओं में समाचार पत्रों की प्रगति, देश के भौतिक ढांचे तथा अर्द्ध–राजनीतिक एकीकरण इस परिवर्तन के लिए उत्तरदायी थे। मुगल शासन की समाप्ति के पश्चात् 18वीं शताब्दी में कई क्षेत्रीय राज्यों का उदय हुआ। इन कमियों के फलस्वरूप ब्रिटिश शासन का क्रमशः विस्तार हुआ, जिसने पूर्णतः असामान्य शासन व्यवस्था को जन्म दिया तथा जिसके परिणाम दीर्घकालिक रहे।

## उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- भारत में ब्रिटिश शासकों की सांस्कृतिक नीतियों की विस्तृत रुपरेखा से परिचित हो सकेंगे;
- ओरियंटांलिस्ट और एंगली राज्य में संधर्ष की प्रकृति की समीक्ष कर सकेंगे;
- भारत में शिक्षित वर्ग पर ब्रिटिश शासन का प्रभाव बता सकेंगे;
- सामाजिक और धार्मिक जीवन की बुराइयों का उल्लेख कर सकेंगे;
- आधुनिक भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग के उदय की पृष्ठभूमि का वर्णन कर सकेंगे;
- उनके द्वारा किए गए सुधार आंदोलनों तथा उठाए गए मुद्दों पर चर्चा कर सकेंगे;
- भारत में पश्चिमी शिक्षा की प्रगति के चरणों की पहचान कर सकेंगे और
- भारत में पत्रकारिता के विकास के विभिन्न चरणों के बारे में जान सकेंगे।

## 18.1 भारत में ब्रिटिश सांस्कृतिक नीतियाँ

ब्रिटिश शासन के आरंभिक काल में भारत में कई उपनिवेशवादी विचारधाराएँ सामानान्तर रूप से विद्यमान थीं। वहीं इग्लैंड में शासन का सफल संचालन करने के सर्वाधिक उपयुक्त तरीकों के बारे में भिन्न–भिन्न विचार धाराएँ थी। नीतीयाँ सामान्यतः यूरोप और

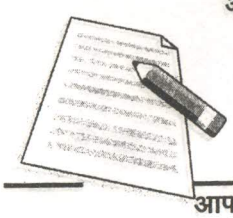

आपकी टिप्पणियाँ

विशेषतः इंग्लैंड की विशेष विचार धाराओं की लेकप्रयता पर आधारित थीं। साथ ही वे भारत–यूरोप में उच्च पदस्थ ब्रिटिश पदाधिकारियों के पूर्वाग्रहों या विचारों पर भी आधारित थीं। पलासी (1757) तथा बक्सर (1764) के युद्धों के पश्चात् जीते हुए राज्यों पर शासन करने के लिए ब्रिटिश शासकों को खासी मशक्कत करनी पड़ी। यहाँ यह देखना बहुत रोचक होगा कि किस प्रकार भिन्न विचारधाराएँ भिन्न – भिन्न समय में केंद्र में एक शक्ति बन गईं।

## 18.1.1 प्राच्यविद्

भारत में ब्रिटिश प्रशासकों की पहली पीढ़ी, जैसे वारेन हेस्टिंग्स, विलियम जोन्स, जोनाथन डंकन ने इस विचार को लोकप्रिय बनाया कि भारत का एक स्वर्णिम अतीत था, जो धीरे–धीरे मंद होता गया। वे विद्वान तथा प्रशासक प्राच्यविद् कहलाए। वे भारतीय भाषाओं एवं परम्पराओं को जानने तथा फैलाने के इच्छुक थे। उनके अनुसार भारत को समझने से उनके लिए यहाँ पर शासन करना बेहतर हो सकता था। उस तर्क को आगे बढ़ाते हुए हम कह सकते हैं कि प्राच्यविदों ने भारत के अतीत की इस प्रकार व्याख्या की कि भारत में औपनिवेशिक शासन जरूरी था। उनके प्रयासों से कई संस्थान भी अस्तित्व में आए, जैसे वारेन हेस्टिंग्स द्वारा स्थापित कलकत्ता मदरसा (1781) विलियम जोन्स द्वारा स्थापित एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल (1784) तथा (1794) जौनाथन डंकन द्वारा स्थापित बनारस का संस्कृत महाविद्यालय ।

विलियम जोन्स ने भारतीय प्राचीन भाषाएँ सीखीं तथा संस्कृत एंव प्राचीन पश्चिमी भाषाओं के बीच कई महत्त्वपूर्ण भाषिक समानताएँ पाईं जैसे ग्रीक एवं लैटिन। तकरीबन 50 सालों के लिए एशियाटिक सोयायटी ज्ञान का तथा संस्कृत के महत्त्वपूर्ण ग्रंथों के अनुवाद का एक दुर्लभ केंद्र बना रहा। 'एशियाटिक रिसर्चेज' के नाम से एक महत्त्वपूर्ण पत्रिका भी प्रकाशित होती थी। वारेन हेस्टिंग्स का विचार था कि हिंदुओं के नियम–कानून सदियों से अपरिवर्तनीय रहे हैं। इसलिए यदि उन्हें देश में अपनी सत्ता स्थापित करनी है तो उन्हें संस्कृत तथा इन नियमों को समझना ही होगा। हिन्दुओं के रीति–रिवाजों को दर्शाते हुए एन. बी. हैलहेड ने 1776 में 'ए कोड ऑफ जेन टू लॉज' लिखी थी।

ब्रिटिश प्रशासकों को भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति से परिचित कराने की मांग दिनों दिन जोर पकड़ रही थी। वेलेस्ली द्वारा 1801 में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना उन युवा ब्रिटिशों के लिए की गई जिनकी भारत में प्रशासनिक सेवा में नियुक्ति होती थी। यह कॉलेज भारत के विषय में ज्ञान देने वाला प्रमुख केन्द्र बन गया था। इसके कई विभाग भारतीय भाषाओं और साहित्य पर अनुसंधान के लिए समर्पित थे।

### आर्थिक तथा प्रशासकीय नीतियों पर विचारों का प्रभाव

विचारों का प्रभाव आर्थिक तथा प्रशासकीय नीतियों पर स्पष्टतः दिखाई देता है। 1786 में गवर्नर जनरल का पद संभालने वाला लॉर्ड कॉर्नवालिस 18वीं शताब्दी की विग राजनीतिक विचारधारा से काफी प्रभावित था। विग दर्शन में सरकार के सभी अंग अर्थात् कार्यपालिका, विधायिका तथा न्यायपालिका पृथक होने चाहिएँ। यह सभी अंगों पर नियंत्रण रखेगा ताकि कोई भी अंग मनमाना व्यवहार न कर सके। 18वीं शताब्दी में इंग्लैंड के दो प्रमुख राजनीतिक विचारक, फिलिप फ्रांसिस तथा एडमुंड बर्क थे। बर्क ने

जोर देकर कहा था कि स्थानीय नागरिकों की समृद्धि सुनिश्चित कर देनी चाहिए, इससे पहले कि उनसे फायदा उठाया जाए। उसके मित्र तथा कलकत्ता की सर्वोच्च परिषद के एक सदस्य फिलिप फ्रांसिस ने बंगाल की प्रशासनिक संपत्ति के सिलसिले में एक व्यापक योजना बनाई थी। इस योजना का प्रभाव 1793 में लार्ड कार्नवालिस की स्थाई बंदोबस्त की नीति पर देखा जा सकता है, जो बंगाल बिहार तथा उड़ीसा में लागू की गई थी। कॉर्नवालिस बंगाल प्रशासन में विग नीति की जबरदस्त नींव डालने में सफल रहा। स्थाई बंदोबस्त के विषय में बहुत कुछ आप ब्रिटिश काल की आर्थिक व्यवस्था के अध्ययन के दौरान पढ़ेंगे।

इंग्लैंड पहला ऐसा देश था जिसने औद्योगिक क्रांति का अनुभव किया तथा जिसके परिणामस्वरूप वहाँ पर बने बनाए उत्पादों का ढेर लग गया था। अंग्रेज पूंजीपति अब ब्रिटिश उपनिवेशों में मुक्त व्यापार के लिए जोर डालने लगे थे। उन्होंने ब्रिटिश सरकार पर भारत में कंपनी के एकाधिकार को समाप्त करने की मांग की। मुक्त व्यापार की पैरवी करने वालों ने भारत के नीति निर्धारकों को भी काफी हद तक प्रभावित किया था। अंततः सन् 1813 में भारत पर कंपनी की पकड़ कम करने के लिए चार्टर एक्ट लाया गया। साथ ही, लिबरल तथा यूटिलिटेरियनों ने भारत के परिप्रेक्ष्य में नीति बनाकर अपनी स्थिति सुदृढ़ की।

### पाठगत प्रश्न 18.1

1. प्राच्यविदों द्वारा स्थापित प्रमुख संस्थानों के नाम लिखिए।

2. भारत में शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए एशियाटिक सोसायटी की भूमिका का महत्त्व बताइए।

3. फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना किसने की?

4. औद्योगिक क्रांति सबसे पहले किस देश में हुई?

5. भारत के साथ व्यापार पर कंपनी के एकाधिकार को किस कानून (Act) ने समाप्त किया?

## 18.2 सामाजिक-धार्मिक सुधार

19वीं शताब्दी की सबसे प्रमुख विशेषता सामाजिक तथा धार्मिक सुधारों की इचछा रही, ताकि जाति तथा सम्प्रदायों के बंधन को समाप्त किया जा सके। भारत में सामाजिक तथा धार्मिक सुधारों की लंबी परंपरा रही है। प्राचीन काल में सुधार की यह प्रवृत्ति उपनिषदों, बौद्ध, जैन, वज्रयान तथा तंत्रवाद में दिखलाई पड़ती है। मध्यकाल में भक्ति संतों तथा

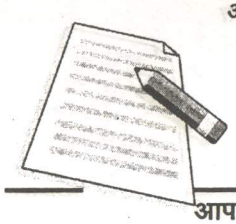

आपकी टिप्पणियाँ

सूफी संतों की लोकप्रियता प्रसिद्ध है। ब्रिटिश प्रशासकों की प्रथम पीढ़ी द्वारा भारत के अतीत के विषय में जानकारी प्राप्त करने के प्रयासो ने शिक्षित वर्ग को अपने अस्तित्व को जानने की चेतना जगाने में मदद की। आरंभिक सुधार उपयुक्त जवाबों की तलाश में किए गए। किंतु आधुनिकीकरण का स्वरूप पश्चिम प्रभाव में तय नहीं किया गया था क्योंकि सुधार के कारण भारत के अतीत से ही खोजे जाने थे।

**बंगाल में पुनर्जागरण**

बंगाल से प्रारंभ हुए सुधार अंदोलनों को अक्सर बंगाल पुनर्जागरण कह कर संबोधित किया जाता है। बंकिम चंद्र चटर्जी तथा बिपिन चंद्र पाल ने 19वीं शताब्दी में बंगाल में हुए सुधारों को पुनर्जागरण काल की संज्ञा दी है। यूरोप में हुए जागरण से बंगाल की विकासात्मक गतिविधियों की हालांकि तुलना नहीं की जा सकती क्योंकि दोनों के सेदर्भ तथा ढंग सर्वथा पृथक थे। हालांकि जब हम बंगाल के पुनर्जागरण की बात करते हैं तो इस विकास को तीन चरणों में बाँट सकते हैं–

ऐतिहासिक पुर्नखोज, भाषाई तथा साहित्यिक आधुनिकीकरण तथा सामाजिक–धार्मिक सुधार।

**ब्रह्म समाज**

बंगाल के राजा राम मोहन राय आधुनिक युग के सर्वाधिक विख्यात सुधारक थे। जन साधारण के बीच राजनीतिक मुद्दों पर बहस की शुरुआत का श्रेय उन्हीं को जाता है।

*चित्र 18.1 राजा राम मोहन राय*

उनके द्वारा स्थापित आत्मीय सभा (1814) ने अपने समय के महत्त्वपूर्ण सामाजिक तथा राजनीतिक मुद्दों पर बहस आरंभ की। सन् 1828 में इसका वृहद् संस्करण ब्रहम समाज के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जल्द ही उन्होंने समाज के ज्वलंत मुद्दों पर काम करना प्रारंभ कर दिया जिनमे समाज में उन दिनों प्रचलित अमानवीय सती प्रथा थी। उन्होंने तत्कालीन गवर्नर जनरल विलियम बेंटिंक का सहयोग हासिल किया तथा इस प्रथा के विरुद्ध लिखा। सन् 1829 में सती प्रथा को कानूनी तौर पर प्रतिबंधित कर दिया। उन्होंने महिलाओं के साथ होने वाले हर प्रकार के अन्याय का विरोध किया। रॉय आधुनिक शिक्षा के भी हिमायती थे। उन्होंने वेदांत कॉलेज (1825) के साथ–साथ ब्रिटिश स्कूल भी खोले। वे एकेश्वरवादी थे। उन्होंने मूर्तिपूजा का विरोध किया तथा उपनिषदों को सच्चे हिन्दूवाद का आधार माना। उन्होंने हिन्दू धर्म को सभी बुराइयों से मुक्त कर शुद्ध करना चाहा। वं ब्रिटिश शिक्षा तथा पश्चिमी ज्ञान के विरोधी नहीं थे।

1833 ई. में राय की मृत्यु के पश्चात् ब्रह्म समाज विघटित होने लगा। 1842 ई. में उसका संगठन तथा कलकत्ता से बाहर विस्तार श्री देवेन्द्रनाथ टैगोर के नेतृत्व में हुआ। श्री टैगोर ने 'ब्रहमो–प्रण' की रचना की जिसमें सदस्यों के कार्यों का विवरण प्रस्तुत किया गया।

**केशब चन्द्र सेन** (1838–1884) 'समाज' में 1858 में शामिल हुए तथा वे एक वाक चतुर तथा किसी भी बात को मनवाने में समर्थ थे । उन्होंने समाज की गतिविधियों को बंगाल के बाहर उत्तर प्रदेश, पंजाब मद्रास तथा बम्बई तक फैलाया। उन्होंने जाति व्यवस्था पर हमला कर, महिला अधिकारों की बात की। विधवा पुर्नर्विवाह को प्रोत्साहित कर तथा ब्रहम धर्म सुधारकों के मध्य जाति व्यवस्था (जो पहले केवल ब्राहमणों के लिए ही था) के मुद्दे को उठाकर ब्रह्म समाज को और सुधारवादी रूप दिया। उन्होंने धर्म के सार्वभौमिकीकरण पर जोर दिया। उनके सुधारवाद ने उन्हें देवेन्द्रनाथ के विरोध में खड़ा कर दिया। सन् 1866 में समाज आधिकारिक तौर पर 'आदि ब्रह्म समाज' (देवेन्द्रनाथ के नेतृत्व में) तथा 'ब्रह्म समाज ऑफ इंडिया' (केशव चन्द्र के नेतृत्व में) में विभाजित हो गया।

**ईश्वरचन्द्र विद्यासागर**

एक अन्य बंगाली सुधारक जिन्होंने महिलाओं के मुद्दों पर अपनी आवाज उठाई वे थे ईश्वरचन्द्र विद्यासागर। उन्होंने कन्याओं की शिक्षा के विस्तार पर भी कार्य किया क्योंकि

*चित्र 18.2 ईश्वरचन्द्र विद्यासागर*

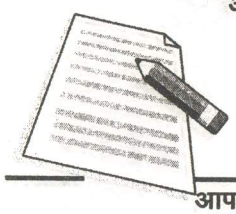

आपकी टिप्पणियाँ

उनके अनुसार सभी समस्याओं की जड़ अशिक्षा थी। एक अंग्रेज व्यक्ति बेथम की सहायता से उन्होंने कई स्कूलों का निर्माण किया जो बालिकाओं की शिक्षा को ही समर्पित थे। उन्होंने बहुपत्नी प्रथा तथा वाल विवाह का पुरजोर विरोध किया। यह उनकी ही सक्रियता का परिणाम था कि विधवा पुनर्विवाह कानून 1856 में पारित हो गया जिसने सभी विधवा विवाहों को वैध करार दिया। उन्होंने ऐसे कई विवाह करवाए। उन्होंने इसका एक व्यक्तिगत उदाहरण भी प्रस्तुत किया जब उनके पुत्र ने एक विधवा से विवाह किया।

### रामकृष्ण मिशन

19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बंगाल में एक और प्रसिद्ध सुधार आंदोलन हुआ जो कि बहुत जल्द देश के अन्य हिस्सों में फैल गया, वह था रामकृष्ण मिशन। यह आंदोलन एक आस्तिक तथा पुजारी गदाधर चटर्जी उर्फ स्वामी रामकृष्ण परमहंस के नेतृत्व में प्रारंभ हुआ (1836–86), जिन्होंने आंतरिक शांति सन् 1871–72 में प्राप्त की थी। उन्होंने सभी धर्मों की एकता तथा हिन्दू धर्म के विश्वासों और रीति रिवाजों के पालन पर जोर दिया। उसके मुख्य शिष्यों में थे नरेन्द्रनाथ उर्फ स्वामी विवेकानंद जिन्होंने रामकृष्ण को अपने गुरू के रूप में स्वीकार किया था। उन्होंने सन् 1893–97 के अपने अमेरिका तथा यूरोपीय दौरों के दौरान आध्यात्मिक हिंदूवाद का संदेश प्रसारित किया। उन्होंने सन् 1897 में रामकृष्ण मिशन की स्थापना की तथा बेलूर मठ का निर्माण किया। वे 1902 में चालीस वर्ष की अल्पायु में ही स्वर्ग सिधार गए। विवेकानंद धर्म की अवगति के, विविध वर्गों के, जाति व्यवस्था के, अस्पृश्यता के तथा अंधविश्वास इत्यादि के घोर विरोधी थे। उन्होंने जोर देकर कहा कि हिन्दुओं की यह हालत उनके द्वारा अपने इतिहास के प्रति अज्ञानता के कारण है। उन्होंने हिन्दुओं की आध्यात्मिक सर्वोच्चता को पश्चिम के स्वार्थी समाज से श्रेष्ठ सिद्ध किया। हालांकि उनका मानना था कि भारतीयों को पश्चिम से कार्य नीतियाँ, संगठन के स्वरुप तथा तकनीकी विस्तार सीखना चाहिए।

### पश्चिमी भारत में सुधार आंदोलन

19 वी शदी में ही भारत के पश्चिमी हिस्सों में भी कई सुधारवादी आंदोलन प्रारंभ हुए। सुधारवादी जैसे के.टी.तेलंग, वी.एन.मांडलिक, तथा आर.जी.भंडारकर ने भारत के अतीत को गौरवान्वित किया। उनमें से कईयों ने सामाजिक बुराइयों, जैसे जाति व्यवस्था पर प्रहार कर विधवा विवाह को प्रोत्साहित किया जैसे कि करसोनदास मुलजी तथा दबोदा पडुरंग। उन्होंने सन् 1844 में **मानव धर्म सभा** तथा 1849 में **परमहंस मंडली** की स्थापना की। मंडली ने गुप्त रूप से गतिविधियों का संचालन किया। उनके सदस्यों ने शपथ ली कि वे जातिगत भेदभाव का पुरजोर विरोध करेंगे। मंडली का पतन 1860 के उपरांत हो गया जब इसके सदस्यों ने अपनी गोपनीयता खो दी। केशब चन्द्र सेन की बम्बई की दो यात्राओं 1864 तथा 1867 ने इस हिस्से में सामाजिक सुधारों पर प्रभाव डाला। उनकी यात्राओं के प्रत्यक्ष प्रभाव के परिणाम स्वरूप आत्माराम पांडुरंग द्वारा 1867 में प्रार्थना समाज का गठन हुआ। दक्कन शिक्षा समाज का संचालन करने वाले महादेव गोविन्द रानाडे इस संस्थान के पीछे मुख्य शक्ति थे। प्रार्थना समाज के सदस्य पहले परमहंस मंडली के कार्यकर्ता रह चुके थे। समाज ने मूर्तिपूजा, पुजारी के वर्चस्व, जाति भेदभाव का विरोध किया तथा एकेश्वरवाद का समर्थन किया। हिन्दुओं के

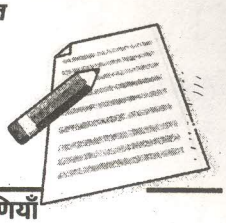

आपकी टिप्पणियाँ

अतिरिक्त इन्होंने ईसाइयत तथा बौद्ध धर्म की ओर भी देखा। उन्होंने सभी धर्मों में सत्य को ढूँढा। मध्यकालीन मराठा भक्ति सतों से प्रेरणा लेकर रानाडे ने एक ईश्वर– के सिद्धांत को स्थापित करने का प्रयत्न किया।

**आर्य समाज**

19वीं शताब्दी के अंत में सबसे प्रसिद्ध सुधार आंदोलन आर्य समाज रहा। यह पश्चिम भारत से प्रारंभ हुआ तथा पंजाब तथा अन्य हिन्दी भाषी क्षेत्रों में बहुत जल्दी फैल गया। इसकी स्थापना दयानंद सरस्वती (1824–83) ने की। सन् 1875 में उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना की तथा इसी वर्ष बम्बई आर्य समाज का गठन किया। लाहौर आर्य समाज 1877 में स्थापित हुआ। परिणामस्वरूप लाहौर आर्य समाज की गतिविधियों का मुख्य केन्द्र बन गया। दयानंद ने हिन्दू धर्म के आडंबरों का विरोध किया था वेदों पर अपनी शिक्षाएँ आधारित कीं। उनके अनुसार सही विश्लेषण के साथ वेद ही आखिरी सत्य हैं। उन्होंने पुराणों, बहु–ईश्वरवाद, मूर्तिपूजा तथा ब्राहमणों के वर्चस्व का विरोध किया। उन्होंने जनसाधारण तक पहुंचने के लिए हिन्दी भाषा को अपनाया। उन्होंने बाल विवाह का भी विरोध किया। वे जातिगत भेदभाव के घोर विरोधी थे क्योंकि उनके अनुसार निम्न जाति के लोगों द्वारा ईसाई तथा मुस्लिम धर्मान्तरण की सबसे बड़ी वजह यही थी।

दयानंद सरस्वती की मृत्यु (1883) के पश्चात् आर्य समाज बिखर गया। समाज को संघठित रखने तथा इसकी गतिविधियों को संघटित रखने के प्रयास के चलते दयानंद एंग्लो वैदिक ट्रस्ट तथा मैनेजमेंट सोसायटी की स्थापना लाहौर में 1886 में की गई। इसी वर्ष इस समिति ने स्कूल खोला, जिसमें लाला हंसराज प्रधानाध्यापक बने। हालांकि समाज के कुछ सदस्यों ने एंग्लो वैदिक शिक्षा का विरोध किया था। वे थे मुंशी राम (स्वामी श्रद्धानंद), गुरूदत्त, लेखराम तथा अन्य। उन्होंने तर्क दिया कि आर्य समाज की शैक्षणिक गतिविधियाँ संस्कृत आर्य विचारधारा तथा वैदिक शिक्षाओं पर आधारित होनी चाहिए तथा ब्रिटिश भाषा को कम से कम स्थान देना चाहिए। विरोध करने वालों का मानना था कि दयानंद के कथन ही पवित्र हैं तथा सत्यार्थ प्रकाश में दिए उनके संदेशों पर प्रश्न नहीं किया जा सकता। जबकि लाला हंसराज तथा लाजपत राय ने इस बात पर जोर दिया कि दयानंद एक सुधारक थे न कि कोई ऋषि या साधु। डी ए. वी. प्रबंध समिति के नियंत्रण पर भी विवाद उठे। इन मतभेदों के चलते सन् 1893 में आर्य समाज का औपचारिक विभाजन हो गया जहाँ मुंशीराम ने अपने समर्थकों के साथ गुरूकुल आधारित शिक्षा की शुरुआत की। तत्पश्चात् 1893 के बाद आर्य समाज के दो हिस्से हो गए–डी. ए. वी. समूह तथा गुरुकुल समूह।

मुंशी राम तथा लेख राम ने स्वयं को वेद शिक्षा के प्रचार– प्रसार के लिए समर्पित कर दिया। तथा मिशनरियों के प्रभाव से शिक्षा को बचाने के लिए जालंधर में आर्यकन्या पाठशाला का निर्माण किया। सन् 1902 में मुंशीराम ने हरिद्वार में कांगड़ी में एक गुरूकुल की नींव रखी। यह संस्थान भारत में आर्य समाज की शिक्षा शाखा का केन्द्र बन गया। यहीं पर मुंशीराम ने संन्यास लिया तथा स्वामी श्रद्धानंद बन गए। आर्य समाज की दोनों शाखाएँ अर्थात् डी. ए. वी. तथा गुरूकुल शिक्षा के मुद्दे पर तो अलग–अलग मतों वाली थीं किंतु महत्त्वपूर्ण सामाजिक, राजनीतिक तथा सामाजिक मुद्दों पर एक थीं। पूर्ण रूप से आर्य समाज ने हिन्दुओं के ईसाई तथा इस्लाम में धर्मान्तरण को पूर्ण रूप से गलत

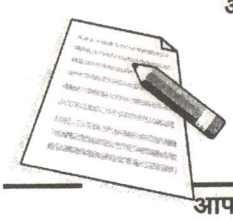

आपकी टिप्पणियाँ

ठहराया तथा धर्मान्तरित हुए हिन्दुओं की पुनः स्वधर्म में वापसी करवाई। इस प्रक्रिया को शुद्धि कहा गया। उन्होंने देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी भाषा के प्रयोग पर बल दिया। सन् 1980 में आर्य समाज ने गौ वध के मुद्दे को उठाया तथा गौरक्षिणी सभा की नींव डाली। आर्य समाज ने छूआछूत के खिलाफ आंदोलन किया तथा जाति भेद की समाप्ति पर जोर दिया।

**मुस्लिमों में सुधार आंदोलन**

मुस्लिमों के शिक्षित एवं संभ्रांत वर्ग में सत्ता खोने की पीड़ा थी। इसके पीछे मुख्य वजहें थीं–मुगलों से अंग्रेजों को सत्ता का हस्तांतरण तथा फारसी की बजाय अंग्रेजी का रोजगार एवं दफ्तर की भाषा बन जाना। 19वीं शताब्दी के प्रारंभ में बंगाल में किसानों द्वारा प्रारंभ किए सुधारवादी आंदोलन फराजिस में विशुद्ध इस्लाम पर लौटने पर बल दिया। उन्होंने दिल्ली के शाह बलियतुल्लाह (1703–63) की शिक्षाओं का अनुसरण किया जिन्होंने लगभग एक शताब्दी पूर्व इस्लाम की शुद्धता को पुनः पाने पर बल दिया था तथा मुस्लिमों के बीच बढ़ रही गैर मुस्लिम परम्पराओं का विरोध किया था। फराजिस के संस्थापक शरीयत उल्ला (1781–1839) ने शुद्धिकरण की शिक्षाएँ दी तथा फैरज की ओर लौटने को कहा जैसे–कलीम अर्थात इस्लाम के आवश्यक कर्तव्य, सलत (नमाज), सॉन (रोज़ा), जकात (गरीबों को मदद) तथा हज। उन्होंने एक ही खुदा अर्थात् तौहीद के विचार को बढ़ावा दिया। अन्य आंदोलन जो मुसलमानों के बीच हुआ, वह था **तारीख-ए-मुहमदिया** जो कि टीटू मीर के नेतृत्व में हुआ तथा सैय्यद अहमद बरेलवी के नेतृत्व में आगे बढ़ा। इस आंदोलन ने भी अतीत की शुद्धि पर लौटने पर जोर दिया। एक अन्य आंदोलन उलेमा वर्ग (मुस्लिम धर्माधिकारी) की शक्ति के पतन को लेकर संयुक्त क्षेत्र के देवबंद में प्रारंभ हुआ।

इस्लामी विचारों की दिल्ली शाखा दिल्ली कॉलेज (वर्तमान में जाकिर हुसैन कॉलेज) से प्रारंभ हुई जिसने एक समांनातर शिक्षा की शुरुआत की –इस्लामी तथा ब्रिटिश। सन् 1830 के शुरु में कॉलेज ने मुस्लिमों में शिक्षा के प्रति आधुनिक चेतना का विस्तार किया। हालाँकि 1857 के विद्रोह तथा परिणामस्वरूप ब्रिटिश सेनाओं के दमन ने इस बौद्धिक उत्साह को दबा दिया। किंतु आधुनिकीकरण की इच्छा एक वर्ग के भीतर तीव्र रूप से बनी रही।

सैय्यद अहमद खान (1817–1898) के नेतृत्व में मुस्लिमों को नई दिशा मिली जिनके अनुसार आधुनिक शिक्षा भारतीय मुस्लिमों की स्थिति में सुधार के लिए आवश्यक थी। उन्होंने यूरोपीय विज्ञान तथा तकनीकी शिक्षा पर जोर दिया। सन् 1866 में उन्होंने ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन की नींव डाली। वे सन् 1869–1870 के दौरान एक वर्ष तक इंग्लैंड में रहे। वहाँ से वापस आकर उन्होंने अपने मुस्लिम समुदाय से अंग्रेज समाज की कुछ सकारात्मक विशेषताओं को अपनाने की सलाह दी, जैसे अनुशासन, क्रमबद्धता, कुशलता तथा शिक्षा का उच्च स्तर। उन्होंने संकेत दिया कि कुरान तथा प्राकृतिक विज्ञान में कोई भी मूलभूत अन्तर नहीं है। उन्होंने सन् 1875 में अलीगढ़ में मुहम्मद एंग्लो ओरिएंटल कॉलेज की स्थापना की जो मुसलमानों के लिए आधुनिक शिक्षा का मुख्य केन्द्र बन गया। विद्यार्थी प्रारंभिक स्तर पर सरकार द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम का अनुसरण करते थे तथा माहौल इस्लामी होता था। सन् 1878 में महाविद्यालय में

कक्षाएँ प्रारम्भ हुई तथा गैर मुस्लिमों ने भी नामांकन कराया। सन् 1886 में सैय्यद अहमद खान ने मुहम्मद एंग्लो ओरिएंटल शैक्षणिक सम्मेलन की नींव डाली। अलीगढ़ के मुस्लिम स्नातकों ने, जो कि 1882–1902 के दौरान 220 की संख्या में थे, मुस्लिम बुद्धिजीवियों को प्रभावित किया तथा समाज को साथ एक योग्य तथा आधुनिक नेतृत्व प्रदान किया।

**सुधार आंदोलनों के प्रभाव**

19वीं शताब्दी में हुए सुधार आंदोलनों ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन की पृष्ठभूमि तैयार की। कुछ महिला आंदोलनकारियों ने भी 19वीं शताब्दी के सामाजिक जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। इनमें मुख्य नाम थे, पश्चिम क्षेत्र में पंडिता रामाबाई, मद्रास में सिस्टर सुब्बालक्ष्मी एवं बंगाल में रोकया सखावत हुसैन। सुधार आंदोलनों ने आधुनिक मध्यवर्ग को जन्म दिया जो अपने अधिकारों के प्रति सजग था। कुछ आंदोलनकारियों ने ऐसे ब्रिटिश कानूनों का विरोध किया जो उनके अनुसार धर्म में दखलंदाजी करने वाले थे। शादी की आयु 10 से बढ़ा कर 12 किए जाने के मामले से यह स्पष्टतः दिखाई देता है। हमें यह भी प्रतीत होता है कि इन सुधार आंदोलनों ने कुछ ऐसे भी मुद्दे उठाए जो कि अन्य सम्प्रदायों के हित के खिलाफ थे तथा आगे चलकर जिन्होंने सम्प्रदायिकता को हवा दी।

### पाठगत प्रश्न 18.2

1. राममोहन राय द्वारा उठाए गए मुख्य मुद्दों को विस्तार से लिखिए।

2. देवेन्द्रनाथ टैगोर तथा केशव चन्द्र सेन के मध्य विवाद के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।

3. आर्य समाज विभाजित क्यों हुआ? इसकी भिन्न–भिन्न शाखाओं के नेता कौन थे?

4. फराजी आंदोलन ने किस मुद्दे पर जोर दिया?

5. मुस्लिम समुदाय को आधुनिक बनाने में सैय्यद अहमद खान की भूमिका की समीक्षा कीजिए।

## 18.3 भारत में पश्चिमी शिक्षा का उदय

ब्रिटिश शासक भारत में अपनी विचारधारा तथा शिक्षा के प्रचार को लेकर बहुत ही उत्सुक थे। यह देश में उनकी जड़ों को मजबूत कर सकता था। इसके अतिरिक्त इसकी वजह से भारत में ब्रिटिश शासन के स्वामिभक्त वर्ग का उदय भी हो सकता था। ब्रिटिश शिक्षा इस उद्देश्य की प्राप्ति का सबसे महत्त्वपूर्ण माध्यम थी। 19 से 20 वीं शताब्दी के दौरान ब्रिटिश शिक्षा को लोकप्रिय बनाने के लिए अनेक प्रयास किए गए तथा तद्नुसार

आपकी टिप्पणियाँ

आधारभूत ढांचे बनाए गए। आरंभ में वारेन हेस्टिंग्स, कार्नवालिस, विलियम जोन्स, जोनाथन डंकन तथा अन्य प्राच्यविद प्रशासकों एवं विद्वानों ने भारतीय प्राचीन शिक्षा को ही प्रमुखता दी। किंतु शनैः शनै : उनके विचार अपना महत्त्व खोते चले गए। यह माना गया कि ब्रिटिश साम्राज्य को अपना सांस्कृतिक अभियान भारत में पूर्ण करना है, इसलिए पश्चिमी विज्ञान तथा सभ्यता को लोकप्रिय बनाना होगा।

### ब्रिटिश शिक्षा की शुरुआत तथा चार्टर एक्ट 1813

भारत में ब्रिटिश शिक्षा की शुरुआत 18वीं शताब्दी में कुछ चैरिटी स्कूलों द्वारा कलकत्ता, मद्रास तथा मुम्बई में यूरोपीय तथा एंग्लो–इंडियन बच्चों की शिक्षा द्वारा हुई। हालांकि ईस्ट इंडिया कंपनी ने कई तरीकों से इन स्कूलों को सहयोग दिया किंतु भारतीयों को अंग्रेजी पढ़ाने में कोई रुचि नहीं दिखलाई। इसकी शुरुआत अंततः 1813 में चार्टर एक्ट द्वारा हुई। इस एक्ट ने मिशनरियों को पूरे भारत में यात्रा करने की अनुमति दी। उन मिशनरियों का उद्देश्य भारत में पश्चिमी शिक्षा का प्रचार तथा अंग्रेजी के माध्यम से ईसाइयत का प्रचार–प्रसार था। विशेष रूप से, इस एक्ट ने (i) भारतीय शिक्षित वर्ग को प्रोत्साहित करने, साहित्य के विकास तथा (ii) भारतीयों के बीच विज्ञान के प्रचार प्रसार पर कंपनी को वार्षिक एक लाख रुपए खर्च करने को कहा। हालाँकि इस एक्ट की व्याख्या अलग–अलग लोगों ने भिन्न–भिन्न रूपों में की।

### शिक्षा के माध्यम तथा मैकाले की भूमिका पर बहस

भारत में जिस शिक्षा पर कंपनी पैसा खर्च कर रही थी, उसके माध्यम को लेकर बहसें प्रारंभ हो गईं। प्राचीन विद्वानों तथा ब्रिटिश व्यवस्था के समर्थकों के बीच तमाम बहसें हुईं। अंग्रेजी शिक्षा के पक्ष में माहौल तब बनना प्रारंभ हुआ जब बेनटिंक ने गर्वनर जनरल का पदभार सँभाला (1828)। सन् 1834 में टी. बी. मैकाले उसकी सलाहकार समिति में कानूनी सदस्य के रूप में सम्मिलित हुआ। मैकॉले अंग्रेजी शिक्षा का महान पक्षधर था। वह जन निर्देशों की सामान्य समिति का अध्यक्ष बनाया गया। ब्रिटिश आधारित शिक्षा के समर्थक अथवा ब्रिटिश विद, मैकॉले के नेतृत्व में विजयी सिद्ध हुए। मैकाले ने भारतीय शिक्षा पर अपना प्रपत्र फरवरी, सन् 1835 में जारी किया। यह संदेश भारत में अंग्रेजी शिक्षा का पथप्रदर्शक सिद्धांत बन गया। सरकार ने संकल्प लिया कि भविष्य में अंग्रेजी भाषा के माध्यम से यूरोपीय साहित्य तथा विज्ञान का प्रचार–प्रसार उसका उद्देश्य होगा। भविष्य में कंपनी द्वारा खर्च किया गया कोष इसी उद्देश्य के लिए प्रयुक्त होगा। इस कदम का अर्थ यह हुआ कि अब भारत में अंग्रेजी शिक्षा पश्चिमी ज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम बन गई थी।

मैकॉले का स्पष्ट मानना था कि भारत में अंग्रेजी शिक्षा एक ऐसे वर्ग का निर्माण करेगी जो कि 'शक्ल सूरत से तो पूरी तरह भारतीय होगा किंतु स्वभाव में अंग्रेज'। यह उम्मीद जताई गई कि यह वर्ग भारत में ब्रिटिश राज का सुदृढ़ स्तंभ बनेगा। यह समझा गया कि अंग्रेजी माध्यम से प्रशिक्षित ये भारतीय पश्चिमी नीतियाँ तथा नैतिकता सीखेंगे जब औपनिवेशिक ढांचे के साथ जुड़ने की बात आएगी तो ये भारतीय भारत में ब्रिटिश शासन को मजबूत करेंगे। यह डाउनवार्ड फिल्ट्रशन सिद्धांत था। यह शिक्षा जन सामान्य के लिए न होकर पढ़े लिखे तथा कुलीन वर्ग के लिए थी। इस सिद्धान्त के अनुसार यह माना गया कि इन कुलीन भारतीयों के माध्यम से अंग्रेजी शिक्षा नीति जन साधारण में फैलेगी। इन प्रशिक्षित भारतीयों ने जब शिक्षकों का कार्य किया तो क्षेत्रीय भाषाओं में प्राथमिक शिक्षा

आपकी टिप्पणियाँ

का स्वतः ह्रास होने लगा। मैकॉले को यकीन था कि सीमित कोष से वह जन साधारण को ब्रिटिश में शिक्षित नहीं कर पाएगा। इससे बेहतर यह था कि ये मुट्ठी भर भारतीय अंग्रेज भाषांतरकारों का काम करते। यह वर्ग स्थानीय भाषा तथा साहित्य को समृद्ध कर पश्चिमी विज्ञान तथा साहित्य को जन–जन तक पहुंचाने में मदद करेगा। यह ब्रिटिश शासकों को बहुत ही कम खर्च पर पश्चिमी सभ्यता को जन–जन तक फैलाने में मदद की। इस सिद्धांत ने ब्रिटिश अफसरशाही में भारतीयों को अधीनस्थ पदों जैसे कि क्लर्क आदि बनने के योग्य बनाया।

**वुड्स डिस्पैच/वुड योजना**

19वीं शताब्दी में भारत में शिक्षा, विशेषकर अंग्रेजी शिक्षा के विकास का सबसे महत्त्वपूर्ण हिस्सा था राज्य सचिव चार्ल्स वुड द्वारा तैयार किया गया दिशा–निर्देश। यह सन् 1854 में जारी किया गया तथा वुड घोषणा पत्र के नाम से जाना गया। इस विस्तृत योजना ने 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में शिक्षा व्यवस्था को प्रभावित किया। इसने यूरोपीय शिक्षा को भारतीय नक्शे पर पूर्णतः स्थापित कर दिया।

**इसकी मुख्य विशेषताएँ थीं**

1. इसने भारत में शिक्षा का उद्देश्य यूरोपीय ज्ञान के प्रसार को माना।
2. उच्च शिक्षा के लिए माध्यम अंग्रेजी ही रहेगी तथा स्थानीय भाषाएँ ऐसी माध्यम होंगी जिनके द्वारा यूरोपीय ज्ञान जन सामान्य तक पहुँच सके।
3. इसने स्कूलों में कुछ श्रेणियों का प्रस्ताव दिया। यथा, देशी भाषा की प्राथमिक पाठशालाएँ गांव के स्तर पर, उसके बाद माध्यमिक स्तर पर एंग्लो देशभाषा के उच्च विद्यालय तथा जिला स्तर पर संबद्ध महाविद्यालय।
4. इस घोषणा पत्र ने पहली बार शिक्षा क्षेत्र में निजी प्रयासों को प्रोत्साहित करने हेतु सरकारी अनुदान की सिफारिश की।
5. इसने ब्रिटिश शासन के अधीनस्थ सभी पाँच क्षेत्रों में एक निदेशक के नेतृत्व में जन निर्देश विभाग की स्थापना का भी प्रस्ताव दिया। इस विभाग का उद्देश्य क्षेत्र विशेष में शिक्षा की प्रगति की समीक्षा करना था। जन निर्देश विभाग की स्थापना सन् 1855 में हुई तथा इसने जन निर्देश समिति एवं शिक्षा परिषद् (कमिटी ऑफ पब्लिक इंस्ट्रक्शन एंड काउंसिल ऑफ एजुकेशन) का स्थान ले लिया।
6. इसने कलकत्ता, मुम्बई तथा मद्रास में लंदन विश्व – विद्यालय की तर्ज पर विश्वविद्यालय स्थापित करने का प्रस्ताव भी दिया जो कि परीक्षाओं का आयोजन करता तथा उपाधि देता। सन् 1857 में कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास में विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई।
7. औपचारिक शिक्षा के अतिरिक्त इस घोषणा पत्र ने व्यावसायिक शिक्षा के महत्त्व पर भी बल दिया तथा तकनीकी स्कूल और महाविद्यालयों की स्थापना की भी वकालत की।
8. इसने भावी शिक्षकों हेतु प्रशिक्षण संस्थानों का भी प्रस्ताव रखा।
9. इसने महिलाओं के लिए शिक्षा का भी समर्थन किया। परिणाम स्वरुप कई आधुनिक बालिका विद्यालय खोले गए जिन्हें सरकार की तरफ से सहायता भी प्राप्त हुई।
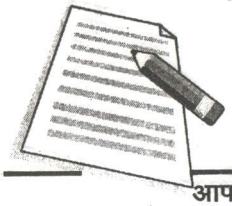
आपकी टिप्पणियाँ

### हंटर कमीशन

शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति की समीक्षा करने के लिए वुड के घोषणा पत्र के पश्चात् सन् 1882 में डब्ल्यू डब्ल्यू हंटर के नेतृत्व में हंटर कमीशन की स्थापना हुई। यह मुख्यतः प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा पर ही केन्द्रित था। हंटर कमीशन ने ढेर सारी संस्तुतियाँ कीं। उसने प्राथमिक शिक्षा पर विशेष बल दिया जिसका नियंत्रण जिला तथा नगरपालिका बोर्ड को स्थानांतरित करने की बात कही गई। माध्यमिक स्तर पर दो संकाय होने चाहिएँ–एक तो साक्षरता शिक्षा जो विश्वविद्यालय शिक्षा का रुख करे तथा दूसरी व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने वाला संकाय। शिक्षा के क्षेत्र में निजी प्रयासों को भी बढ़ावा दिया गया। इसने चुनिंदा शहरों से बाहर निकलकर महिलाओं की शिक्षा व्यवस्था पर विशेष ध्यान देने को कहा। अगले दो दशकों तक हंटर की सिफारिशों का असर चारों ओर दिखाई पड़ा। माध्यमिक तथा प्राथमिक स्तर पर शिक्षा के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई। सन् 1882 में पंजाब विश्वविद्यालय तथा सन् 1887 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय की स्थापना हुई।

### पाठगत प्रश्न 18.3

1. किस एक्ट ने ईस्ट इंडिया कंपनी को शिक्षा पर सालाना एक लाख रुपए खर्च करने का निर्देश दिया।

2. भारत में ब्रिटिश शिक्षा का जबरदस्त समर्थक कौन थ?

   (क) जोनाथन डंकन

   (ख) टी बी मैकाले

   (ग) वारेन हेस्टिंग्स

   (घ) विलियम जोन्स

3. मैकॉले द्वारा भारत में ब्रिटिश शिक्षा के विस्तार के उद्देश्य को संक्षेप में समझाइए।

4. भारत में शिक्षा नीति के निर्देशन में वुड के घोषणा–पत्र की महत्ता को रेखांकित कीजिए।

5. हंटर कमीशन किससे संबंधित था?

## 18.4 भारत में पत्रकारिता का विकास

प्रेस तथा पत्रकारिता के उदय ने आधुनिक युग के दौरान एक नई चेतना को जन्म दिया। छपाई तकनीक के विस्तार ने पुस्तकों को आसानी से उपलब्ध कराया।

दूसरे शब्दों में, छपाई ने भारत में संवाद के मार्ग खोले। छपाई की नई तकनीक ने पत्रकारिता तथा प्रेस की प्रगति में अहम भूमिका निभाई। 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अंग्रेजी भाषा में समाचार पत्र का प्रकाशन आरंभ हो गया। 19वीं शताब्दी के दौरान स्थानीय भाषाओं में भी कई पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारंभ हो गया। जेम्स ऑगस्टस हिक्की ने सन् 1780 में बंगाल गजट के नाम से भारत में पहला समाचार पत्र प्रकाशित किया। इसके पश्चात् बंगाल, मुम्बई तथा मद्रास से समाचार पत्रो की श्रृंखला आरंभ हो गई। कुछ मुख्य समाचार पत्र थे–कलकत्ता क्रोनिकल (1786) मद्रास कुरियर (1788) तथा बाम्बे हेराल्ड (1789)।

ब्रिटिश के आरंभिक समाचार पत्र भारत में रह रहे यूरोपीय तथा एंग्लो इंडियन समुदाय के लिए प्रकाशित होने थे। हालांकि कंपनी के अधिकारी अपने द्वारा किए जा रहे दुष्कृत्यों के समाचारों से चिंतित थे, अतः तमाम तरह के प्रतिबंध लागू किये गए। लॉर्ड वेलेस्ली (1796–1804) ने 1799 में सेंसरशिप ऑफ प्रेस एक्ट के जरिए कड़े प्रतिबंध लगाए। इस अधिनियम में चेतावनी दी गई। कि सभी सूचनाएँ सरकार के सचिव द्वारा अनुमोदित होनी चाहिए। प्रकाशक, संपादक तथा मालिक का नाम हर अंक में उल्लिखित होना चाहिए। लॉर्ड हेस्टिंग्स (1813–23) ने 1818 ई. में इनमें से कुछ नियमों में ढील दी तथा प्रेस से प्री–सेंसरशिप हटा ली। हालांकि, यह ढील अस्थायी ही सिद्ध हुई क्योंकि 1823 में कार्यवाहक गवर्नर जनरल का पद संभालने वाले जॉन एडम्स ने इसी वर्ष कुछ और कड़े नियम प्रेस पर थोप दिये। किसी प्रेस का संचालन करने एवं प्रयोग करने के लिए लाइसेंस का होना आवश्यक कर दिया गया। गवर्नर जनरल के पास लाइसेंस निरस्त करने का अधिकार था।

बाद के गवर्नर जनरल चार्ल्स मेटेकैफे (1835–1836) स्वतंत्र प्रेस के पक्षधर थे। उन्होंने 1823 के नियमों को निरस्त कर दिया गया। मेटकैफे प्रेस अधिनियम चाहता था कि प्रकाशक केवल अपने नाम तथा प्रकाशन के स्थान एवं परिसर की घोषणा कर दे। इस उदारवादी कदम ने प्रेस की प्रगति पर सकारात्मक प्रभाव डाला तथा 1857 तक जब तक कि विद्रोह के चलते पुनः कड़े नियम नहीं लगाये गए बड़ी संख्या मे समाचार पत्र प्रकाशित हुए। भारतीय भाषाओं के समाचार पत्र पर सबसे कठोर प्रतिबंध लॉर्ड लिटन का वर्नाकुलर प्रेस एक्ट 1878 का था। एक अत्यन्त ही रंगभेदी तथा भेदभाव वाले इस अधिनियम ने सरकार के खिलाफ भारतीय भाषाओं की अभिव्यक्ति का गला घोंटने का प्रयास किया। ये प्रतिबंध ब्रिटिश समाचार पत्रों पर लागू नहीं हुए। यह लिटन की रूढ़िवादी तथा घमंडी सोच का परिचायक था। इसने सरकार को अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय बुद्धिजीवियों की लेखनी पर नियंत्रण का अधिकार दे दिया। जिलाधिकारी के विरूद्ध अपील करने का प्रावधान नहीं था। इस अधिनियम को सन् 1882 में लॉर्ड रिपन द्वारा बदल दिया गया जो अपने उदारवादी दृष्टिकोण की वजह से भारतीय जनता में बहुत लोकप्रिय था।

## पाठगत प्रश्न 18.4

1. भारत का पहला समाचार पत्र कौन–सा था और यह कब प्रकाशित हुआ था?

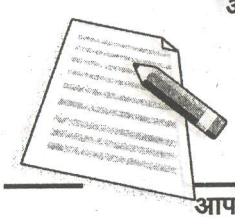

आपकी टिप्पणियाँ

2. समाचार पत्रों को प्रगति में प्रिंटिंग प्रेस की महत्ता को रेखांकित कीजिए।

3. सेंसरशिप ऑफ प्रेस एक्ट 1799 के जरिए कौन से प्रतिबंध लागू किए गए?

4. चार्ल्स मेटेकैफे ने क्या सकारात्मक बदलाव किए?

5. वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट 1878 क्या था?

## आपने क्या सीखा

आपने पढ़ा कि भारत के प्रति ब्रिटिश शासकों का रुख सर्वथा भिन्न था। उनके द्वारा बनाई गई नीतियाँ उनके वैचारिक झुकाव को ही दर्शाती हैं 19वीं शताब्दी के दौरान सुधार आंदोलनों की कड़ियों ने भारत को झकझोर दिया। इन आंदोलनों ने अन्य मुद्दों यथा, महिलाओं की स्थिति, जातिगत भेदभाव, धार्मिक कुरीतियाँ, समाजों का आधुनिकीकरण तथा शिक्षा के पिछड़ेपन को भी संबोधित किया। ब्रिटिश नीति निर्मातओं ने ब्रिटिश शिक्षा को लोकप्रिय बनाने का भी प्रयत्न किया। जिसके परिणामस्वरूप देश पर उनका नियंत्रण और मजबूत हुआ। इस अवधि के दौरान भारतीय तथा ब्रिटिश दोनों ही समाचार पत्र फले–फूले। हालांकि प्रतिबंधों ने प्रेस की स्वतंत्रता को प्रभावित अवश्य किया। इस अवधि के दौरान हुए सामाजिक परिवर्तनों ने अंततः ब्रिटिश शासन के खिलाफ स्वतंत्रता आंदोलन की नींव डाली।

## पाठांत प्रश्न

1. भारत में ब्रिटिश नीतियों के निर्धारण में विचार धाराएं आवश्यक क्यों थी?
2. भारत के अतीत की लोकप्रियता में प्राच्यविदों का क्या योगदान था?
3. 19वीं शताब्दी में हिन्दू समाज में कौन–कौन सी कुरीतियाँ व्याप्त थी?
4. इस अवधि के दौरान हुए सुधार आंदोलनों में महिलाओं से संबंधित मुद्दे कितने आवश्यक थे?
5. पूर्वी एवं पश्चिमी सभ्यताओं के प्रति विवेकानंद के क्या विचार थे?
6. आर्य समाज द्वारा उठाए गए महत्त्वपूर्ण मुद्दे कौन–कौन से थे?
7. 19वीं शताब्दी में मुस्लिम समुदाय में हुए महत्त्वपूर्ण सुधारवादी आंदोलनो की समीक्षा कीजिए। उनके द्वारा कौन–कौन से मुद्दे उठाए गए?
8. भारत में ब्रिटिश शिक्षा के विस्तार पर मैकॉले के विचारों पर प्रकाश डालिए।

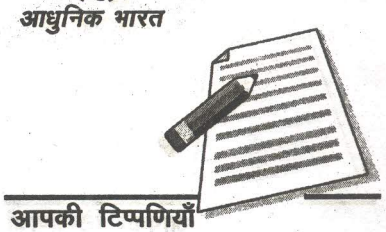

आपकी टिप्पणियाँ

9. डाउनवार्ड फिल्ट्रेशन का सिद्धांत क्या था?

10. वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट 1878 में क्या कमियाँ थी?

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

### 18.1

1. कोलकाता मदरसा (1781), एशियायिक सोसायटी ऑफ बंगाल (1789) तथा बनारस में संस्कृत महाविद्यालय (1794)
2. एशियाटिक सोसायटी ने संस्कृत के महत्त्वपूर्ण ग्रंथों के अनुवाद किए।
3. लॉर्ड वैलेजली
4. इंग्लैंड
5. 1813 ई. का चार्टर एक्ट

### 18.2

1. स्त्री शिक्षा का अभाव, बहुपत्नीवाद तथा सती प्रथा जैसे मुद्दे। देखें 18.2 अनुच्छेद 3।
2. केशव चंद्र सेन देवेन्द्रनाथ टैगोर की तुलना में सामाजिक संदर्भ अधिक सुधारवादी थे। देखें 18.3 अनुच्छेद–5
3. 1893; डी ए वी विभाग : लाला हंसराज; लाला लाजपत राय; गुरूकुल विभाग; मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानंद) लेखराम तथा गुरूदत
4. धार्मिक शुद्धिकरण तथा फैराज अर्थात् इस्लाम के मूल कर्तव्यों की ओर वापसी।
5. उन्होंने भारत में मुस्लिम संप्रदाय के लिए आधुनिक शिक्षा पर जोर दिया। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने अलीगढ़ में मुस्लिम एंग्लो ओरिएंटल कॉलेज की स्थापना की। देखे 18.2 अनुच्छेद 4

### 18.3

1. सन् 18.13 ई. का चार्टर एक्ट
2. टी बी मैकाले
3. उसके मुताबिक अंग्रेजी शिक्षा के विस्तार से ऐसे वर्ग का उदय होगा जो ब्रिटिश शासन का समर्थन करेगा। देखें 18.3 अनुच्छेद 4
4. यह घोषणा पत्र की एक विस्तृत योजना था जो यूरोपीय मॉडल पर आधारित था, जिसने भारत की शिक्षा नीति को 50 वर्षों तक निर्देशित किया। देखें 18.3 अनुच्छेद 5
5. यह वुड के घोषणा पत्र के पश्चात् हुई शिक्षा में प्रगति से संबंधित था तथा मुख्यतः प्रारंभिक तथा माध्यमिक शिक्षा से संबंधित था। देखें 18.3 अनुच्छेद 6

**18.4**

1. बंगाल गजट– 1780
2. छपाई तकनीक के व्यापक प्रयोग ने समाचार पत्रों की प्रगति तथा बड़ी मात्रा में किताबों के प्रकाशन को बढ़ावा दिया। देखें 18.4 अनुच्छेद।
3. पूरी सामग्री सरकार के सचिव द्वारा अनुमोदित होनी चाहिए थी। प्रकाशक के नाम के अतिरिक्त हर अंक में संपादक तथा मालिक के नाम का उल्लेख भी अनिवार्य था।
4. उसने 1823 में प्रेस पर लगे नियमों मे ढील दी। अब प्रकाशकों के लिए मात्र अपना नाम तथा प्रकाशन स्थान पता देना अनिवार्य था। देखें 18.4 अनुच्छेद–3
5. 1878 के वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट ने भारतीय भाषाओं की पत्र–पत्रिकाओं पर पाबंदी लगाई।

**पाठान्त प्रश्नों के संकेत**

1. 18.1 – प्रशासन एवं आर्थिक नीतियों से संबंधित विचारों के प्रभाव के अंतर्गत
2. 18.2 अनुच्छेद 2, 18.2.1 एवं 2.2
3. 18.2.2 तथा 18.2.3
4. 18.2.5 – आर्य समाज के अधीन
5. 18.2.3 रामकृष्ण मिशन के अंतर्गत
6. 18.2.7
7. 18.3 तथा 18.1.1
8. 18.3.2 अनुच्छेद – 1
9. 18.3.2 अनुच्छेद 2
10. 18.4 अनुच्छेद 3

**शब्दावली**

1. **ओरिएंटलिस्ट -प्राच्यवादी** – अंग्रेज प्रशासकों का वह समूह जिसने भारत के गौरवशाली अतीत को लोकप्रिय बनाया।
2. **व्हिग का राजनीतिक दर्शन** – कार्यपालिका, विधायिका तथा न्याय पालिका सरकार के पृथक अंग होने चाहिए।
3. **बंगाल पुनर्जागरण** – बंगाल के भव्य इतिहास की पुनः खोज तथा भाषा एवं साहित्य का आधुनिकीकरण।
4. **सती प्रथा** – पति की चिता पर पत्नी को जीवित जलाना
5. **बहुपत्नी प्रथा** – एक से अधिक पत्नियाँ रखना

आपकी टिप्पणियाँ

| | | |
|---|---|---|
| 6. ब्रह्मो प्रण | – | देवेन्द्रनाथ द्वारा लिखित। इसमें ब्रह्म समाज के सदस्यों के कर्त्तव्यों तथा दायित्वों का विवरण है। |
| 7. आध्यात्मिक हिन्दूवाद | – | हिन्दू धर्म की आध्यात्मिकता का स्वामी विवेकानंद द्वारा प्रचार |
| 8. मूर्तिपूजा | – | मूर्तियों की पूजा |
| 9. एकेश्वरवाद | – | एक ही ईश्वर में विश्वास रखना। |
| 10. एंग्लोवैदिक शिक्षा | – | आर्य विचारधारा, अंग्रेजी शिक्षा के साथ वैदिक ग्रंथो की शिक्षा पर बल देनेवाली शिक्षा पद्धति। |
| 11. शुद्धि | – | धर्मान्तरण के खिलाफ आर्य समाज द्वारा चलाया गया अभियान। धर्मान्तरित हुए हिन्दुओं को पुनः हिन्दू धर्म में लाना। |
| 12. गौरक्षिणी सभा | – | गायों की रक्षा के लिए समिति |
| 13. फराइज | – | इस्लाम की पवित्रता को कायम रखना तथा गैर इस्लामिक रीति–रिवाजों का इस्लाम में प्रवेश के लिए विरोध करना। हज, नमाज, रोज़ा, जकात तथा विश्वास पर जोर डालना। |
| 14. प्राकृतिक-विज्ञान | – | प्रकृति को समझने का प्रयास |
| 15. चार्टर एक्ट | – | रानी एलिजाबेथ द्वारा दिया गया कंपनी को अधिकार पत्र, व्यापार में विशेषधिकार तथा संबंधित दिशा–निर्देश जिनकी समय–समय पर समीक्षा होती थी। |
| 16. वर्नाक्युलर प्रेस | – | स्थानीय भाषाओं के समाचार पत्र। |

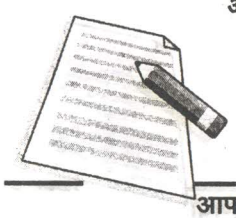

आपकी टिप्पणियाँ

19

# कंपनी शासन का जन विरोध

भारत में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के शासनकाल के प्रारंभिक वर्षों में अनेक बगावतें और विद्रोह हुए। जैसा कि हमें मालूम है, 1750 ईस्वी से 1850 ईस्वी तक की 100 वर्षों की अवधि में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत को उपनिवेश में बदलने के लिए विभिन्न उपाय किए। इस अवधि के दौरान भारत में ब्रिटिश द्वारा अनेक नीतियाँ अपनाई गईं, जो मुख्यतः ब्रिटिश के हित में थीं। अनेक भू–राजस्व प्रयोग किए गए, जिनके कारण किसानों को मुश्किलों का सामना करना पड़ा। स्थानीय प्रशासन निर्धन ग्रामीणों को सहायता और प्राकृतिक न्याय देने में विफल रहा। इस पाठ में हम जानेंगे कि औपनिवेशिक प्रशासन में किसानों और आदिवासी लोगों ने कैसे दुःख उठाए तथा उन्होंने विद्रोह क्यों किए। महत्त्वपूर्ण जन संघर्षों के संक्षिप्त वर्णन से हम इन बगावतों के स्वरूप और महत्व का विश्लेषण कर सकेंगे। 1857 का विद्रोह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि अंग्रेजी शासन के खिलाफ इस एकीकृत आंदोलन में पहली बार विभिन्न जाति, धर्म और वर्ग की पृष्ठभूमि वाले लोग एकजुट हुए।

## उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- 1857 तक हुए जन विद्रोहों की पृष्ठभूमि के बारे में चर्चा कर सकेंगे;
- इन विद्रोहों के स्वरूप और महत्व की व्याख्या कर सकेंगे;
- उन मुद्दों को पहचान सकोगे, जिनके कारण 1857 का विद्रोह हुआ और
- 1857 के विद्रोह की सार्थकता और महत्त्व का विश्लेषण कर सकेंगे।

## 19.1 जन विद्रोह के लिए जिम्मेदार परिस्थितियाँ

प्रारंभिक पाठों में हम पढ़ चुके हैं कि भारत में ब्रिटिश शासन ने भारतीयों के सामाजिक एवं–आर्थिक जीवन में अनेक परिवर्तन किए। औद्योगिक क्रांति (इसके बारे में हम अगले पाठों में और अधिक जानेंगे) के चलते इंग्लैंड को अन्य राष्ट्रों में

कच्चा माल और बाजार ढूँढना आवश्यक हो गया। इस आवश्यकता ने भारत में औपनिवेशिक शासकों की नीति को प्रभावित किया। भारतीय अर्थव्यवस्था को ब्रिटिश शासकों के हितों के अनुकूल बना लिया गया। आओ हम इस अवधि के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था में आए कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों का स्मरण करते हैं।

- सम्पत्ति से संबंधित नियमों का एक नया संग्रह सामने लाया गया तथा भूमि को बेचे जाने योग्य वस्तु बनाया गया।
- भूमि के निजी स्वामित्व को मान्यता प्रदान की गई तथा स्वामी और भूमि पर खेती करने वाले किसान के बीच अनेक मध्यस्थ आ गए।
- ब्रिटिश पूंजीपतियों को लाभ पहुँचाने के लिए खाद्य फसलों की जगह वाणिज्यिक फसलों को बढ़ावा दिया गया।
- व्यापारियों, नौकरशाहों और भूस्वामियों द्वारा भूमि में सट्टेबाजी एवम् निवेश करने से दूरस्थ भू–स्वामी की परिपाटी का विकास हुआ।
- करों के बढ़ते भार से किसान आसानी से राजस्व संग्रहकर्ताओं, व्यापारियों और साहूकारों के शिकार होते गए।
- भारत से इंग्लैंड में धन का स्थानांतरण सामान्य बात हो गई।
- ब्रिटेन में उत्पादित वस्तुओं को बाजार में स्थान देने के लिए स्थानीय उद्योगों को कुचला गया।
- ब्रिटिश सरकार की भू–राजस्व नीति के कारण आदिवासियों ने भूमि पर अपने परंपरागत अधिकार खो दिए।

इन सब परिवर्तनों से ग्रामीण समाज विशेष रूप से किसानों और आदिवासियों को भयंकर झटका लगा। किसान के लिए कृषि अर्थव्यवस्था और सामाजिक ढांचे में नए परिवर्तनों का अर्थ किसान का और अधिक तथा व्यवस्थित शोषण किया जाना था।

इसे फिर स्मरण करें, औपनिवेशिक शासकों को उच्च दरों पर निर्धारित राजस्वों की समय पर वसूली करने से मतलब था। राजस्व एकत्रित करने में लगे जमींदारों और अन्य लोगो को किसानों की राजस्व भुगतान करने की क्षमता से कोई मतलब नहीं था और वे करों की जबरन वसूली करते थे। करों की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए किसान अपनी जमीनें बेचने को मजबूर हो जाते थे अथवा साहूकारों के चंगुल में फँस जाते थे। स्थानीय प्रशासन से न्याय की आशा नहीं की जा सकती थी क्योंकि वह तो धनी लोगों के प्रभाव में रहता था। इस प्रकार औपनिवेशिक शासन के दौरान कर्मचारी, भू–स्वामी और साहूकार कृषकों का शोषण करने के लिए एकजुट हो गए। सन् 1770 में बंगाल में पड़ा अकाल ग्रामीण समाज पर ब्रिटिश साम्राज्य की नीति के विध्वंसकारी प्रभाव का प्रमाण है। अर्थव्यवस्था के उपनिवेशन के साथ–साथ ब्रिटिश सरकार ने स्थानीय प्रशासन और समाज में परिवर्तन किए, इससे स्थानीय लोगों में असंतोष और रोष पैदा हो गया। विभिन्न स्थानों पर फैले इस असंतोष ने विद्रोह का रूप धारण कर लिया।

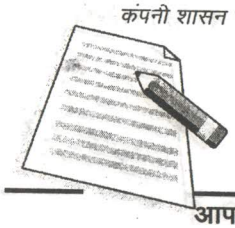

आपकी टिप्पणियाँ

## पाठगत प्रश्न 19.1

1. भारतीय किसानों ने ब्रिटिश सरकार द्वारा बढ़ाई जा रही करों की मांग को कैसे पूरा किया?

2. औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत किसानों का शोषण करने के लिए कौन–कौन सी एजेंसियों ने गठजोड़ कर लिए थे?

## 19.2 मुख्य विद्रोह

ब्रिटिश सरकार के प्रारंभिक विरोध के स्वरूप और महत्व का विश्लेषण करने से पहले यह बेहतर होगा कि हम कुछ विद्रोहों के विषय में जानें। 1760 ईस्वी के दशक से 1857 के विद्रोह तक भारत के विभिन्न भागों में कई विद्रोह हुए। इन विद्रोहों पर हम दो श्रेणियों–कृषक विद्रोह तथा आदिवासी विद्रोह में चर्चा करेंगे।

### 1. कृषक विद्रोह

करों के बढ़ते भार, भूमि से बेदखली और बंगाल में पड़े अकाल से किसानों का एक बहुत बड़ा वर्ग निर्धन हो गया। भूमि से बेदखल इनमें से बहुत से लोग सन्यासी और फकीर बन गए। हालांकि ये धार्मिक भिखारी थे, भिर भी वे अमीरों के अनाज गोदामों और स्थानीय सरकार के खजानों को लूटते थे। ये संन्यासी अकसर अपना धन गरीबों में बाँट देते थे और इन्होंने अपनी स्वयं की सरकार स्थापित कर ली। यद्यपि, ये ब्रिटिश शासकों के सशक्त दमनकारी उपायों के सामने अपने संघर्ष को ज्यादा लंबे समय तक जारी नहीं रख सके। बंकिम चंद्र चटर्जी ने संन्यासी विद्रोह को चिरस्मरणीय बनाने के लिए आनन्द मठ नाम का उपन्यास लिखा था।

बंगाल के दो जिलों रंगपुर और दिनाजपुर के किसान राजस्व ठेकेदार के अत्याचार से दुखी थे। ऐसे एक राजस्व ठेकेकार, देबीसिंह ने कर वसूल करने के लिए किसानों पर अत्याचार करके आतंक फैलाया हुआ था। जब ब्रिटिश अधिकारी किसानों की रक्षा करने में विफल रहे तो किसानों ने कानून को अपने हाथों में ले लिया। उन्होंने स्थानीय कचहरियों तथा ठेकेदारों और सरकारी कर्मचारियों के गोदामों पर आक्रमण किया। विद्रोहियों ने अपनी स्वयं की सरकार बनाई तथा कंपनी एजेंटों को राजस्व का भुगतान करना बंद कर दिया। यह विद्रोह 1783 में हुआ। विद्रोहियों को अंततः कंपनी अधिकारियों के समक्ष जबरन समर्पण करना पड़ा।

दक्षिण भारत में भी स्थिति अलग नहीं थी। बेदखल किए गए भूस्वामियों और विस्थापित किसानों ने विद्रोह कर दिया। तमिलनाडु मालाबार और तटीय आंध्र प्रदेश के पॉलिगरों ने 18वीं शती के अंत में और 19वीं शती के प्रारंभ में औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध विद्रोह किया। मालाबार के मप्पिलों का विद्रोह सबसे महत्त्वपूर्ण था। मालाबार के मप्पिला यहाँ बस गए अरब जाति के लोगों के वंशज थे और वे

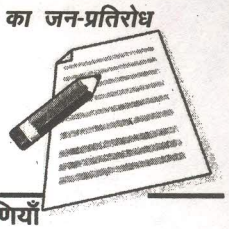



धर्म परिवर्तन कर हिन्दू बने थे। इनमें ज्यादातर भूमि का किराया देकर खेती करने वाले, भूमिहीन मजदूर, छोटे व्यवसायी तथा मछुआरे थे। ब्रिटिश द्वारा 18वीं शताब्दी के अंतिम दशक में मालाबार पर विजय तथा मालाबार में ब्रिटिश भू–राजस्व प्रशासन के प्रारंभ होने से मप्पिला भड़क उठे। अधिक कर–निर्धारण, अवैध कर, भूमि से बेदखली तथा भू–स्वामित्व अधिकार में परिवर्तन इनमें बढ़ते असंतोष के कारण थे। इसलिए उन्होंने ब्रिटिश और भूस्वामियों के विरुद्ध विद्रोह किया। धार्मिक गुरूओं ने मप्पिलों की एकता को मजबूती प्रदान करने और ब्रिटिश–विरोधी चेतना का विकास करने में सहायता की। इन मप्पिलों का औपनिवेशिक शासकों द्वारा दमन किया गया।

उत्तरी भारत में पश्चिमी उत्तर प्रदेश और हरियाणा के जाटों ने सन् 1824 में विद्रोह किया। पश्चिम भारत में महाराष्ट्र विद्रोह का आम केंद्र था तथा गुजरात में कोलियों ने विद्रोह किया। हम किसान विद्रोहों की सूची में कुछ और भी सम्मिलित कर सकते हैं, लेकिन अब हम आदिवासी विद्रोहों का अवलोकन करें।

## 2. आदिवासी विद्रोह

औपनिवेशिक शासन की स्थापना से आदिवासी लोग भी प्रभावित हुए। जनसमुदाय की मुख्यधारा से अलग–थलग रहने वाले आदिवासी अपने स्वयं के संसार में रहते थे और इन पर उनकी स्वयं की परंपराएँ और रीति–रिवाज लागू होते थे। औपनिवेशिक सरकार ने आदिवासियों की भूमियों पर अपना अधिकार कर लिया और आदिवासियों से जबरन भूमि छीन ली थी। आदिवासी अपनी भूमि में औपनिवेशिक प्रशासन के प्रवेश से क्रोधित थे। खानदेश के भीलों और सिंहभूम (बिहार) के कोलों का उदाहरण लें, ये अपने मुखियाओं के शासन में स्वतंत्र थे। परन्तु इनके क्षेत्रों पर ब्रिटिश का कब्जा होने और इन आदिवासी भूमियों में व्यापारियों, साहूकारों और ब्रिटिश प्रशासन के प्रवेश से आदिवासी मुखियाओं के अधिकार कम हो गए। इससे आदिवासी नेताओं ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया तथा उन्होंने आदिवासी क्षेत्रें में सभी बाहरी व्यक्तियों को आक्रमण का निशाना बनाया। ब्रिटिश सरकार द्वारा इन विद्रोहों का दमन किया गया।

इसी प्रकार संथाल जाति के लोग बंगाल, बिहार और उड़ीसा की सीमा के एक बड़े भू–भाग में रहते थे। उनकी आजीविका जंगल की वनस्पति और प्राणियों पर निर्भर थी। ब्रिटिश शासन के प्रारंभ होने से उन्हें जंगल की भूमियों को साफ करना पड़ता था और जब वे इन भूमियो पर खेती करना प्रारंभ कर देते थे तो उनसे ये जमीन जबरदस्ती छीन ली जाती थी। इस प्रकार इनकी भूमियों पर भूस्वामियों, व्यापारियों और साहूकारों के प्रवेश से साधारण जिन्दगी जीने वाले संथालों की दुर्दशा हुई और उन्होंने अत्याचार सहे। इस अत्याचार ने संथालों को हथियार उठाने के लिए मजबूर किया, उन्होंने सिद्धू और कानू नामक दो भाईयों को अपना नेता बनाया। ऐसा माना जाता था कि सिद्धू और कानू को देवताओं के ऐसे आशीर्वाद प्राप्त थे कि वे इनकी दुर्दशा को समाप्त कर सकते थे। उन्होंने अपनी जमीनों को वापस लेने और अपनी खुद की सरकार स्थापित करने का निर्णय लिया। इन विद्रोही संथालों को ग्वालों, तेलियों, लुहारों और अन्य स्थानीय गरीब लोगों का समर्थन प्राप्त था। विद्रोही संथाल अंततः ब्रिटिश के निर्दयतापूर्ण अत्याचारों के सामने विफल रहें।

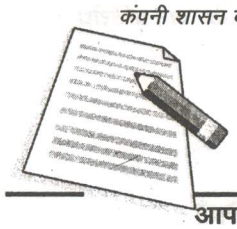

आपकी टिप्पणियाँ

## 19.3 प्रारंभिक विरोध का स्वरूप एवम् महत्व

जन विद्रोहों के उपर्युक्त वर्णन ने इन विद्रोहों के स्वरूप के बारे में कुछ बिन्दुओं को स्पष्ट किया है।

- विद्रोहियों के कार्य यह प्रमाणित करते हैं कि उन्हें अपने हितों और अपने शत्रुओं के बारे में स्पष्ट ज्ञान था। किसान और आदिवासी विरोध आंदोलनों की कुछ विशेषताएँ उनमें जन्मी राजनीतिक और सामाजिक संचेतना के एक निश्चित स्तर को दर्शाती हैं।
- कई अवसरों पर स्थानीय मुद्दों के कारण ये विद्रोह आरम्भ किए गए होगें। लेकिन इस आंदोलन के विस्तार के दौरान इसके उद्देश्य और व्यापक होते गए। एक आंदोलन का आरंभिक कारण स्थानीय भूस्वामियों द्वारा दमन करना रहा हो परन्तु एक बार ये आन्दोलन शुरू हुए तो इनकी परिसमाप्ति ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति विरोध के रूप में हुई।
- धार्मिक विश्वास, जातीय संबंधों और परंपराओं ने किसानों को एकजुट होने तथा उनकी एकता को सुदृढ़ बनाने में सकारात्मक भूमिका निभाई। कई बार अपने अतीत के सुखद विचार विद्रोहियों को अपना खोया हुआ अतीत प्राप्त करने के लिए प्रेरित करते। अतीत का स्मरण मुख्यतया विद्रोहियों के लिए शोषण और अत्याचार की पीड़ा से मुक्ति पाना था।
- शासक वर्ग ने इन विद्रोहों को कानून और व्यवस्था के लिये समस्या तथा अपराधों के रूप में निर्धारित करने का प्रयास किया। यह किसानों की तकलीफों को सुनने, समझने और उनके प्रतिरोध अधिकार को पूरी तरह से अस्वीकार करना है। किसानों और आदिवासियों की कार्य प्रणाली को इसके अपने ढंग से समझना आवश्यक है।
- यद्यपि, पुराने आदेश की बहाली के बाद विद्रोहियों की कोई भावी योजना नहीं थी। अपने सीमित उद्देश्य और संकीर्ण वैश्विक विचार के बावजूद विद्रोहियों ने निश्चित रूप से औपनिवेशिक साम्राज्य के अलोकप्रिय गुणों को प्रकट किया।

### पाठगत प्रश्न 19.2

1. संथाल विद्रोह कौन से क्षेत्र में हुआ?

2. कौन–से उपन्यास ने संन्यासी विद्रोह को चिरस्मरणीय बनाया?

## 19.4 1857 का विद्रोह-कारण और कार्य प्रणाली

प्रारंभिक भाग में हमने पढ़ा कि विभिन्न समय पर भारत के अलग–अलग भागों में ब्रिटिश साम्राज्य को जन विद्रोहों ने कैसे चुनौती दी। 1857 में पहली बार देखने में आता है कि ब्रिटिश विजय के विरुद्ध समाज के कुछ अन्य वर्गों के साथ–साथ असंतुष्ट किसान आंदोलन में समाज के विभिन्न वर्ग समेकित रूप से एकजुट हो

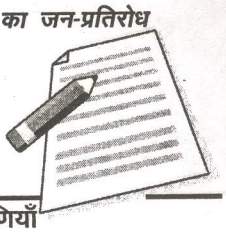



गए। कई इतिहासकार 1857 की घटनाओं को राष्ट्रवाद की प्रारंभिक अभिव्यक्ति समझ रहे हैं।

**विद्रोह के कारण**

ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध लोगों के असंतोष को प्रेरित करने वाली विशेष तकलीफें थीं, जिनसे 1857 का विद्रोह हुआ। यह विद्रोह 10 मई को मेरठ में प्रारंभ हुआ, जब सिपाहियों ने विद्रोह किया और अंतिम मुगल बादशाह बहादुर शाह द्वितीय को पुनः सिंहासन पर बैठाने के लिए दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। सिपाहियों द्वारा प्रारंभ किया गया यह विद्रोह शीघ्र ही समाज के अन्य वर्गों में फैल गया। ऐसा क्यों हुआ? ब्रिटिश सरकार द्वारा भू–राजस्व प्रणाली और प्रशासनिक ढांचे में परिवर्तन करने से ज्यादातर स्थानीय जनसमुदायों ने इसके राज को अस्वीकार कर दिया। लॉर्ड डलहौजी की संयोजन नीति और समाप्ति सिद्धांत, विशेष रूप से अवध और उत्तर एवम् मध्य भारत के अन्य भागों के संयोजन से इस क्षेत्र के स्थानीय लोगों में व्यापक असंतोष पैदा हो गया। भूमि मुख्य आर्थिक संसाधन होने के कारण ब्रिटिश द्वारा भारत में विभिन्न भू–राजस्व बंदोबस्त जैसे स्थायी बंदोबस्त, रैयतबाड़ी बंदोबस्त, महलबाड़ी बंदोबस्त आदि प्रारंभ किए गए, जिनका स्थानीय समाज में भू–वितरण और शक्ति वितरण पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। नए भू–बंदोबस्तों का मुख्य उद्देश्य सरकार की राजस्व आय को बढ़ाना और ऐसे स्थानीय एजेंटों के वर्ग का सृजन करना था, जो ब्रिटिश साम्राज्य का समर्थन करते हों। इन सबका किसानों पर अनर्थकारी प्रभाव पड़ा और राजस्व की बढ़ती मांगों के कारण तालूकदारों और अन्य मुखियाओं को भी मजबूरन अपनी भूमि बेचनी पड़ी। साहूकारी और सम्पत्ति की नीलामी ने किसानों की मुश्किलों को और बढ़ा दिया। इंग्लैंड में बनी वस्तुओं के प्रोत्साहन और घरेलू उद्योग की उपेक्षा से कारीगर एवम् हस्तशिल्पियों पर भी बुरा प्रभाव पड़ा।

आर्थिक तकलीफों के अतिरिक्त अपनी प्राचीन रीति–रिवाजों और परंपराओं में ब्रिटिश हस्तक्षेप के विरुद्ध स्थानीय समाज में सामाजिक स्तर पर भी कड़ी प्रतिक्रिया व्यक्त की गई थी। समाज में जातिगत श्रेष्ठता का दर्शन व्यापक होने के कारण ब्रिटिश अधिकारियों का एक वर्ग भारत को आधुनिक और सभ्य बनाने के कार्य में लगा हुआ था। लोग ब्रिटिशों द्वारा प्रारंभ किए गए सामाजिक विधान से आशंकित थे। विशेष रूप से सती प्रथा के उन्मूलन और विधवा के पुनर्विवाह का आम आदमी पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा। इन परिवर्तनों को स्थानीय परंपरा और संस्कृति में हस्तक्षेप के रूप में समझा गया। इसके साथ लागों में धर्म बदल कर ईसाई बनाए जानें का डर भी पैदा हो गया था। इन सब बातों ने लोगों को ब्रिटिश राज से विमुख कर दिया।

सिपाहियों में उत्पन्न रोष के उनके अपने कारण थे। सिपाही कम वेतन और पदोन्नति, पेंशन एवम् सेवा शर्तों के मामलों में जातिगत भेदभाव के कारण अप्रसन्न थे। किसान परिवारों के सिपाही ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रारंभ किए गए नए भू–बंदोबस्तों से भी अप्रसन्न थे। यह सच है कि सिपाही विभिन्न कारणों की वजह से उत्तेजित थे, परन्तु उनके तत्काल गुस्से का कारण उनकी यह शंका थी कि उन्हें सदियों पुराने अपने सांस्कृतिक लोकाचार को छोड़ना पड़ेगा। 1857 के विद्रोह से ठीक पहले राशन (आटे की बोरी) में हड्डियों का बारीक चूरा होने की अफवाह फैली। एनफिल्ड राइफलों के कारतूसों को लोड करने से पहले दांतों से काटना पड़ता था, ऐसी खबर थी कि उनमें सूअर और गाय

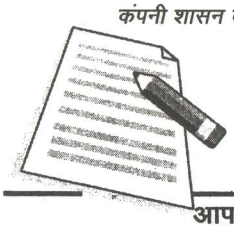

आपकी टिप्पणियाँ

की चर्बी भरी होती थी। उसे हिन्दू और मुस्लिम दोनों धर्मों के सैनिकों के धार्मिक विश्वास पर आक्रमण समझा गया। दिल्ली में जारी घोषणा में सिपाहियों के भावों को अच्छी तरह दर्शाया गया था–'यह सर्वविदित है कि इन दिनों सभी अंग्रेज इन हानिकर मनसूबों पर विचार कर रहे हैं–पहले समग्र हिन्दुस्तानी सेना के धर्म को भ्रष्ट करना और भिर सबको जबरदस्ती ईसाई बनाना। इसलिए हम केवल अपने धर्म के कारण लोगों से जुड़े हैं और हमने एक भी नास्तिक को जीवित नहीं छोड़ा है तथा हम इन्हीं शर्तों पर दिल्ली राजवंश की पुनः स्थापना करते हैं।

**विद्रोह की कार्य प्रणाली**

प्रारंभिक उपद्रव मार्च, 1857 में उस समय प्रारंभ हुआ, जब कलकत्ता के निकट बैरकपुर में मंगल पांडे नामक सिपाही ने अन्य सिपाहियों को ब्रिटिश सेना अधिकारियों के खिलाफ

*चित्र 19.1 स्वतंत्रता सेनानी, बहादुर शाह (द्वितीय)जफर, अंतिम मुगल सम्राट्*

*चित्र 19.2 झांसी की रानी लक्ष्मी बाई, स्वतंत्रता सेनानी*

*चित्र 19.3 तांत्या टोपे*

*चित्र 19.4 नाना साहेब*

विद्रोह करने के लिए कहा और उसने ब्रिटिश एड्जुटेंट को मार दिया। बाद में मंगल पांडे को गिरफ्तार कर फांसी पर लटका दिया गया। इसके बाद मई, 1857 में मेरठ में भारतीय सिपाहियों की रेजिमेंट्स ने ब्रिटिश अधिकारियों को मार डाला, जेल तोड़ दी, अपने साथियों को रिहा करा दिया और अंग्रेजों से पेंशन पाने वाले मुगल सम्राट् बादशाह बहादुर शाह जफर (द्वितीय) को अपना नेता बनाने के लिए दिल्ली की ओर कूच किया। ब्रिटिश शासन के समाप्त होने के बारे में अफवाह चारों ओर फैल गई तथा शीघ्र ही विद्रोह उत्तरी भारत और मध्य भारत के अन्य भागों में फैल गया। अवध में सिपाहियों ने घोषणा कर दी कि सिपाही राज आ गया। ब्रिटिश राज के विरुद्ध असंतोष और उसके मायाजाल से मुक्ति ने कई स्थानीय प्रमुखों, किसानों, कारीगरों, सिविल कर्मचारियों, धार्मिक विधियों से अपचार करने वालों आदि को इस विद्रोह में एकजुट कर दिया। अवध से यह विद्रोह लखनऊ, कानपुर, इलाहाबाद, बनारस, रोहिलखंड, बुंदेलखंड, ग्वालियर, झांसी और बिहार में फैल गया। इन क्षेत्रों में इस विद्रोह को सिविल जन समुदाय से व्यापक समर्थन मिला। इस विद्रोह के कुछ महत्त्वपूर्ण नेताओं में रानी लक्ष्मी बाई, ताँत्या टोपे, बेगम हजरत महल, नाना साहेब, आरा के कुंअर सिंह आदि थे।

### पाठगत प्रश्न 19.3

1. भारतीय सिपाहियों की तकलीफें क्या थीं?

2. 1857 के विद्रोह के किन्हीं पाँच महत्त्वपूर्ण नेताओं के नाम बताओ?

## 19.5 इस विद्रोह का स्वरूप एवम् परिणाम

**स्वरूप**

1857 के विद्रोह के स्वरूप के संबंध में इतिहासकारों के अलग–अलग विचार हैं। ब्रिटिश इतिहासकारों ने इस विद्रोह की व्याख्या सिपाहियों के विद्रोह के रूप में की है। स्थानीय लोगों की तकलीफों और इस आंदोलन में उनकी भागीदारी को अनदेखा करते हुए ब्रिटिश इतिहासकारों का मानना था कि इस विद्रोह को सिपाहियों, कुछ भू–स्वामियों और राजकुमारों ने अपने निहित स्वार्थो के लिए आरम्भ किया। यद्यपि, 1857 पर हाल के शोधों में यह दावा किया गया है कि अप्रिय ब्रिटिश साम्राज्य के संयुक्त विरोध के सामने स्वार्थ पूर्ण प्रयोजनों का अधिक महत्व नहीं रह जाता है।

कुछ इतिहासकार 1857 के इस विद्रोह को भारत की स्वतंत्रता का प्रथम युद्ध मानते हैं। जो इस व्याख्या से सहमत नहीं है, तर्क देते हैं कि विद्रोह के नेताओं ने नई सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास नहीं किया। उन्होंने बहादुर शाह दूतीय को आमंत्रित करके प्राचीन मुगल शासन को पुनः स्थापित करने की कोशिश की। कहा जाता है कि हालाकि राज्य बदलने के लिये भारतीयों की पहल और प्राथमिकता केन्द्रीभूत थीं 1857 में कोई राष्ट्रव्यापी विद्रोह नहीं हुआ। असंतुष्ट वर्ग में इसके प्रति वफादारी और

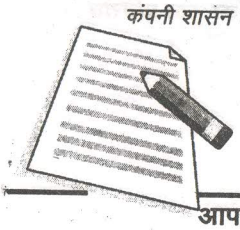

आपकी टिप्पणियाँ

विचारधारा में बिखराव था जिनके ध्यान में एक ऐसा पुराना समाज और नियम थे जो अधिक समय व्यावहारिक नहीं रहने वाले थे। इस प्रकार यह विद्रोह नहीं बल्कि पुनर्स्थापना जैसा काम था।

1857 के विद्रोह के हाल के अध्ययन इस विद्रोह में लोकप्रिय भागीदारी होने की बात कहते हैं। सिपाहियों और तालूकेदारों के अतिरिक्त ग्रामीण किसानो की बड़ी संख्या ने इस विद्रोह में भाग लिया। अवध के मामले में यह दर्शाया गया है कि तालूकेदारों और किसानों ने मिलकर आक्रमण आरंभ किया था। कई स्थानों पर तो तालूकेदारों ने ब्रिटिशों के साथ मिलकर शांति कायम की, परन्तु किसानों ने अपना आंदोलन जारी रखा। सिपाहियों के गांवों में अपने रिश्तेदारों से संबंध थे तथा सिपाहियों के इस विद्रोह ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध अपनी शिकायततें जनता के सामने रखने के लिए नागरिक जनसमुदाय को प्रभावित किया। इस प्रकार 1857 के विद्रोह ने लोकप्रिय विद्रोह का रूप ले लिया।

### इस विद्रोह की असफलता के कारण

1857 के इस विद्रोह में लोगों की अत्यधिक भागीदारी होने के बावजूद विद्रोहियों को अंततः ब्रिटिश सरकार के समक्ष आत्मसमर्पण करना पड़ा। विद्रोहियों की असफलता के निम्न कारण थे–

- विद्रोहियों के पास हथियारों और गोला–बारूद की सीमित मात्रा होती थी।
- विद्रोहियों में संचार और केंद्रीय नेतृत्व की कमी थी।
- ब्रिटिशों के पास पर्याप्त संसाधन और बेहतर हथियार और उपकरण थे।
- विद्रोहियों का विदेशी शासन को समाप्त करने के अलावा भविष्य के लिए कोई स्पष्ट राजनीतिक कार्यक्रम नहीं था।
- विद्रोही इस आंदोलन के व्यापक स्वरूप के बावजूद व्यापारियों, बुद्धिवादी वर्ग और कई स्थानीय राजकुमारों का सहयोग प्राप्त नहीं कर सके। जो प्रायः अंग्रेजों के समर्थक थे।

### इस विद्रोह का महत्व

हालांक ब्रिटिश सरकार इस विद्रोह को कुचलने में सफल रही, परतु उसे लोगों के असंतोष की सीमा का पता लग गया। 1857 की घटनाओं ने ब्रिटिश सरकार को भारत के लिए अपनी नीति की पुनः जांच करने के लिए मजबूर कर दिया, अतः इस विद्रोह के बाद उन्होंने ऐसे किसी विद्रोह की भविष्य में होने से रोकने की रणनीति अपनाई। स्थानीय राजकुमारों का विश्वास पुनः जीतने के लिए ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की कि वे अपने मौजूदा कब्जे वाले क्षेत्रों का और अधिक विस्तार नहीं करेंगे। वफादार राजकुमारों को विशेष पुरस्कार दिए गए। सैनिकों में एकता को रोकने के लिए फौज में भर्ती करने में संप्रदाय, जाति, जनजाति और क्षेत्रीय वफादारों को बढ़ावा दिया गया। ब्रिटिश सरकार ने जाति, धर्म और भारतीयों की क्षेत्रीय पहचान का चतुराई से उपयोग करते हुए 'फूट डालो और शासन करो' की नीति अपनाई। 1857 के विद्रोह का दूसरा महत्त्वपूर्ण परिणाम 1858 में शाही घोषणा पत्र की उद्घोषणा था। इस घोषणा से ईस्ट इंडिया

कंपनी के शासन को समाप्त करते हुए भारत का प्रशासन सीधे तौर पर ब्रिटिश राज के अधीन कर दिया गया।

अंत में, हालांकि विद्रोही असफल रहे, परन्तु ब्रिटिश राज के खिलाफ उनके वीरता पूर्ण संघर्ष ने लोगों के मस्तिष्क में गहरी छाप छोड़ी। भारतीय राष्ट्रवाद की भावना, जो कि 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विकासशील स्तर पर थी, इस विद्रोह से अत्यधिक प्रभावित हुई।

## पाठगत प्रश्न 19.4

1. ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन कब और कैसे समाप्त हुआ?

2. इस विद्रोह की असफलता के तीन मुख्य कारणों को सूचीबद्ध करो?

## आपने क्या सीखा

इस अध्याय में हमने सीखा है कि ब्रिटिश शासन की स्थापना से भारत ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश बन गया। इससे ग्रामीण समाज पर अत्यधिक बुरा प्रभाव पड़ा। अपनी भूमियों से बेदखल किए जाने से किसान अपनी स्वयं की भूमियों पर ही मजदूर बन गए। विभिन्न प्रकार के करों ने उनके जीवन को और अधिक दुखी बना दिया। जबकि ब्रिटिश द्वारा निर्मित वस्तुओं का आयात होने के कारण लघु उद्योगों के मालिकों को अपने कारखाने बंद करने पड़े। इन सब परिवर्तनों और ब्रिटिश प्रशासन के सहानुभूतिहीन रवैये ने किसानों को अपनी तकलीफें विद्रोह के माध्यम से कहने को मजबूर कर दिया। संगठित अंग्रेजी सशस्त्र सेना के सामने विद्रोह सफल नहीं हो पाए। तथापि, इन विद्रोहों ने भारत में अंग्रेजी राज के समक्ष भावी चुनौती के लिए मार्ग प्रशस्त किया। इस संबंध में, 1857 का विद्रोह इस अर्थ में अद्वितीय माना जाता है कि जाति, समुदाय और वर्ग की सीमाओं को समाप्त कर भारतीयों ने पहली बार ब्रिटिश शासन को संगठित रूप से चुनौती दी। हालांकि विद्रोहियों के प्रयास असफल रहे, परन्तु इससे भारत के प्रति अपनी नीति में परिवर्तन करने के लिए ब्रिटिश सरकार पर दबाव बनाया गया।

## पाठांत प्रश्न

1. 1857 के विद्रोह से पहले के विद्रोहों के स्वरूप की व्याख्या कीजिए।

2. 1857 के विद्रोह के कारणों की चर्चा कीजिए।

3. 1857 के विद्रोह के महत्व की व्याख्या कीजिए।

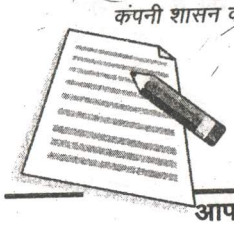

आपकी टिप्पणियाँ

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

### 19.1

1. अपनी कब्जे वाली जमीनों की बिक्री द्वारा।
2. ब्रिटिश सरकार के कर्मचारी, भू–स्वामी और साहूकार।

### 19.2

1. बंगाल, बिहार और उड़ीसा की सीमा।
2. बंकिम चंद्र चटर्जी द्वारा लिखित आनन्द मठ।

### 19.3

1. कम वेतन तथा पदोन्नति, पेंशन और सेवा शर्तों में सामाजिक भेदभाव।
2. रानी लक्ष्मी बाई, ताँत्या टोपे, बेगम हजरत महल, नाना साहेब और आरा के कुंवर सिंह।

### 19.4

1. 1858 में ब्रिटिश राज द्वारा शाही घोषणा की उद्घोषणा के माध्यम से ।
2. खण्ड 19.5 देखें।

### पाठांत प्रश्नों के संकेत

1. खण्ड 19.2, 19.3 देखें
2. खण्ड 19.4 देखें
3. खण्ड 19.5 का अनुच्छेद–4 देखें।

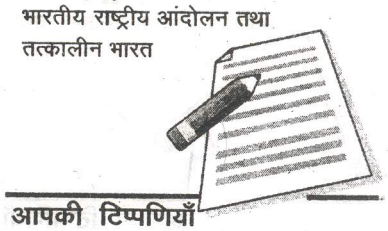



# 20

# राष्ट्रवाद

हम सभी को अपने जीवन में कभी–न–कभी अपने देश के प्रति ईमानदार होना पड़ता है। अपने देश के प्रति वफादारी को आम तौर पर राष्ट्रीयता की भावना के रुप में समझा जाता है। राष्ट्रवादी व्यक्ति वही है, जो अपने देश से प्यार करता है। इस प्रकार के कथन आपको उपन्यासों और कविताओं, भाषणों और समाचार–पत्रों और फिल्मों में भी मिल सकते हैं।

क्या आपको कभी हैरानी नहीं होती कि यह सब कब शुरु हुआ होगा? राष्ट्रीयता की भावना का इतिहास क्या है? यह विचार कितना पुराना है? अथवा क्या लोग हमेशा ही अपने देश से प्यार करते रहे हैं? क्या 'राष्ट्रीयता' शब्द का अर्थ अपने देश के प्रति वफादारी अनुभव करने के अतिरिक्त कुछ और भी है? इस पाठ में हम इन सभी प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयास करेंगे।

## उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आप:

- राष्ट्रीयता के विचार के इतिहास की जड़ें ढूंढ सकेंगे;
- यूरोप में राष्ट्रीयता की भावना के उत्थान के कारणों की व्याख्या कर सकेंगे;
- भारत में राष्ट्रीयता की भावना के विकास को ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष के साथ संबद्ध कर सकेंगे;
- भारत के सांस्कृतिक क्षेत्र में राष्ट्रीयता के विचार के उद्भव की जड़ें ढूंढ सकेंगे और
- राष्ट्रीयता की भावना को आर्थिक संदर्भ में कैसे अभिव्यक्त किया गया है, इसकी व्याख्या कर सकेंगे।

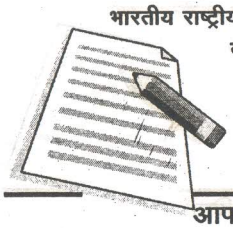

आपकी टिप्पणियाँ

## 20.1 राष्ट्रीयता की भावना : उद्‌भव और अर्थ

आपको यह जानकार आश्चर्य होगा कि इस विचार का इतिहास दो सौ वर्ष से ज्यादा पुराना नहीं है। आज 'राष्ट्रीयता की भावना' शब्द का हम जिस अर्थ में प्रयोग करते हैं, उस अर्थ का 19वीं सदी से पहले भारत में कोई अस्तित्व नहीं था। आपको यह जानकर भी आश्चर्य होगा कि इस विचार की जड़ें भारत के इतिहास में नहीं, बल्कि आधुनिक यूरोप के इतिहास में हैं। असल में हम भारतीय राष्ट्रीयता के संबंध में इसके यूरोपीय समकक्ष अर्थों से नितान्त भिन्न अर्थों में संभावना होने की बात कर सकते हैं। इस भिन्नता को जानने के लिए महत्त्वपूर्ण है कि हमें इस बात की जानकारी हो कि यूरोप में किन परिस्थितियों के कारण राष्ट्रीयता की भावना पैदा हुई।

यूरोप में राष्ट्रीयता की भावना का विकास, 18वीं सदी के आसपास समाज और अर्थव्यवस्था में वहां हो रहे मूलभूत परिवर्तनों के परिणामस्वरुप हुआ। औद्योगिक क्रांति शुरु होने से बहुत–सी वस्तुओं और सामग्री का उत्पादन हुआ, जिसकी वजह से इतनी अभूतपूर्व धन–सम्पदा वहां आई, जैसी पहले कभी भी नहीं थी। इसके परिणामस्वरुप ऐसी जरुरत महसूस की गई कि एक ऐसा एकीकृत और विशाल बाजार बनाया जाए, जहां इन चीजों को बेचा जा सके। विशाल बाजार बनाने के लिए गांवों, जिलों और प्रांतों को राजनीतिक रुप से जोड़कर बड़े राज्य का रुप दिया गया। इस विशाल और संयुक्त बाजार में विभिन्न भूमिकाएं निभाने के लिए अलग–अलग प्रकार के लोगों की जरुरत थी, जिसके लिए उन्हें विभिन्न प्रकार के कौशल पूर्ण कार्य में प्रशिक्षित किया जाना आवश्यक था। परन्तु इन सबसे ऊपर उन्हें आपस में परस्पर संवाद–संचार की आवश्यकता थी। इसी कारण से एक भाषा पर केंद्रित समान शैक्षिक केंद्रों की आवश्यकता महसूस हुई। पूर्व–आधुनिक काल में अधिकांश लोगों ने अपने स्थानीय वातावरण में भाषा और अन्य हुनर सीखे, जो एक–दूसरे से भिन्न थे। परन्तु अब आधुनिक अर्थव्यवस्था के कारण नए परिवर्तनों के परिणामस्वरुप प्रशिक्षण और स्कूलों की एक समान नई प्रणाली अस्तित्व में आई। इस प्रकार इंग्लैंड में अंग्रेजी भाषा, फ्रांस में फ्रांसीसी और जर्मनी में जर्मन भाषा इन देशों की प्रमुख भाषा बन गई।

संचार प्रणाली में एकरुपता के परिणामस्वरुप 'राष्ट्रीय संस्कृति' बनी और इसने राष्ट्रीय सीमाओं को मजबूत बनाया। इन सीमाओं के भीतर रहने वाले लोगों ने स्वयं को इन सीमाओं से जोड़ना शुरु कर दिया। सांस्कृतिक दृष्टि से भी इन लोगों ने खुद को समान व्यक्तियों की तरह और एक बड़े समुदाय का सदस्य समझना शुरु कर दिया। यानी अंग्रेजों ने खुद को दूसरों से भिन्न रुप में अंग्रेज होने की पहचान दे दी और इंग्लैंड की भौगोलिक सीमाओं का वासी समझकर उसके साथ स्वयं को जोड़ लिया। जर्मन और फ्रांसीसियों ने भी ऐसा ही किया। राष्ट्रीयता के विचार की यही शुरुआत थी।

आइए, हम इसे थोड़ा अलग तरीके से समझते हैं। राष्ट्रवाद, यूरोप में राष्ट्रों और राष्ट्र राज्यों (जो विशाल व सांस्कृतिक समनुरुप क्षेत्र होने के साथ–साथ राजनीतिक व्यवस्था में भी एक समान थे) के उद्‌भव का परिणाम था। ये राष्ट्र–राज्य हमेशा नहीं बने रहे। प्रारंभिक समाज, मानव संगठनों के सरल स्वरुप सहित और श्रम के किसी विस्तृत विभाजन के बगैर किसी राज्य या कानून और व्यवस्था लागू करने वाले किसी केन्द्रीय प्राधिकरण (अथॉरिटी) के बगैर भी अपने जीवन को व्यवस्थित और विनियमित कर सकते

थे। केन्द्रीय प्राधिकरण शक्ति (अथॉरिटी) के रुप में राज्य का अस्तित्व व्यवस्थित खेती–बाड़ी प्रारंभ होने के बाद ही अस्तित्व में आया। किसी केन्द्रीय सत्ता के अभाव में लोगों को आम तौर पर अपने जीवन को व्यवस्थित ढंग से व्यतीत करने में काफी कठिनाई का सामना करना पड़ता था। औद्योगीकरण और आधुनिक विश्व अर्थ–व्यवस्था के प्रारंभ होने पर अनिवार्य रुप से राज्यों के होने की जरुरत और अधिक महसूस की गई। संचार की व्यापक प्रणाली और एक मानक भाषा पर केन्द्रित समनुरुप शिक्षा पद्धति ने सांस्कृतिक और राजनीतिक समानता की परिस्थितियां पैदा कीं। इस प्रकार आधुनिक राष्ट्र राज्य अस्तित्व में आए। इन राष्ट्र राज्यों को, अपने आपको निरंतर अस्तित्व में बनाए रखने के लिए, इन क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के सहयोग और वफादारी की आवश्यकता थी और यही राष्ट्रवाद की शुरुआत थी। अन्य शब्दों में कहें तो किसी राष्ट्र को राज्य के एक सीमा क्षेत्र में रहने वाले लोगों या समुदाय की विशिष्ट पहचान और इसकी उच्च संस्कृति ने ही उस राष्ट्रीयता की भावना को मूर्त रुप दिया।

परन्तु भारत में राष्ट्रवाद का विकास इस रुप में नहीं हुआ। जिस समय यूरोप में राष्ट्रवाद की जड़ें पनप रही थीं, उस समय भारत में परिस्थितियां बिल्कुल भिन्न थीं। यहां बहुत सीमित स्तर पर औद्योगीकरण अस्तित्व में आया। जब यूरोप में तेजी से औद्योगीकरण विकसित हो रहा था उस समय भारत की अर्थव्यवस्था अभी भी कृषि पर आधारित थी। अलग–अलग लोग भिन्न–भिन्न भाषाएँ बोलते थे। यद्यपि देश भक्ति की भावना (देश भक्ति : अपने क्षेत्र और संस्कृति के लिए प्यार और वफादारी की भावना, जो मराठवाड़ा के लिए मराठों में और राजपूताना के लिए राजपूतों में मौजूद थी) आधुनिक काल से पूर्व के समय में भारत में पहले ही मौजूद थी, परन्तु आज जिन अर्थों में हम राष्ट्रवाद का मतलब समझते हैं (प्रशासन की एकीकृत प्रणाली, सामान्य भाषा, उच्च कोटि की एक जैसी संस्कृति और राजनीतिक एकीकरण), उन अर्थों में इसका अस्तित्व 19वीं सदी के मध्य तक भारत में अस्तित्व में नहीं आया था।

बुनियादी तौर पर भारत में राष्ट्रीयता का विकास ब्रिटिश शासन के प्रत्युत्तर के रुप में अस्तित्व में आया। जैसा कि आप जानते हैं, भारत में ब्रिटिश शासन की शुरुआत 1757 में प्लासी के युद्ध के साथ हुई और यहां के स्थानीय शासकों को हराने के बाद धीरे–धीरे यहां ब्रिटिश शासन स्थापित हुआ। अंग्रेज़ों के शासक के रुप में आगमन का अनेक स्थानीय शासकों और लोगों ने विरोध किया था। वे सभी भारत में ब्रिटिशों की उपस्थिति का विरोध करना चाहते थे और उसके खिलाफ युद्ध करना चाहते थे। परन्तु प्रारंभ में उन्होंने यह विरोध मिलकर या एकजुट होकर नहीं किया। अलग–अलग लोगों को ब्रितानी लोगों से विशिष्ट या अलग–अलग शिकायतें थी और इसलिए वे अपनी विशेष तकलीफें दूर करने के लिए अंग्रेजों से लड़े। उदाहरण के लिए, स्थानीय शासक नहीं चाहते थे कि ब्रिटिश शासक उनके क्षेत्रों को हथिया लें (जैसा कि वर्तमान उत्तर प्रदेश के तत्कालीन अवध और झांसी के शासकों के साथ हुआ) इसी प्रकार किसान, कारीगर और जनजातीय लोग ब्रिटिशों के हाथों पीड़ित हुए और प्रायः अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह करते रहे। (इस संबंध में आप इस पुस्तक के मॉडयूल 3 में पढ़ चुके हैं) परन्तु ब्रिटिश शासन के विरुद्ध सिर्फ विरोध करने या युद्ध करने से ही भारत में राष्ट्रीयता की भावना नहीं आई। यद्यपि जन सामान्य के विभिन्न वर्ग ब्रिटिशों के हाथों समान रुप से पीड़ित होने के कारण एकजुट हए, परन्तु इससे भी पूरे देश और इसके लोगों के साथ एक जैसी

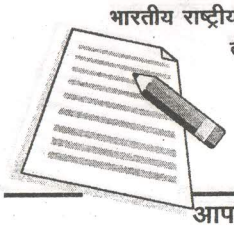

आपकी टिप्पणियाँ

समानता की पहचान होने की भावना नहीं आई। यहां तक कि 1857 के भारी विद्रोह, जिसमें संपूर्ण जनसामान्य के अनेक वर्गों ने मिलकर युद्ध किया (जैसे स्थानीय शासक, सैनिक, जमींदार और किसान) परंतु इससे भी राष्ट्रीयता की भावना या अखिल भारतीय एकता विकसित नहीं हुई। भारत के लोगों में, परस्पर अनेक मतभेदों के बावजूद, अनेक ऐसी चीजें हैं जो सामान्य हैं, इस विचार ने अभी जड़ें नहीं पकड़ी थीं। इसी प्रकार यह अहसास भी अभी किसी को नहीं हुआ था कि ब्रिटिश शासन विदेशी और पराया शासन है, जो यह चाहता था कि सभी लोगों पर वह अपना अधिकार करके उन्हें अपने नियंत्रण के अधीन कर ले।

भारत में राष्ट्रीयता का या भारतीय राष्ट्रीयता का सार यही भावना थी कि सभी भारतीयों की एक सामान्य राष्ट्रीयता है और ब्रिटिश शासन का विरोध करना सामूहिक रुप से सभी के हित में है। साधारण शब्दों में कहें तो ब्रिटिश शासन का सामूहिक विरोध और राष्ट्रीय एकता को हासिल करने की इच्छा भारतीय राष्ट्रवाद की भावना के केन्द्र में निहित थी।

औपनिवेशक शासकों के आगमन, भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था में उनकी घुसपैठ, वास्तव में राष्ट्रीय भावना के विकास के लिए बाहरी रुप से जिम्मेदार परिस्थितियां थीं। तथापि इन परिस्थितियों ने लोगों में राष्ट्रवाद संबंधी जागरुकता की भावना पैदा नहीं की। राष्ट्रीय भावना के विचार की चेतना को परिपक्व होने में बहुत लंबा समय लगा और सांस्कृतिक, अर्थव्यवस्था संबंधी और राजनीतिक क्षेत्रों में धीरे–धीरे यह विचार पनपने लगा। आगे हम इन विषयों पर इन अलग–अलग विचार करेंगे।

### पाठगत प्रश्न 20.1

1. निम्नलिखित कथनों को पढ़कर सही या गलत बतलाएँः

   (1) राष्ट्रवाद के विचार का इतिहास मानव इतिहास जितना प्राचीन है। (सही/गलत)

   (2) राष्ट्रवाद के विचार की जड़ें आधुनिक यूरोप के इतिहास में हैं। (सही/गलत)

   (3) राष्ट्रवाद, आधुनिक औद्योगिक अर्थव्यवस्था का परिणाम था। (सही/गलत)

   (4) भारत में राष्ट्रवाद का अहसास 19वीं सदी के मध्य तक अस्तित्व में नहीं आया था। (सही/गलत)

2. ऐसे दो मुख्य मुद्दों का वर्णन करें जो भारतीय राष्ट्रवाद को समझने के लिए निर्णायक हैं।

## 20.2 संस्कृति और राष्ट्रवाद

राष्ट्रवाद के विचार की अभिव्यक्ति सबसे पहले सांस्कृतिक क्षेत्र में देखने में आई। ऐसा दो स्तरों पर हुआ। पहले तो यह पारंपरिक भारतीय संस्कृति के कुछ तत्वों के संबंध में

सवाल उठाने और भारतीय सभ्यता की कुछ सामाजिक बुराइयों जैसे जाति व्यवस्था, धार्मिक अंधविश्वास, पुरोहिताई, महिलाओं के प्रति भेदभाव इत्यादि को दूर करके सुधार लाने की इच्छा के कारण पैदा हुई। दूसरे, भारतीय सभ्यता में अंग्रेजों के हस्तक्षेप के विरोध का भी भारतीयों द्वारा प्रयास किया गया।

स्मरणीय बात यह है कि औपनिवेशिक विजय का अर्थ मात्र यही नहीं था कि एक प्रकार के शासकों के स्थान पर दूसरे प्रकार के शासकों का आ जाना। साधारण लोगों के जीवन पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। ब्रिटिश शासकों और उनके एजेंटो के प्रयासों से उस समय के औपनिवेशिक शासकों की संस्कृति भारतीयों में फैलने लगी। उपनिवेशवादी संस्कृति और भाषा के प्रसार का भारतीय उच्च कुलीन वर्गों में दो प्रकार से असर पड़ा (कुलीन इलीट : समाज की उच्च संस्कृति से संबद्ध सामाजिक विशेषाधिकार प्राप्त और समाज के उच्च वर्ग से संबंधित लोग)। उनमें से कुछ लोगों ने पारंपरिक भारतीय समाज और संस्कृति की तुलना आधुनिक इंग्लैंड में उस समय मौजूद संस्कृति के साथ करनी शुरु कर दी थी। इस प्रकार उन्होंने भारतीय संस्कृति के कुछ तत्वों के विरुद्ध प्रश्न किए। उदाहरण के लिए, राजा राम मोहन राय और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे समाज सुधारकों ने कुछ ऐसी सामाजिक बुराइयों को दूर करने के प्रयास किए जो भारतीय समाज का हिस्सा थीं। विशेष रुप में राजा राममोहन राय ने सती प्रथा (पति की मृत्यु होने पर उसकी चिता के साथ उसकी विधवा का भी जला जाना) पर आपेक्ष किया और विद्यासागर ने विधवा के विवाह पर बल दिया। ज्योतिबा फुले जैसे नेताओं ने महाराष्ट्र में जातपात के विरुद्ध आंदोलन शुरु किया। उन्होंने उपनिवेशीय शासकों से भी अपील की कि वे भारतीय समाज में हस्तक्षेप करे और इसमें सुधार लाएँ यद्यपि उन्हें यह विश्वास नहीं था कि यूरोपीय संस्कृति, भारतीय संस्कृति से श्रेष्ठ है। परंतु उन्हें यह विश्वास अवश्य था कि ब्रिटिश शासन उस आधुनिक शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है, जो भारतीय समाज में आधुनिकता के समानान्तर चलते हुए समुचित ढंग से विकास कर सकती है।

एक अन्य स्तर पर यद्यपि, भारतीय नेताओं ने भारतीय संस्कृति की रक्षा करने और इसे बचाने का प्रयास किया जिसके सोचने के पीछे उनकी यह धारणा है थी कि भारतीय लोगों के जीवन में उपनिवेशवादी संस्कृति अतिक्रमण कर रही हैं। 1850 के दशक में जब यूरोपीय वेशभूषा और उनकी प्रथाओं को भारतीयों पर जबरन लागू करने का प्रयास किया गया, तो उन्होंने इसका विरोध किया। दिलचस्प बात यह है कि यह उन सुधारकों के संबंध में भी सत्य है जिन्होंने यह स्वीकार किया था और यह आशा भी की थी कि ब्रिटिश शासन कानून द्वारा लागू करके अथवा अन्य उपायों से, भारत में आधुनिकता की शुरुआत करेंगे। जैसे 19वीं सदी के प्रख्यात सुधारक और ब्रह्मसमाज (1828 में राममोहन राय द्वारा गठित) के नेता, केशव चन्द्र सेन अंग्रेजी पोशाक पहनना और अंग्रेजी भोजन खाना पसंद नहीं करते थे। इसी प्रकार ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने लेफ्टिनेंट गवर्नर द्वारा आयोजित समारोह में भाग लेने से इंकार कर दिया था, क्योंकि उन्हें यूरोपीय पोशाक पहनने के लिए कहा गया था। इस दृष्टि से यह समझा जाता था कि लोगों के लिए सांस्कृतिक अधिकार और प्रथाएँ बहुत महत्त्वपूर्ण थीं और उपनिवेशीय शासन का इस आधार पर विरोध किया गया कि यह एक प्रकार से उनकी संस्कृति पर अतिक्रमण करने का प्रयास है।

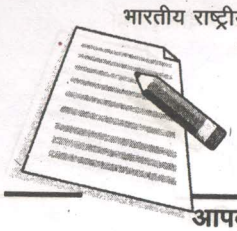

आपकी टिप्पणियाँ

ऊपर उल्लिखित दो दृष्टिकोण आपको दो नितान्त भिन्न और एक–दूसरे के विरोधी भी दिखाई दे सकते हैं। प्रथम दृष्टिकोण, (पारंपरिक भारतीय संस्कृति की बुराइयों के खिलाफ सवाल उठाना) तथा दूसरा दृष्टिकोण (उपनिवेशीय शासकों द्वारा स्थानीय भारतीय संस्कृति में दखल देने अथवा उसे बदलने के प्रयास का विरोध) प्रथम दृष्टि में परस्पर विरोधी लग सकते हैं। देखने में आपको ऐसा लग सकता है कि प्रथम दृष्टिकोण के मुताबिक भारतीय समाज में हस्तक्षेप करने के लिए ब्रिटिशों को आमंत्रित किया गया जबकि दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार इसका विरोध किया गया। परन्तु इस बात को याद रखना बहुत महत्त्वपूर्ण है कि भारतीय राष्ट्रवाद के घटकों के रुप में, ये दोनों दृष्टिकोण एक–दूसरे के पूरक थे। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का विचार, जैसा कि यह 19वीं सदी में इस आधार पर विकसित हुआ कि पारंपरिक भारतीय संस्कृति की कुछेक बुराइयों को औपनिवेशीय शासकों द्वारा, या उनकी संस्कृति के साथ इसका एकाकार करके सख्ती से नकारा जाए, अन्य शब्दों में 19वीं सदी के समाज सुधारक भारतीय संस्कृति को वास्तव में आधुनिक बनाना चाहते थे, परन्तु वे इसे पूरी तरह पश्चिमी रुप में नहीं ढलने देना चाहते थे। यानी वे अपनी पारंपरिक संस्कृति चाहते थे। इसका अभिप्राय यह हुआ कि उन्होंने पारंपरिक संस्कृति के साथ–साथ आधुनिक औपनिवेशिक संस्कृति का भी विरोध किया। 19वीं सदी में भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद जिस रुप में प्रचलित था उसका यही संक्षिप्त सार है।

### पाठगत प्रश्न 20.2

1. निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दें :

   (i) उस सुधारक का नाम बताएँ, जिसने सती प्रथा का विरोध किया।

   _____

   (ii) विधवा विवाह पर किस भारतीय सुधारक ने बल दिया?

   _____

   (iii) राममोहन राय द्वारा स्थापित संगठन का नाम बताएँ।

   _____

2. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की दो मुख्य विशेषताएं बताएँ।

   _____

## 20.3 आर्थिक राष्ट्रवाद

अब आप समझ गए होंगे कि सांस्कृतिक राष्ट्रीयता से क्या अभिप्राय है और भारत की संस्कृति और राष्ट्रवाद में परस्पर क्या संबंध था। आइए, अब हम आर्थिक राष्ट्रवाद को समझने का प्रयास करें। आर्थिक राष्ट्रवाद की जड़ों को हम 19वीं सदी के द्वितीय अर्ध–शतक के काल में ढूंढ सकते हैं जब दादाभाई नौरौजी, महादेव गोविंद रानाडे और रोमेश चन्द्र दत्त और अनेक अन्य लोगों ने यह अनुभव करना प्रारंभ किया था कि ब्रिटिश

शासन भारत का आर्थिक रुप से शोषण कर रहा था और भारत को अत्यन्त निर्धन स्थिति में रखने के लिए मुख्यतया वही जिम्मेदार था। इसीलिए गोपालकृष्ण गोखले, बाल गंगाधर तिलक, जी वी जोशी और अनेक अन्य भारतीय नेताओं ने, ब्रिटिश शासन की आर्थिक व्यवस्था की आलोचना करने के लिए भली–भांति व्यवस्थित और समेकित आलोचना पद्धति विकसित की। उनके द्वारा अपने लेखों के माध्यम से प्रतिपादित और प्रचारित आर्थिक राष्ट्रवाद की कुछ विशेषताएँ निम्नलिखित हैं।

उन्होंने इस बात पर बल दिया कि औपनिवेशिक शासन अनेक प्रकार से भारत का आर्थिक रुप से शोषण कर रहा था। शुरु में यह शोषण किसानों पर लगाये गए भारी करों और भारत के साथ असमान व्यापार तक ही सीमित था। यह असमान व्यापार था क्योंकि ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी (जिसे ब्रिटिश संसद ने भारत के साथ व्यापार करने का एकाधिकार दिया था) बहुत सस्ते दामों पर भारतीय सामान खरीदती थी और ब्रिटेन में निर्मित वस्तुओं को बहुत ही महंगे दामों पर भारत में बेचती थी। इसके परिणामस्वरुप भारत की धन–दौलत इंग्लैंड जाने लगी। इसने भारत के परंपरागत हस्तशिल्प उद्योगों को भी नष्ट कर दिया। तथापि, 19वीं सदी में, जबकि इस प्रकार का आर्थिक शोषण जारी था, नए जटिल प्रकार के शोषण के रुप अस्तित्व में आ गए। अब औपनिवेशिक शासकों ने भारत को अपने उद्योगों के लिए कच्चे माल की आपूर्ति करने वाले आपूर्तिकर्ता के रुप में शोषित करना शुरु कर दिया और एक ऐसे बाजार में बदल दिया जहां ब्रिटिश उद्योगों में निर्मित वस्तुओं को बेचा जा सके। भारत को ऐसी सामग्री की फसलें उगाने (जैसे कपास या पटसन) के लिए मजबूर किया जाने लगा जो ब्रिटिश उद्योगों के लिए आवश्यक थीं। इसका प्रभाव यह हुआ कि जो भारतीय धन–सम्पदा भारत के औद्योगीकरण और आर्थिक विकास के लिए प्रयोग में लाई जा सकती थी, ब्रिटेन के आर्थिक विकास के लिए प्रयोग में लाई गई। भारतीय राष्ट्रीय नेताओं ने इन महत्त्वपूर्ण तथ्यों को जाना और साथ ही इनका प्रचार भी किया।

भारत के लगातार आर्थिक शोषण को समझने के एक अंग के रुप में राष्ट्रीय नेता, विशेष रुप से दादाभाई नारौजी 'निष्कासन सिद्धान्त' को विचार के लिए सामने लाए। नारौजी ने, अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'पावर्टी एंड द् अन–ब्रिटिश रुल इन इंडिया' (1901 में लिखित और 1988 में प्रकाशित) में यह तर्क दिया कि भारत के आर्थिक संसाधनों को व्यापार, औद्योगीकरण और ब्रिटिश अधिकारियों को दिए जाने वाले अति उच्च वेतन, जो भारतीय खज़ाने से अदा किए जा रहे थे, के जरिये बहुत व्यवस्थित पद्धति से इंग्लैंड को प्रदान किया जा रहा है। उनके आकलन के अनुसार धन के निष्कासन की यह मात्रा सरकारी लगान का आधा हिस्सा और भारत की कुल बचत के एक तिहाई हिस्से के बराबर थी। इस प्रकार ब्रिटेन के धनी बनने और भारत को निर्धन बनाने की प्रक्रिया साथ–साथ चल रही थी।

इस प्रकार प्रारंभिक राष्ट्रीय नेताओं ने यह तर्क दिया कि ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन ने, अनेक प्रकार के उपायों के जरिए भारत की अर्थव्यवस्था को पूरी तरह से ग्रेट ब्रिटेन की अर्थव्यवस्था के अधीन कर लिया था। उनके विचार में भारत की अर्थव्यवस्था की समस्त दिशा को ब्रिटिश अर्थव्यवस्था की जरुरतों के अनुसार मोड़ा जा रहा था। उन्होंने यह मांग की कि भारत की धन–सम्पदा का इंग्लैंड को निष्कासन बंद किया जाए और भारत की पूंजी से ही भारत में औद्योगीकरण लाया जाए, ताकि इससे भारत और भारत के लोगों

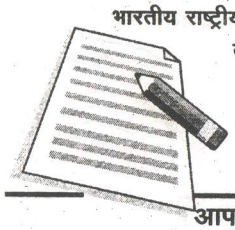

आपकी टिप्पणियाँ

दोनों का हित हो सके। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए राष्ट्रवादी नेताओं ने अपने देश के लिए स्व–शासन या स्व–सरकार या कहें स्वराज की मांग की।

राष्ट्रवादी नेताओं द्वारा संरचित आर्थिक राष्ट्रीयवाद का संदर्भ द्विपक्षीय था :

सबसे पहले तो इससे इस धारणा को खत्म किया गया, जो 19वीं सदी की प्रथम अर्द्ध शती के दौरान शिक्षित वर्ग के दिल में बैठ गई थी कि ब्रिटिश उपनिवेशवादी सरकार कल्याणकारी सरकार है और इससे अन्त में भारत का आर्थिक विकास होगा। अनेक लोगों को यह विश्वास था कि यदि औपनिवेशिक शासन लंबी अवधि तक चलेगा तो, अन्त में, भारत ग्रेट ब्रिटेन की तरह समृद्ध राष्ट्र बन जाएगा। भारतीय राष्ट्रवादी नेता यह प्रदर्शित करने में समर्थ थे कि यह धारणा गलत थी और यह कि उपनिवेशवादी शासन वास्तव में भारत के लोगों के हितों के लिए हानिकारक था।

दूसरे, आर्थिक राष्ट्रवाद ने ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन के विरुद्ध एक शक्तिशाली आंदोलन की नींव रखी, जो 20वीं सदी में महात्मा गांधी और अन्य नेताओं के नेतृत्व में प्रारंभ हुआ। इन नेताओं ने आर्थिक राष्ट्रवाद के विचारों को भारतीय जनता तक पहुंचाया और उन्हें इसके पक्ष में राष्ट्रीय आंदोलन के लिए प्रेरित किया। एक बार भारतीय जनमानस के विशाल संख्या में राष्ट्रीय आंदोलन के साथ जुड़ते ही, ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन का भारत में रहना असंभव हो गया।

## पाठगत प्रश्न 20.3

1. निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दें :

   (i) भारत के कुछ ऐसे नेताओं के नाम लिखें जिन्होंने यह तर्क दिया कि ब्रिटिश शासन द्वारा भारत की अर्थव्यवस्था का शोषण किया जा रहा था।

   _____

   (ii) निष्कासन सिद्धांत क्या था और इसे किसने प्रतिपादित किया?

   _____

   (iii) आर्थिक राष्ट्रवाद का क्या महत्व है?

   _____

   (iv) 20वीं सदी के राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं द्वारा आर्थिक राष्ट्रवाद के विचार का किस प्रकार उपयोग किया गया?

   _____

2. रिक्त स्थान भरें :

   (i) ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत के साथ _____ किया।

   (ii) दादाभाई नौरोजी ने _____ पुस्तक लिखी।

   (iii) भारत से इंग्लैंड को निष्कासित की जाने वाली धन–सम्पदा की कुल मात्रा भारत की _____ बचत के बराबर थी।

(iv) उपनिवेशवादी शासकों ने अपने उद्योगों के लिए भारत को _____ के स्रोत के रुप में शोषित किया।

## 20.4 धर्म और राष्ट्रवाद

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और आर्थिक राष्ट्रवाद के अतिरिक्त, अन्य उपाय भी थे जिनके माध्यम से भारतीय राष्ट्रवाद की भावना अभिव्यक्त की जा रही थी। 19वीं सदी की दूसरी अर्ध शती के दौरान भारतीय राष्ट्रवाद के संदर्भ में यह विचार अस्तित्व में आया जो धर्म पर आधारित था। यह बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय, दयानंद सरस्वती (जिन्होंने 1875 में आर्य समाज की स्थापना की) और अरबिन्दो घोष जैसे नेताओं ने हिन्दू धर्म और इसकी भावना को भारतीय राष्ट्रवाद के पीछे की प्रेरक शक्ति बना दिया। उन्होंने भारत में ब्रिटिशों की उपस्थिति को पश्चिमी सभ्यता द्वारा भारत की सभ्यता पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के रुप में देखा। वे इस प्रभुत्व के पूरी तरह विरुद्ध थे।

ये नेता पूरी तरह यह मानते थे कि यद्यपि ब्रिटिश, भारत पर विजय प्राप्त करने में सफल रहे परन्तु पूर्वी सभ्यता पश्चिमी सभ्यता से श्रेष्ठ थी। बंकिम चन्द्र ने यह तर्क दिया कि यद्यपि ब्रिटिशों ने सेना और प्रौद्योगिकी की श्रेष्ठता की सहायता से भारत पर विजय प्राप्त कर ली थी, परन्तु भारतीयों को इसका अंधानुकरण नहीं करना चाहिए। उन्होंने भारतीय समाज की अद्वितीयता का पक्ष लिया और कहा कि इस पर पश्चिमी सभ्यता के विचारों को लागू नहीं किया जा सकता। इन नेताओं ने यह समझ लिया था कि पश्चिमी सभ्यता व्यक्तिवादी विचारधाराओं (आध्यात्मिकता के स्थान पर) पर आधारित थी और यह विचार भारत के लिए पूरी तरह अनुचित था। विवेकानंद का विश्वास था कि पश्चिमी विचारों को भारतीय परिस्थितियों के अनुसार पुनः रचित करना होगा। उन्होंने कहा, "यूरोप में राजनीतिक विचार राष्ट्रीय एकता लाते हैं एशिया में धार्मिक विचार राष्ट्रीय एकता की भावना पैदा करते हैं।"

इन नेताओं का प्रेरणा स्रोत पश्चिमी साहित्य और अन्य साधन नहीं बल्कि वेद, उपनिषद और गीता जैसे भारतीय ग्रंथ थे। उन्होंने ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन की आलोचना की, जिसका मुख्य आधार था कि यह लोग आध्यात्मिक संसाधनों से संपन्न समृद्ध भारत भूमि पर एक घटिया भौतिक पद्धति लागू करना चाहते हैं।

धर्म पर आधारित राष्ट्रवाद की इस समझ का राजनीतिक पक्ष भी था। बालगगाधर तिलक जैसे नेता राष्ट्रवाद की इस भावना को जनमानस तक ले जाना चाहते थे। वे जानते थे कि भारतीय समाज में धर्म बहुत महत्त्वपूर्ण नैतिक शक्ति था। अतः उन्होंने राष्ट्रवादी भावना के प्रचार के लिए धर्म का इस्तेमाल करने का निर्णय लिया। लोगों से वे उन्हीं की भाषा, यानी धार्मिक भाषा में बात करने के योग्य हो सकें इसके लिए तिलक ने 1893 में महाराष्ट्र में 'गणपति उत्सव' मनाने की शुरुआत की ताकि ऐसा मंच तैयार किया जा सके जहां से राष्ट्रवादी विचारों का प्रचार और प्रसार किया जा सके।

20वीं सदी के दौरान, धर्म पर आधारित इस राष्ट्रवादी समझ के परिणामस्वरुप, दो विभिन्न किस्म की राजनीतिक गतिविधियां पैदा हुई। एक तरफ, महात्मा गांधी जैसे नेताओं ने राष्ट्रवादी प्रेरणा को गति देने के लिए धर्म के इस्तेमाल का स्वागत किया। परन्तु उन्होंने इस दृष्टिकोण को केवल हिन्दू धर्म तक सीमित नहीं रखा। उन्होंने हिन्दुत्व,

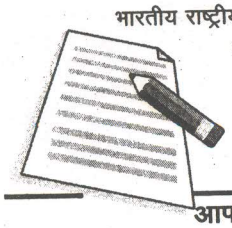

आपकी टिप्पणियाँ

इस्लाम और अन्य धर्मों के प्रतीकों और भाषाओं का भी इस्तेमाल किया। इस प्रकार उन्होंने विभिन्न धार्मिक समुदायों के सदस्यों को राष्ट्रीय आंदोलन के साथ जोड़ने और उनमें एकता की भावना पैदा करने का प्रयास किया।

दूसरा दृष्टिकोण विशिष्ट प्रकृति का था और यह 'हिन्दू महासभा' और 'मुस्लिम लीग' जैसे संगठनों की गतिविधियों में लक्षित होता था। 'हिन्दू महासभा' के नेताओं ने स्वयं की गतिविधियों को हिन्दुओं तक और 'मुस्लिम लीग' ने मुसलमानों तक सीमित रखा। उन्होंने भारतीय जनमानस में एकता के प्रयास करके या ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन के लगातार विरोध द्वारा, किसी भी तरह से भारतीय राष्ट्रवाद की विचारधारा के लिए योगदान नहीं किया।

अंत में, आपके लिए यह समझना बहुत महत्त्वपूर्ण है कि विभिन्न प्रकार के राष्ट्रवाद के परस्पर संबंधों के कौन–कौन से पक्ष हैं, जो आपने इस मॉड्यूल में पढ़े हैं। यद्यपि देखने में वे एक–दूसरे से भिन्न दिखाई देते हैं परन्तु असल में उनमें बहुत सी बातें सामान्य थी। वे एक दूसरे से सिर्फ इस सीमा तक भिन्न थे कि उन्होंने एक ही लक्ष्य तक पहुंचने के लिए अलग–अलग रास्तों को अपनाया। वे किसी भी मूलभूत भावना में परस्पर विरोधी नहीं थे। उन सभी ने ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन का विरोध किया परन्तु उनके विरोध के आधार भिन्न–भिन्न थे। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के पक्षधरों का विश्वास था कि औपनिवेशिक शासन ने भारतीय संस्कृति का अतिक्रमण करना शुरु कर दिया था जिसका विरोध किया जाना चाहिए। आर्थिक राष्ट्रवाद के प्रतिपादकों ने तर्क दिया कि उपनिवेशवादी शासक आर्थिक रुप में भारत का शोषण कर रहे थे और भारत को पिछड़ा बनाए रखने में यह एक मुख्य घटक था। इसी प्रकार बंकिम चंद्र और विवेकानंद जैसे नेताओं ने ब्रिटिश शासन का इस आधार पर विरोध किया कि यह भारत के आध्यात्मिक संसाधनों को प्रदूषित कर रहा था। इन तीनों के उपनिवेशवादी शासन के विरुद्ध होने का कारण था भारतीय जनमानस पर पड़ रहा उस शासन का प्रभाव। उनके विचारों ने 20वीं सदी के दौरान उपनिवेशवाद–विरोध शक्तिशाली भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की भूमिका तैयार करने में सहयोग दिया, जिसने अंततः भारत से उपनिवेशवादी शासन को पराजित किया और भारत से बाहर निकाल फेंका।

## पाठगत प्रश्न 20.4

1. निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दें :

   (i) आर्य समाज की स्थापना किसने की?

   _____

   (ii) भारतीय नेताओं के अनुसार, पश्चिमी सभ्यता के कौन से मुख्य विचार थे?

   _____

   (iii) उस भारतीय नेता का नाम लिखें, जिसने भारतीय जनमानस तक पहुंचने के लिए गणेश उत्सव मनाने की शुरुआत की।

   _____

2. निम्नलिखित कथनों को पढ़कर सही या गलत बतलाएँ :

(i) बंकिम चन्द्र ने अनुभव किया कि पश्चिमी सभ्यता के विचारों को भारत में लागू किया जा सकता है। (सही/गलत)

(ii) दयानंद और विवेकानंद जैसे नेताओं ने अपनी प्रेरणा यूरोपीय ग्रंथों (साहित्य) से प्राप्त की। (सही/गलत)

(iii) आर्थिक राष्ट्रवाद, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और धर्म पर आधारित राष्ट्रवाद ने एक ही लक्ष्य की प्राप्ति के लिए विभिन्न मार्गों को अपनाया। (सही/गलत)

## आपने क्या सीखा

इस पाठ में निम्नलिखित मुद्दे उल्लेखनीय हैं :

- सर्वप्रथम 19वीं सदी में यूरोप में राष्ट्रवाद की जड़ें पनपीं और यह तेजी से हुए औद्योगीकरण और आधुनिक औद्योगिक अर्थव्यवस्था का परिणाम था।
- भारतीय राष्ट्रवाद अपने समकालीन यूरोप के राष्ट्रवाद से नितान्त भिन्न था। भारत में राष्ट्रवाद की भावना का उदय 19वीं सदी के उत्तरार्ध के दौरान हुआ।
- भारतीय राष्ट्रवाद का विचार दोहरे विरोध की भावना पर आधारित था। एक था, ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन का विरोध और दूसरा था, भारत के लोगों की एकता।
- ब्रिटिश शासन का प्रभाव सर्वप्रथम संस्कृति के क्षेत्र में अनुभव किया गया। भारतीय नेताओं द्वारा तर्क दिया गया कि भारतीय संस्कृति में उपनिवेशवादी संस्कृति का अतिक्रमण हानिकारक है और इसका विरोध किया जाना चाहिए।
- प्रारंभिक राष्ट्रवादी नेताओं ने ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन की आर्थिक दृष्टि से शोषणकारी प्रकृति की ओर इशारा किया और इस प्रकार आर्थिक राष्ट्रवाद का जन्म हुआ।
- इसके साथ–साथ, अनेक अन्य नेताओं ने भारतीय राष्ट्रवाद का प्रचार किया, जो धर्म पर आधारित था और जो धार्मिक विचार–विमर्श द्वारा प्रेरित था।
- 20वीं सदी के दौरान, अनेक शाखाओं सहित जिस भारतीय राष्ट्रवाद का विकास हुआ उसी के परिणामस्वरुप शक्तिशाली भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन रुप ले सका। यह भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन 19वीं सदी के भारतीय राष्ट्रवाद के विचार पर आधारित था और इसे जनमानस की व्यापक भागीदारी द्वारा समर्थन मिला। विशाल जनमानस की सक्रिय भागीदारी ने भारतीय राष्ट्रवाद को शक्तिशाली अजेय बल में बदल दिया, जिसने अंत में ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन को भारत से वापस जाने पर मजबूर कर दिया।

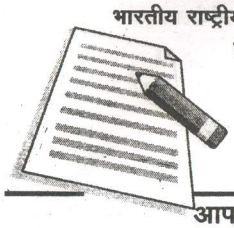

आपकी टिप्पणियाँ

## पाठांत प्रश्न

1. औद्योगीकरण ने यूरोप में राष्ट्रवाद को विकसित करने में किस प्रकार दिशा दी?
2. भारतीय राष्ट्रवाद, अपने यूरोपीय समकालिक राष्ट्रवाद से किस प्रकार भिन्न था?
3. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का सार क्या था?
4. दादाभाई नारौजी और आर. सी. दत्त जैसे नेताओं ने आर्थिक राष्ट्रवाद के विकास में किस प्रकार योगदान किया?
5. वे कौन–से विभिन्न उपाय थे जिनके द्वारा ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन ने भारतीय अर्थव्यवस्था को ग्रेट ब्रिटेन की अर्थव्यवस्था के अधीन किया?
6. दयानंद सरस्वती, विवेकानंद और अरबिन्दो घोष के दृष्टिकोण से धर्म और राष्ट्रीयता में परस्पर क्या संबंध था?
7. भारतीय राष्ट्रवाद के विकास का भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के विकास से क्या संबंध था?

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

### 20.1

1. (क) गलत, (ख) सही, (ग) सही, (घ) सही
2. (क) ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन का विरोध और (ख) भारतीय लोगों की एकता।

### 20.2

1. (क) राममोहन राय, (ख) ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, (ग) ब्रह्म समाज
2. पारंपरिक भारतीय संस्कृति के कुछ तत्वों का विरोध और लोगों के जीवन में उपनिवेशवादी संस्कृति के अतिक्रमण का विरोध।

### 20.3

1. दादाभाई नारौजी, आर. सी. दत्त, महादेव गोविंद रानाडे और कुछ अन्य।
2. निष्कासन पद्धति का अभिप्राय था व्यापार, उद्योग और भारत में नियुक्त ब्रिटिश अधिकारियों के वेतनों के जरिये भारतीय धन–सम्पदा को एक प्रणाली का रुप देकर इंग्लैंड में स्थानांतरित करना।
3. आर्थिक राष्ट्रवाद का यह महत्व था कि इससे यह भ्रम समाप्त हो गया कि ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन भारत के लोगों की भलाई के लिए काम कर रहा था।
4. आर्थिक राष्ट्रवाद की भावनाओं का, राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं ने, भारतीय लोगों को ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन के विरुद्ध लड़ने के लिए प्रेरित करने के लिए उपयोग किया।

2. (क) असमान व्यापार, (ख) निर्धनता और भारत में ब्रिटिशों के शासन को हटाना (ग) एक तिहाई, (घ) कच्चा माल

**20.4**

1. (क) दयानंद सरस्वती, (ख) व्यक्तिवाद, धर्मनिरपेक्षता, औचित्यपूर्ण व्याख्या, (ग) बाल गंगाधर तिलक
2. (क) गलत, (ख) गलत, (ग) सही

**पाठांत प्रश्नों के संकेत**

1. देखें 20.1, अनुच्छेद 2
2. देखें 20.1, अनुच्छेद 5
3. देखें 20.2
4. देखें 20.3, अनुच्छेद 1 व 2
5. देखें 20.3, अनुच्छेद 3 व 4
6. देखें 20.4, अनुच्छेद 1 व 2
7. देखें 20.4, अनुच्छेद 7 (अंतिम अनुच्छेद)

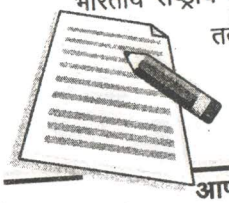



# 21

# भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन

हमारे स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास कोई एक समरूप कहानी नहीं है। इसमें बहुत से भिन्न–भिन्न प्रकार के धागे हैं जो आपस में गुंथे हुए हैं और परस्पर एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं और स्वतंत्रता के लिए हमारे लोगों के संघर्ष की परतों को खोलते हैं। नरमदल के प्रयासों से कानूनी और संवैधानिक परिवर्तन हुए। क्रांतिकारियों के उत्साह के परिणामस्वरूप बहादुरी और अटल संघर्ष की घटनाएं घटीं। महात्मा गांधी द्वारा शुरु किए गए जन–आंदोलन पर जनता के प्रत्येक वर्ग की ओर से व्यापक प्रतिक्रिया हुई। प्रत्येक आंदोलन ने एक–दूसरे को समर्थन दिया और उन्हें पुष्ट किया, जिसके परिणामस्वरूप अंततः हमें स्वतंत्रता मिली। इस पाठ में हम इन विभिन्न आंदोलनों के संबंध में पढ़ेंगे और यह देखेंगे कि कैसे इन्होंने एक–दूसरे पर असर डाला और सबके सामान्य लक्ष्य अर्थात् स्वतंत्रता पाने की ओर अग्रसर किया।

## उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के संबंध में एक समग्र दृष्टिकोण विकसित कर सकेंगे;
- आंदोलन के विविध तानों–बानों की पहचान कर उन्हें क्रमवार स्थिति में व्यवस्थित कर सकेंगे और
- यह देख सकेंगे कि राष्ट्रीय आंदोलन के प्रत्येक वर्ग ने कैसे दूसरे को प्रभावित किया।

## 21.1 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और प्रारंभिक राष्ट्रवादी

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का गठन 1885 में राजनीतिक दृष्टि से जागरूक शिक्षित 72 भारतीयों के एक समूह द्वारा किया गया था। ब्रिटिश इंडियन सिविल सर्विस के सेवानिवृत्त अधिकारी, मिस्टर ए. ओ. ह्यूम ने इसके गठन में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके सदस्यों में शामिल थे फिरोजशाह मेहता, बदरूद्दीन तैय्यबजी, डब्ल्यू.सी. बनर्जी, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, आनंदमोहन बोस और रोमेश चन्द्र दत्त। यह संगठन किसी भी प्रकार से भारतीय लोगों की ऐसी पहली संस्था नहीं थी। भारत में अंग्रेजी पढ़ा–लिखा वर्ग

धीरे–धीरे राजनीतिक दृष्टि से जागरूक हो रहा था और 1875 से 1885 के दौरान अनेक राजनीतिक संस्थाएं गठित की जा रही थीं। कलकत्ता के द्वारकानाथ गांगुली, पुणे के रानाडे और जी.वी. जोशी, बम्बई के के.टी. तेलंग और मद्रास के जी. सुब्रमन्यम अय्यर व वीरराघवचारी पहले ही क्षेत्रीय राजनीतिक संगठनों से जुड़े हुए थे। इनके संगठनों के नाम क्रमश : इंडियन एसोसिएशन, पूना सार्वजनिक सभा, बांबे प्रेजिडेंसी एसोसिएशन, और मद्रास महाजन सभा थे। इन संस्थाओं की कार्य सूची संपूर्ण स्वतंत्रता के आदर्श से दूर, बहुत सीमित थी। ये संस्थाए औपनिवेशिक शासन की उन नीतियों के विरुद्ध आवाज उठा रही थीं, जो भारतीयों के हित में नहीं थीं। इन संस्थाओं से संबद्ध प्रारंभिक राष्ट्रवादियों के बुनियादी सरोकार निम्नलिखित थे :

1. कपास के आयात–कर को भारतीयों के अनुकूल बनाया जाए।
2. सरकारी सेवाओं का भारतीयकरण किया जाए।
3. ब्रिटिश सरकार की अफगान नीति का विरोध।
4. वर्ना कुलर प्रेस एक्ट और प्रेस पर नियंत्रण का विरोध।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की जो बात इसे अन्य संस्थाओं से पृथक करती थी–वह थी कभी भारत के लोगों के लिए एक ऐसा सामान्य राजनीतिक मंच उपलब्ध कराने का प्रयास, जिसने इसे यह दावा करने के योग्य बनाया कि यह देश का प्रतिनिधित्व करती है। यद्यपि ब्रिटिश प्रशासन ने कांग्रेस के महत्त्व को कम करने का प्रयास किया, परन्तु इसके बावजूद यह लोगों की महत्त्वाकांक्षा को दर्शाने में सफल रही। अतः इस संगठन का सबसे महत्त्वपूर्ण और सर्वोपरि लक्ष्य था लोगों के मन में यह जागरूकता पैदा करना कि वे सभी एक राष्ट्र से संबंध रखते हैं। यहां की सांस्कृतिक, भाषाई और धार्मिक परंपराओं की विविधता के चलते यह कार्य अत्यन्त भयावह था। सभी विभिन्न ताकतों को एक सामान्य प्रतिपक्षी–ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरोध में संगठित करना था।

प्रारंभ में कांग्रेस के संस्थापकों को सरकार को उन मामलों में प्रभावित करने की आशा की थी जो देश के कल्याण और विशेष रूप से आर्थिक विकास को प्रभावित करते थे। उन्हें उम्मीद थी कि यदि समुचित प्रचार के जरिए राष्ट्र की समस्याओं को प्रकाश में लाया जाये तो औपनिवेशिक सरकार इन समस्याओं के समाधान के लिए कदम उठा सकती है।

अतः प्रारंभिक वर्षों के दौरान राष्ट्रवादियों ने वक्तव्यों और समाचार–पत्रों में लेखों द्वारा राष्ट्र की मुख्य समस्याओं और उन्हें सुधारने के उपायों को सामने लाने का प्रयास किया। तथाकथित नरमपंथियों या कांग्रेस के प्रारंभिक सदस्यों का सबसे मूल्यवान योगदान था, आर्थिक समीक्षा का सूत्रपात करना। सर्वप्रथम दादा भाई नौरोजी और तत्पश्चात् अन्य राष्ट्रवादियों ने यह देखा कि औद्योगिक क्रांति लाने के बजाय, जिसकी भारत का बौद्धिक वर्ग आशा कर रहा था, ब्रिटिश शासन भारत को और निर्धन बना रहा था और भारत के स्वदेशी हस्तशिल्प–उत्पादन को नष्ट कर रहा था। इस खोज ने प्रारंभिक राष्ट्रवादियों के मन में कुछ भ्रम पैदा कर दिया था क्योंकि उन्हें यह आशा थी कि ब्रिटिश शासन के परिणामस्वरूप भारत में आधुनिकता आयेगी। प्रारंभिक कांग्रेस के अन्य सरोकार इस प्रकार थे :

(1) भारतीय प्रतिनिधियों को अधिकाधिक शक्तियां दिये जाने सहित सर्वोच्च और स्थानीय विधान परिषदों में सुधार।

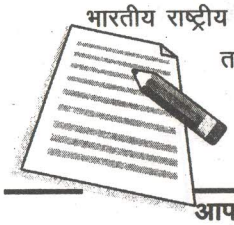

आपकी टिप्पणियाँ

(2) इंग्लैंड और भारत में समानान्तर परीक्षाओं के जरिए सिविल सर्विसेज का भारतीयकरण करना।

(3) वन संबंधी कानूनों को बदलना, जो भारतीयों को प्रभावित करते थे।

(4) असम के चाय के बागान में अनुबंधित मजदूरी के विरोध में संगठित अभियान चलाना।

## 21.2 स्वदेशी और बहिष्कार : गरमपंथी राजनीति

1885–1905 के बीच के चरण को गरमपंथियों का काल कहा जाता है। 1905 में तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड कर्जन ने बंगाल के विभाजन की घोषणा की। उस समय के बंगाल में वर्तमान पश्चिम बंगाल, बिहार और झारखंड, ओड़िसा और असम शामिल थे। इसमें वर्तमान बांग्लादेश भी शामिल था। निस्संदेह यह एक बहुत ही विस्तृत प्रशासकीय इकाई थी। किंतु इसके विभाजन के तरीके अग्रेजों की फूट डालने की नीतियां साफ जाहिर कर दीं। एक तो यह विभाजन धर्म के आधार पर था, जिन क्षेत्रों में हिन्दुओं की आबादी अधिक थी, उन्हें मुस्लिम–बहुल आबादी वाले क्षेत्रों से अलग किया गया। इसके अतिरिक्त पुनरुज्जीवित बौद्धिक (अंग्रेजी शिक्षित उच्च वर्ग भारतीय) वर्ग के शहरी आधार वाले स्थलों को मुख्यतया खेतीबाड़ी वाले क्षेत्रों (मुख्य रूप से पटसन (जूट) पैदा करने वाले क्षेत्र) से अलग किया गया, जिसके पीछे उद्देश्य था कलकत्ता के महत्त्व को कम करने का प्रयास क्योंकि यहीं पर पूरे बंगाल के बौद्धिक वर्ग के लोग आपस में मिलते थे और एक–दूसरे को प्रेरित करते थे। इस घोषणा के बाद व्यापक विरोध–प्रदर्शन हुए। शुरू में यह विरोध नरमपंथियों के 'अनुनय–विनय' की युक्तियों के रूप में किया गया, जिसमें औपनिवेशिक सरकार के नाम याचिकाएं और ज्ञापन भेजे गए, भाषण, दिन भर सार्वजनिक सभाएं आयोजित की गई और प्रेस–आंदोलन चलाए गए। यह भारत और इंग्लैंड में जनमत को प्रभावित करने का प्रयास था। इन प्रयासों के बावजूद जुलाई 1905 में बंगाल का विभाजन घोषित कर दिया गया।

अंतिम घोषणा होते ही बंगाल में विरोध की आग फूट पड़ी। पूरे बंगाल में विरोध सभाएं आयोजित की गईं और खास तौर पर न सिर्फ कलकत्ता में बल्कि बंगाल के अंदरूनी छोटे कस्बों, जैसे दिनाजपुर, पाबना, फरीदपुर, ढाका, बड़िसाल इत्यादि में भी सभाएं हुई। ऐसी ही एक सभा में पहली बार ब्रिटिश सामान के 'बहिष्कार' का निर्णय लिया गया। 7 अगस्त 1905 को कलकत्ता के टाउनहॉल में एक बैठक में 'बहिष्कार' का 'संकल्प' पारित करके स्वदेशी आंदोलन की औपचारिक घोषणा की गई, जिसमें अब तक बिखरे नेतृत्व को एकजुट बना दिया। जिस दिन विभाजन लागू किया गया, यानी 11 अक्टूबर 1905 को उस दिन कलकत्ता में हड़ताल की गई और उसे शोक–दिवस घोषित किया गया। सभी लोगों ने उपवास किया और किसी भी घर में खाना पकाने के लिए चूल्हे नहीं जलाए गए। बंदे मातरम का गीत गाते हुए गलियों में परेड निकाली गई। बंगाल के लोगों ने एकता के प्रतीक के रूप में एक–दूसरे की कलाइयों पर राखियां बांधी।

इस विशेष प्रकार के 'स्वदेशी' और 'बहिष्कार' के जन–विरोध ने कांग्रेस के उन नए सदस्यों में भी लोकप्रियता हासिल कर ली, जो अपने प्रयासों के अनुकूल परिणाम देखने में नरमपंथियों से ज्यादा असहनशील थे। लोकमान्य तिलक स्वदेशी और विदेशी सामान के बहिष्कार के संदेश को मुम्बई और पुणे लेकर गए, अजीत सिंह और लाला लाजपतराय

पंजाब में और उत्तर भारत के अन्य भागों में लेकर गए। सैय्यद हैदर रजा दिल्ली तक और चिदम्बरम पिल्लई मद्रास प्रेजिडेंसी तक इस संदेश को लेकर गए, जो कि बिपिन चन्द्र पाल के विस्तृत भ्रमणों के दौरान दिए गए व्यापक वक्तव्यों से भी प्रेरणा ले रहे थे। कांग्रेस ने स्वदेशी के आह्वान को गोपालकृष्ण गोखले की अध्यक्षता में 1905 हुए अधिवेशन के दौरान औपचारिक रूप से अपनाया। यद्यपि कांग्रेस ने बंगाल में स्वदेशी आंदोलन को समर्थन दिया, परन्तु इसने इस आंदोलन को और आगे संपूर्ण भारत के स्तर पर अथवा संपूर्ण स्वतंत्रता के लक्ष्य तक विस्तारित नहीं किया। तिलक, बिपिन चन्द्र पाल, लाला लाजपत राय और अरबिंद घोष इत्यादि जैसे चरमपंथी नेताओं की इच्छा केवल यही थी। चरमपंथियों के इस दबाव ने दादा भाई नारौजी को कलकत्ता अधिवेशन के दौरान अपने अध्यक्षीय संबोधन में यह कहने के लिए प्रेरित किया कि कांग्रेस का अंतिम लक्ष्य है, 'स्व–शासन या स्वराज'।

स्वदेशी आंदोलन का योगदान यह था कि उसने नए किस्म के प्रतिरोधों की शुरूआत की। विरोध के इन तरीकों में से कुछ ने महात्मा गांधी द्वारा सत्याग्रह के दौरान अपनाए गए अनेक तरीकों की पृष्ठ भूमि तैयार की। विरोध करने के यह नए तरीके थे जनसभाएं, जुलूस, विदेशी सामान का बहिष्कार (बाद में जिसका विस्तार सरकार स्कूलों, कॉलेजों, न्यायालयों, उपाधियों और सरकारी सेवाओं का बहिष्कार तक हो गया), हड़तालें, सार्वजनिक रूप से विदेशी सामान को जलाना और विदेशी सामान बेचने वाली दुकानों के सामने धरने इत्यादि। व्यापक स्तर पर जनमानस में सक्रियता पैदा करने के प्रयास किए गए और ऐसी 'समितियों' का गठन किया गया, जिन्होंने बंगाल के अंदरूनी हिस्सों में जाकर स्वदेशी का संदेश फैलाया।

पहली बार जन सामान्य तक पहुँचने के लिए राष्ट्रीय आंदोलन में पारंपरिक और लोकप्रिय त्योहारों का इस्तेमाल किया गया।

महाराष्ट्र में तिलक द्वारा बड़ी संख्या में लोगों को इस आंदोलन की ओर आकर्षित करने और इस संबंध में उन्हें शिक्षित करने के लिए गणपति और शिवाजी उत्सवों का उपयोग किया गया। बंगाल में लोगों को प्रेरित करने के लिए स्वदेशी गीतों का प्रयोग किया गया। लोकप्रिय रंगमंच 'यात्रा' की एक किस्म को राष्ट्रीय भावनाओं के विस्तार के लिए प्रयोग में लाया गया। इस आंदोलन के साथ–साथ सांस्कृतिक गतिविधियों की एक बाढ़–सी आ गई थी।

अंत में औपनिवेशिक सरकार उस रूप में विभाजन को वापस लेने के लिए मजबूर हो गई, जिस रूप में उसने इसकी परिकल्पना की थी। फिर भी उन्होंने 1911 में राजधानी को कलकत्ता से दिल्ली स्थानांतरित करके कलकत्ता और उसके साथ–साथ बंगाल के बुद्धिजीवियों के महत्त्व को कम करने का प्रयास तो किया ही।

## पाठगत प्रश्न 21.1

1. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का गठन कब हुआ? किस ब्रिटिश अधिकारी ने इसके गठन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई?

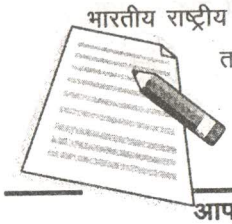

आपकी टिप्पणियाँ

2. बंगाल–विभाजन की घोषणा किसने और कब की ?

3. राष्ट्रवादी भावनाओं के प्रसार के लिए किस लोकप्रिय किस्म के रंगमंच का प्रयोग किया गया?

4. 1911 में राजधानी को स्थानांतरित करने का मुख्य कारण क्या था?

## 21.3 भारत और विदेश में क्रातिकारी आंदोलन का पहला चरण

कांग्रेस के भीतर ही नरमपंथियों और गरमपंथियों के बीच मतभेदों की खाई चौड़ी होती चली गई। गरमपंथी लोग औपनिवेशिक सरकार द्वारा शुरू किए गए संवैधानिक सुधारों के नाम पर कराए जाने वाले असेबली चुनावों का बहिष्कार करने के पक्ष में थे। नरमपंथी लोग इस चुनाव प्रतिक्रिया में भाग लेना चाहते थे, हालांकि सीमित स्तर पर। अंत में इस मतभेद का परिणाम यह हुआ कि 1907 में कांग्रेस के सूरत अधिवेशन के दौरान कांग्रेस का विभाजन हो गया। गरमपंथी नेताओं ने जनसामान्य को क्रियाशील करना जारी रखा, जबकि कांग्रेस ने सरकारी नीतियों को प्रभावित करने का प्रयास किया। 1909 के मॉर्ले–मिंटो सुधार रमपंथियों की आकांक्षाओं पर एक करारा आघात था। स्वदेशी आंदोलन अपनी गति खो चुका था। फिर भी आंदोलन के क्रांतिकारी संदेश ने एक अन्य वैयक्तिक किस्म के विरोध यानी क्रांतिकारी आंदोलन को प्रेरित किया।

क्रांतिकारियों का लक्ष्य था चरम आत्म–बलिदान द्वारा ब्रिटिश शासन का अंत। उनका तरीका था उन अलोकप्रिय औपनिवेशिक अधिकारियों की हत्या करना, जो सरकार के दमनकारी कार्यों को आकार देने के लिए जिम्मेदार थे। इन जन–आंदोलनों के प्रति औपनिवेशिक प्रतिक्रिया हमेशा दोहरी रहती थी। एक ओर तो उन्होंने संवैधानिक सुधार करके और उन्हें सीमित चुनावों में भाग लेने के लिए आमंत्रित करके नेताओं को कुछ रियायतें दीं, दूसरी ओर प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार करके बड़े पैमाने पर उनका दमन किया। गरमपंथी नेताओं ने अनेक वर्ष जेलों में बिताऐ। उन नेताओं के कभी जेल के अंदर तो कभी बाहर रहने के परिणामस्वरूप क्रातिकारी आंदोलन मुख्यतः भूमिगत रहकर, गुप्त संगठनों द्वारा चलाये जाने लगे। इन संगठनों की उपत्ति के बीज स्वदेशी के दिनों में गठित 'समितियों' में समाहित थे।

सन् 1908 में खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी ने एक वाहन पर बम फेंका, जिसके संबंध में वे समझते थे कि उसमें मुजफ्फरपुर का एक अलोकप्रिय जज किंग्सफोर्ड बैठा है। लेकिन उन्होंने उसके स्थान पर दो महिलाओं की हत्या कर दी। चाकी ने खुद को गोली मार ली थी और खुदीराम को फांसी दे दी गई थी। क्रांतिकारियों ने, जो मुख्यतया अनुशीलन और युगांतर समितियों से संबंधित थे, अपने आंदोलनों के लिए धन इकट्ठा करने के लिए स्वदेशी डकैतियाँ भी डाली। क्रांतिकारी आंदोलन सिर्फ बंगाल तक ही सीमित नहीं था। रासबिहारी बोस और शचीन्द्रनाथ सान्याल ने पंजाब से लेकर उत्तर–प्रदेश और दिल्ली तक के क्षेत्रों में क्रांतिकारी तंत्र की स्थापना की। 1912 में इन

दोनों क्रांतिकारियों ने वाइसराय लॉर्ड हार्डिंग पर दिल्ली में घातक प्रहार किया। क्रांतिकारी आंदोलन धीरे–धीरे भारतीय तटों से बाहर भी फैल रहा था। श्यामजी कृष्णवर्मा ने सन् 1905 में लंदन में भारतीय विद्यार्थियों के लिए इंडिया हाउस नाम का एक केन्द्र शुरू किया। सन् 1907 में इस संगठन की कमान बी.डी. सावरकर के अधीन एक क्रांतिकारी समूह के हाथों में आ गई थी। इस संगठन के मदनलाल ढींगरा ने सन् 1909 में भारतीय कार्यालय के अफसरशाह कर्जन–विली की लंदन में हत्या कर दी थी। यूरोप में (पेरिस और जेनेवा) एक पारसी क्रांतिकारी मादाम कामा ने फ्रांसीसी समाजवादियों के साथ संपर्क स्थापित किया और 'बंदे मातरम' नामक एक क्रांतिकारी पत्रिका की शुरूआत की। बर्लिन में वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय और अन्य नेता 1909 से सक्रिय थे। ब्रिटेन और यूरोप में क्रांतिकारी समूह बिलकुल अलग–थलग थे। फिर भी संयुक्त राज्य अमेरिका में और विशेष रूप से ब्रिटिश कोलम्बिया और प्रशांत महासागर के तटवर्ती राज्यों में इस आंदोलन को कुछ हद तक जनाधार मिला। इन राज्यों में 15000 भारतीयों की आबादी थी, जो मुख्य रूप से सिख समुदाय के लोग थे जो वहां सफल व्यापारी और कारीगर होने के बावजूद अत्यधिक नस्ली भेदभाव का सामना कर रहे थे। सन् 1913 में सैन–फ्रांसिस्को शहर में इस आबादी में गदर आंदोलन शुरू हुआ। यह आंदोलन सोहन सिंह भाकना द्वारा शुरू किया गया था और हरदयाल इसके अत्यंत प्रमुख नेताओं में से एक थे।

1914 में प्रथम विश्व युद्ध शुरू हुआ और क्रांतिकारियों ने इस अवसर को अपने पूर्ण स्वतंत्रता के लक्ष्य को आगे बढ़ाने के लिए एक बहुत ही समुचित अवसर समझा। ब्रिटेन युद्ध की तैयारियों में व्यस्त था और इस प्रयोजन के लिए भारत से सैनिक दलों को बाहर भेजा जा रहा था। जर्मनी जैसे शत्रु राष्ट्र ब्रितानियों को कमजोर करने के लिए क्रांतिकारियों की गतिविधियों के लिए धन की व्यवस्था करने के लिए अत्यंत उत्सुक थे। तुर्की पर ब्रिटेन के आक्रमण से संपूर्ण इस्लामिक जगत का तुर्की को समर्थन मिला, क्योंकि तुर्की उस 'खलीफा' का स्थान था जिसका पूरे विश्व में सम्मान किया जाता था। बरकतुल्ला मुख्य मुस्लिम क्रांतिकारी नेताओं में से एक महत्त्वपूर्ण नेता थे जो गदर आंदोलन में शामिल हुए। उत्तर प्रदेश में देवबंद में एक मुस्लिम शिक्षण केन्द्र में शिक्षित व्यक्तियों के एक समूह या 'उलेमा' ने भी क्रांतिकारी संदेश का प्रचार किया जिसका बड़ी संख्या में मुसलमानों ने समर्थन किया।

इस दौरान स्वदेशी डकैतियाँ और ब्रिटिशों की हत्याए जारी रहीं, और इस अवधि में क्रांतिकारी गतिविधियों में उल्लेखनीय वृद्धि देखने में आई। जतिन मुखर्जी (बाघा जतिन) के नेतृत्व में बंगाली क्रांतिकारियों का समूह संगठित हुआ और उन्होंने बहुत बड़े पैमाने पर रेल–सेवा को तहस–नहस करने और हथियार छीनने की योजना बनाई। उन्हें तब सफलता मिली, जब बहुत बड़े पैमाने पर कलकत्ते में रोडा फर्म के शस्त्र और बारूद इन लोगों के हाँथ लगे। तथापि उड़ीसा में बालासोर की पुलिस द्वारा बाघा जतिन को पकड़ लिए जाने इनकी दीर्घकालीन योजनाओं को बड़ा झटका लगा। रास बिहारी बोस और सचिन सान्याल की योजना भी बंगाल के क्रांतिकारी आंदोलन का अंग थी। इस समूह वाले लोग बड़ी संख्या में भारत में वापस आने शुरू हो गए थे। कामागाटा मारू की घटना ने इस आवेग को और भड़का दिया था। सिखों और मुस्लिम यात्रियों को कनाडा ले जा रहे कामागाटा मारू जहाज को कनाडा सरकार ने परे धकेल दिया और यह सितम्बर 1914 में कलकत्ता पहुंचा। यात्रियों ने पुलिस से मुठभेड़ की जिसमें 22 लोग मारे गए थे।

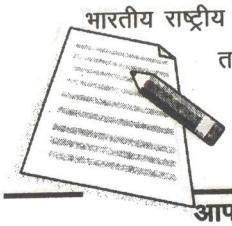

आपकी टिप्पणियाँ

गदर आंदोलन और क्रांतिकारी योजनाएं असफल रहीं, क्योंकि ब्रिटिश सरकार ने इन पर बहुत सख्ती शुरू कर दी थी। जो भी गदरी वापस आए थे, उन्हें तत्काल गिरफ्तार कर लिया गया था और रास बिहारी बोस जापान चले गए थे। सचिन सान्याल को जीवन–भर के लिए देशनिकाला दिया गया था। क्रांतिकारी और विशेष से गदरी सैनिक इकाइयों और किसानों के मध्य क्रांति को संगठित रूप देने में अग्रणी थे।

## 21.4 होमरूल आंदोलन

बालगंगाधर तिलक, जो 1908–1914 के दौरान जेल की सजा काट रहे थे, कांग्रेस में वापस आ गए थे जहाँ की रात मॉर्ले मिंटो सुधारों के तहत कौंसिल चुनावों में हाथ लगी निराशा के बाद उनके लिए और अधिक खुल गई थी। 1914–15 तक स्वदेशी आंदोलन, कौंसिल में प्रवेश और अंदर रहकर प्रशासन को प्रभावित करने के प्रयास और क्रांतिकारी आंदोलन सभी अपने–आप में अपना प्रभाव खो चुके थे। यह वह वक्त था, जब राष्ट्रीय आंदोलन को नए सिरे से जोरदार ढंग से आगे बढ़ाने की जरूरत थी और यह एनी बेसेंट और तिलक के होमरूल आंदोलन से ही संभव था। तिलक ने कांग्रेस के भीतर से ही होमरूल लीग के जरिए एक आक्रामक तंत्र स्थापित करने का काम किया, जिसे उन्होंने अप्रैल 1916 में स्थापित किया थी। लगभग इसी दौरान थियोसोफिस्ट लीडर एनी बेसेंट सुर्खियों में आई और उन्होंने भारतीयों के लिए स्व–शासन हेतु बहुत जोर–शोर से विरोध शुरू करने का प्रस्ताव रखा। बेसेंट ने आयरिश होम रूल के मॉडल के अनुरूप देश में एक होम रूल लीग आंदोलन स्थापित करने का प्रस्ताव रखा ताकि लोगों में जागरूकता का प्रसार किया जा सके। बेसेंट की लींग की स्थापना सितम्बर 1916 में हुई थी।

तिलक की लीग महाराष्ट्र और कर्नाटक में सक्रिय थी। बेसेंट की लीग का प्रभाव अखिल भारतीय स्तर पर था, जिसका मुख्यालय अड्यार, मद्रास में था। होम रूल लीग की गतिविधियां थीं शहरों में चर्चाओं और वाचनालयों की व्यवस्था करना, परचे बाटना और जनमत को प्रभावित करने के लिए व्याख्यान देने के लिए दौरे इत्यादि संचालित करना। होम रूल आंदोलन ने कभी भी संपूर्ण स्वतंत्रता के लक्ष्य के संबंध में बात नहीं की, परन्तु फिर भी, उन्होंने सरकारी नीतियों के विरोध के जरिए, उदाहरणतया, मद्य कानून, वन कानून इत्यादि जैसी, उपनिवेशवादियों की दमनकारी नीति के विरुद्ध अपना ध्यान अवश्य केन्द्रित किया। इसी समय राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं की नई पीढ़ी तैयार की गई और इस आंदोलन के केन्द्र को बंगाल और पंजाब से महाराष्ट्र और दक्षिण में स्थानांतरित किया गया। अनेक नरमपंथी कांग्रेसी भी होम रूल आंदोलन से जुड़ गए, फिर भी, 1918 के बाद होम रूल आंदोलन का अचानक ही अंत हो गया।

### पाठगत प्रश्न 21.2

1. सेन फ्रांसिस्को शहर में गदर आंदोलन की नींव किसने रखी?

   _____

2. कॉमा गाटामारू की घटना क्या है?

   _____

3. क्रांतिकारी पत्रिका की शुरूआत किसने की।

_____

4. ऐनी बेसेंट और तिलक ने कौन सा आंदोलन शुरू किया?

_____

## 21.5 गांधी जी का जन-आंदोलन : प्रारंभिक वर्ष

ब्रिटिश सरकार ने 1919 में संवैधानिक सुधारों की अगली कड़ी मॉन्टेग्यू–चैमस्फोर्ड सुधार की शुरूआत की। यद्यपि इन सुधारों के द्वारा यह दावा किया गया कि इनसे स्थानीय स्व–शासन आया है और भारतीयों को काफी हद तक स्वायत्ता मिली है, परन्तु वास्तविक शक्तियाँ अभी भी उन्होंने सख्ती से ब्रिटिश हाथों में ही रखीं। इन सुधारों के द्वारा शुरू की गई द्विशासन प्रणाली ने और अधिक भारतीयों को प्रतिनिधित्व का अवसर दिया और स्थानीय व्यय पर अधिकाधिक नियंत्रण दिलाया, परन्तु चुनी गई विधायिका का कार्यपालिका पर कोई नियंत्रण नहीं था।

युद्ध के बाद के वर्षों में (प्रथम विश्व युद्ध 1918 में समाप्त हुआ था) देश में बढ़ता असंतोष दिखाई देने लगा क्योंकि भारत की अर्थव्यवस्था पर युद्ध का प्रभाव बहुत ही स्पष्ट रूप से सामने आ गया था। युद्ध के परिणामस्वरूप कीमतें, अभाव और बेरोजगारी तो बढ़ी ही, इसके साथ ही इन्फ्लूएंजा महामारी भी फूट पड़ी। युद्धकालीन आवश्यकताओं से भारत में उद्यमियों के एक नये वर्ग का उद्भव हुआ और एक बड़ा कामगार वर्ग पैदा हुआ, जो अधिकाधिक संगठित होता जा रहा था। यह कामकाजी वर्ग अत्यन्त उद्विग्न था और राष्ट्रवादी आंदोलन के लिए एक संभावित बल था। पूंजीवादी वर्ग का एक हिस्सा औपनिवेशिक राज्य के प्रति निष्ठावान था क्योंकि वह श्रमिक वर्ग के नियंत्रण में सहायता करता था। फिर भी, उनमें से भी कुछ लोग राष्ट्रीय आंदोलन के समर्थक थे। वे बेशक सरकार की आर्थिक नीतियों का विरोध करते थे परंतु उन्होंने यह अनुभव किया था कि ब्रिटिश नीतियों का अंतिम परिणाम भारतीय उद्योगों के लिए हानिकारक होगा।

इस अशांत अवधि के दौरान मोहनदास करमचंद गांधी के आगमन ने राष्ट्रवादी आंदोलन का एक अन्य कालखंड चिह्नित हुआ। सन् 1915 में भारत आए गांधी ने युद्ध के बाद के वर्षों में मौजूद इन शक्तियों को नियंत्रित करने के लिए अपने ही तरीकों का प्रयोग किया। उनका तरीका था विशिष्ट मुद्दों और कानूनों का पता लगाना और शांतिपूर्ण ढंग से उनका विरोध करना तथा अनुशासित व्यक्तियों की मदद से उन कानूनों का उल्लंघन करना। गांधी जी के आंदोलन का महत्त्व यह था कि उन्होंने विशिष्ट मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित कराया। गांधी जी ने सर्व प्रथम चम्पारण, खेड़ा और अहमदाबाद के तीन आंदोलनों में सफलता प्राप्त की। इनमें से पहले दो किसान–आंदोलन थे और अंतिम आंदोलन था अहमदाबाद में मिल–कामगारों की हड़ताल।

चम्पारण के किसान उन यूरोपीय उपनिवेशी काश्तकारों के खिलाफ आंदोलन कर रहे थे जो उन्हें नील की खेती करने के लिए मजबूर करते थे। चम्पारण में उपनिवेशी काश्तकारों के खिलाफ पहले से ही विरोध का इतिहास था। किसान नेताओं में से एक राज कुमार शुक्ला अपनी हालत दिखाने के लिए गांधी जी को आमंत्रित करने लखनऊ तक गए।

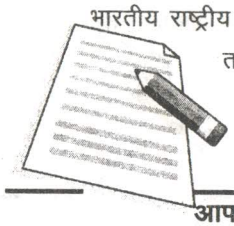

आपकी टिप्पणियाँ

गांधी जी ने 1917 इस मामले में खुली जांच करवाना शुरू की। गांधी जी को चंपारण आने से रोकने का प्रयास करने और बाद में सत्याग्रह की धमकी देने पर उन्हें वहां जाने देने से चंपारण आंदोलन का व्यापक प्रचार हुआ। चम्पारण आंदोलन का परिणाम यह हुआ कि 'तिनकाठिया' प्रणाली को हटा दिया गया, जिसके अंतर्गत किसानों को अपनी अधिकृत जमीन के 3/20 वें हिस्से में नील की खेती करनी पड़ती थी।

जिस दूसरे आंदोलन के साथ गांधी जी ने खुद को जोड़ा, वह था अहमदाबाद के मिल कामगारों का आंदोलन। कामगारों और मालिकों के बीच झगड़े की वजह थी 'प्लेग बोनस' वापस लेना। महामारी समाप्त होने के बाद मिल–मालिकों ने बोनस वापस ले लिया था और कामगार युद्ध के बाद हुई मूल्य–वृद्धि की वजह से बोनस की वापसी का विरोध कर रहे थे। गांधी जी ने कामगार और मालिक दोनों पर दबाव डाला कि वे एक न्यायाधिकरण यानी ट्रिब्यूनल के समक्ष वार्ता करें।

मालिक कुछ कारीगरों द्वारा बुलाई गई हड़ताल का बहाना लेकर अचानक पंच–फैसले से हट गए और घोषणा की कि वे 20% बोनस देने को तैयार हैं और धमकी दी कि जो कामगार भी शीघ्र काम पर वापस नहीं आयेगा, उसे बर्खास्त कर दिया जाएगा। गांधी जी उनके द्वारा करार तोड़े जाने पर बहुत नाराज हुए और उन्होंने कुल उत्पादन की सही लागत, लाभ और जीवन–यापन के खर्च का उपयुक्त अध्ययन करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला था कि वेतन में 35 की वृद्धि करने की कामगारों की मांग न्यायपूर्ण थी। मिल–मालिकों ने साबरमती स्थित उनके आश्रम को खुले दिल से दान दिया था, उनमे से एक अम्बालाल साराभाई जो गांधी जी के परममित्र थे, तथा उनकी बहन अनुसूया बेन अहमदाबाद में मिल कामगारों के संघर्ष में उनके सबसे बड़े समर्थक थे। इस संघर्ष के अंतिम चरण में पहली बार गांधी जी ने विरोध के साधन के रूप में उपवास का इस्तेमाल किया। गांधी जी ने देखा कि कामगार धीरे–धीरे अपना मनोबल खो रहे हैं, इसीलिए उन्होंने उपवास पर जाने का निर्णय लिया। उन्होंने घोषणा की कि यदि भूखों मरने की नौबत आई तो वे ऐसे पहले व्यक्ति होंगे। इसके बाद कारीगरों को 35 प्रतिशत की वृद्धि दिये जाने के समझौते के साथ इस मामले का समाधान हुआ।

तीसरा आंदोलन खेड़ा के किसानों का था, जिनकी फसलों की पैदावार नहीं हो सकी और उन्हें सरकार से जमीनों के लगान की माफी नहीं मिल सकी। सर्वप्रथम इस परिस्थिति की जांच–पड़ताल की गई, जैसा कि गांधी जी के सभी आंदोलनों का सामान्य मानदंड था। उपज की कुल पैदावार का आकलन किया गया और इससे यह पुष्टि हुई कि सामान्य पैदावार से एक तिहाई पैदावार कम हुई है जिसकी वजह से किसान पूरी की पूरी लगान–माफी के हकदार है। गांधी जी ने किसानों को लगान रोकने की सलाह दी। बल्लभ भाई पटेल और इंदुलाल याजनिक ने गांवों में गांधी जी के खेड़ा जिले के दौरों की व्यवस्था करके और किसानों से दृढ़ बने रहने का अनुरोध कर उनकी सहायता की। सरकार किसानों के पशु छीनकर, उनके घरों का सामान जब्त करके, यहां तक कि खड़ी फसलों को छीनकर सख्ती से दमन करना शुरू कर दिया। तभी गांधी जी को पता चला कि सरकार यह निर्देश जारी करके कि केवल उन्हीं लोगों से लगान वसूल किया जाये जो उसे अदा कर सकते हैं, एक समझौता करना चाहती है। गांधी जी ने समृद्ध किसानों से भी भुगतान रोकने का आग्रह किया, ताकि गरीब किसान कहीं घुटने न टेक दें। परन्तु सरकारी निर्देशों की जानकारी मिलने पर गांधी जी ने यह आंदोलन वापस ले लिया।

1916–1917 में हुए चंपारण, अहमदाबाद और खेड़ा आंदोलनों का परिणाम यह हुआ कि गांधी जी अहिंसात्मक सत्याग्रह के अपने तरीके की आजमाइश कर सके। इन आंदोलनों ने परिस्थितियों को परखने में उनकी सहायता की। उन्होंने अपने अनुयायियों के एक ऐसे केन्द्रीय समूह का गठन किया, जो उनकी सहायता कर सके और भावी आंदोलनों में उनके आदेशों का पालन कर सके। इन आंदोलनों में गांधी जी ने स्पष्ट तथा विरोधी हितों, जैसे मिल–मालिकों और कामगारों के बीच, समझौता कराने में अपनी विशिष्ट प्रतिभा दिखाई इनमें से एक से उन्होंने मित्रता निभाई तो उसी के समानान्तर दूसरे वर्ग का भी उन्होंने विश्वास जीता।

गांधी जी के नेतृत्व में दूसरा महत्त्वपूर्ण आंदोलन था रॉलेट सत्याग्रह। फरवरी 1919 में भारतीयों की नागरिक स्वतंत्रता को कठोरता से नियंत्रित करने वाले दो विधेयक पेस किये गए, जिन्हें कानून बनाया जाना था। सरकार ये कानून इसलिए पारित करना चाहती थी, ताकि वह जन–सामान्य के बीच उठने वाले असंतोष की लहर को नियंत्रित करने में समर्थ हो सके। इस कानूनों के बनने से उसे लोगों को बगैर मुकदमा इत्यादि चलाए ही गिरफ्तार करने और सजा देने की निरंकुशता मिल जाती। असल में इनमें से एक विधेयक को चुने गए भारतीय सदस्यों के विरोध के बावजूद कौंसिल में पास करके कानून बना दिया गया था। स्वतंत्रता पर इस प्रकार के प्रतिबंधों को लोग युद्ध के दौरान शायद स्वीकार कर भी लेते। परन्तु युद्ध के समापन ने और अधिक संवैधानिक सुधारों और संपूर्ण स्व–शासन नहीं तो कम से कम अपने निजी मामलों में भारतीयों के अपने अधिकाधिक नियंत्रण की उम्मीद तो जगा ही दी थी।

कौंसिल के सदस्यों और अन्य लोगों के विरोधों की विफलता को देखने के बाद गांधी जी ने 'सत्याग्रह' शुरू कर दिया। एक 'सत्याग्रह सभा' का गठन किया गया, जिसके बहुत से सदस्य बन गए थे। यह निर्णय किया गया कि इस अधिनियम का विरोध करने के लिए एक राष्ट्रव्यापी हड़ताल की जाए और उपवास तथा प्रार्थनाए आयोजित की जाए। कुछ कानूनों के विरोध में सविनय अवज्ञा आंदोलन भी चलाए गए। रॉलेट संत्याग्रह, गांधी जी के मार्गदर्शन में चलाया जाने वाला पहला व्यापक अखिल भारतीय विरोध–प्रदर्शन था। भारत के लोगों ने ब्रिटिश शासन के विरूद्ध बहुत बड़ी संख्या में जुड़कर विरोध प्रदर्शित किया और हड़तालें हिंसात्मक हो गईं। 6 अप्रैल 1919 का दिन हड़ताल के लिए निर्धारित किया गया, परन्तु कुछ भ्रम होने के कारण दिल्ली में यह हड़ताल 30 मार्च को की गई और इससे गलियों में लड़ाइयां भड़क उठीं। जबरन भर्ती और बड़े पैमाने पर फैले रोग तथा अन्य कठिनाइयों के कारण पंजाब ने युद्ध के दौरान अत्यन्त कठोर उत्पीड़न का सामना किया था। अमृतसर और लाहौर इस आंदोलन के केन्द्र थे। गांधी जी ने पंजाब जाकर इस आंदोलन को वापस लेने और इसे 'अहिंसक सत्याग्रह' की राह पर ले जाने का प्रयास किया। परन्तु ब्रिटिश सरकार द्वारा गांधी जी को पंजाब में प्रवेश करने से रोक दिया गया और उन्हें बम्बई भेज दिया गया। बम्बई और अहमदाबाद में भी उस समय अशांति चल रही थी और गांधी जी ने यहां भी आंदोलन को नियंत्रित करने का प्रयास किया।

जब पंजाब में दो स्थानीय नेताओं को गिरफ्तार किया गया तो वहां घटनाए शीर्ष पर आ गईं, जिसके परिणामस्वरूप टाउन हॉल और डाक घर पर भी हमला किया गया। राष्ट्रवादी आंदोलन के दौरान विरोध करने का सबसे लोकप्रिय तरीका था, ब्रिटिश सरकार

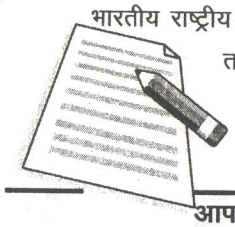

आपकी टिप्पणियाँ

के प्रतीकों पर हमला करना, अतः टेलीग्राफ की तारें काट दी गई, डाक घरों पर धावा बोला गया और महिलाओं सहित यूरोपियनों पर हमले किये गये। सेना बुला ली गई और बैठकें करने और इकट्ठे होने पर रोक लगा दी गई।

13 अप्रैल 1919 को बैसाखी के दिन अमृतसर को जलियावाला बाग में जनरल डायर का आक्रोश देखना पड़ा, जिसे इस शहर का प्रभारी बनाया गया था। सार्वजनिक सभाओं पर प्रतिबंध लगाए जाने के बावजूद लोगों द्वारा इस नियम का उल्लंघन किए जाने से उसने हमला बोल दिया। निहत्थे, असहाय लोगों पर प्रहार किया और उसके आदमियों ने लगातार 10 मिनट तक गोलियां बरसाईं और गोलीबारी तब बंद की, जब उसका बारूद खत्म हो गया।

गोलीबारी से पूर्व कोई चेतावनी नहीं दी गई थी और वहां से बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं था, सिवाय एक तंग गलियारे के, जहां डायर के आदमी अपनी तोपें लगाकर खड़े थे, क्योंकि जलियावाला बाग चारों तरफ से दीवारों से घिरा था। कंजर्बेटिव सरकार के अनुमान के अनुसार इस घटना में 379 लोगों की मृत्यु हुई। इस हिंसक घटना के बाद और अधिक बर्बरता से दमन की घटनाए घटित हुईं।

### पाठगत प्रश्न 21.3

1. 1916–1917 के दौरान गांधी जी ने अपने अहिंसात्मक सत्याग्रह का प्रयोग किस आंदोलन में किया?

   _____

2. रॉलेट सत्याग्रह कब शुरू हुआ?

   _____

3. राष्ट्रीय आंदोलन में 1919 के बैसाखी के दिन का क्या महत्त्व है?

   _____

## 21.6 अहिंसात्मक असहयोग

जलियावाला बाग जनसंहार के बाद पंजाब में मार्शल लॉ लागू कर दिया गया था। भारतीयों के साथ अमानवीय व्यवहार किया गया, उदाहरण के लिए जिन गलियों में यूरोपीयन महिलाओं पर हमला किया गया था, वहां पर आदमियों को पेट के बल घिसटने के लिए बाध्य किया गया। यद्यपि रॉलेट सत्याग्रह को वापस ले लिया गया था, परन्तु ब्रिटिश शासन के विरुद्ध रोष की भावना में और अधिक कड़वाहट भर गई थी। 1919 के मौंटेग्यू चैम्सफोर्ड सुधारों ने उन लोगों की आशाओं को कुंठित कर दिया था, जिन्हे अब भी औपनिवेशिक सरकार की नीयत पर यह विश्वास था कि वह भारतीयों की सरकार में भागीदारी के द्वारा उन्हें सुधार लाने का अवसर देगी।

इस संक्रमण काल में जागरूक मुस्लिम नेताओं का एक बहुत बड़ा वर्ग आगे आया जिनके पास ब्रिटिश सरकार से असंतुष्ट होने का विशेष कारण था। ये मुसलमान प्रथम विश्व युद्ध

के बाद तुर्की के साथ अमानवीय व्यवहार किए जाने से नाराज थे। पूरे विश्व के मुसलमान तुर्की के खलीफा को अपने आध्यात्मिक गुरू की तरह मानते थे और उन्हें यह आश्वासन दिया गया था कि तुर्की और उसके मित्रों की युद्ध में हार के बाद भी खलीफा के साथ नरमी से व्यवहार किया जायेगा। परन्तु युद्ध के उपरांत तुर्की के साथ समझौते में खलीफा की शक्तियों को बुरी तरह खत्म कर दिया गया था।

जलियांवाला बाग त्रासदी के मामले की जांच के लिए सरकार द्वारा नियुक्त हंटर कमेटी से जब अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की तो ये सभी मामले उभरकर सामने आए। इस रिपोर्ट में उन्होंने जनरल डायर के कारनामों और अन्य सभी प्रकार के दमनकारी कृत्यों का समर्थन किया था। इस रिपोर्ट ने सभी भारतीय नेताओं के आक्रोश को बढ़ा दिया और अगले विरोध आंदोलन के लिए यह अवसर बिल्कुल सटीक प्रतीत हुआ। यही समय था जब गांधी जी ने अहिंसात्मक असहयोग आंदोलन का इरादा किया। असहयोग आंदोलन ब्रिटिश शासन के दमन के विरूद्ध भारतीय जनमानस के सभी वर्गों के आक्रोश की अभिव्यक्ति था। गांधी जी ने तीन मुख्य मुद्दों पर आंदोलन शुरू किया (क) खिलाफत की बुराई (ख) पंजाब के साथ अन्याय, और (ग) स्वराज। असहयोग आंदोलन का आह्वान सर्वप्रथम 22–23 नवम्बर 1919 को दिल्ली में अखिल भारतीय खिलाफत कान्फ्रेंस द्वारा किया गया, जो अली भाइयों (मोहम्मद और शौकत) की अगुवाई में शुरू हुआ। इलाहाबाद में हुई खिलाफत कांफ्रेंस की बैठक में चार चरणों के असहयोग की घोषणा की गई ,यानी–सिविल सेवा की उपधियों का बहिष्कार, पुलिस और सेना का बहिष्कार और अंत में करों का भुगतान न करने का निश्चय। तत्पश्चात गांधी जी ने कांग्रेस के सदस्यों से इस आंदोलन का समर्थन करने का आग्रह करना शुरू किया। सितम्बर 1920 में कलकत्ता के ऐतिहासिक विशेष अधिवेशन में कांग्रेस ने उपाधियों को त्यागने, स्कूलों अदालतों और कौंसिलों का बहिष्कार करने और विदेशी सामान का भी बहिष्कार करने का कार्यक्रम बनाया। इस बहिष्कार के साथ–साथ राष्ट्रीय स्कूल खोलने और सरकार की न्यायिक प्रणाली का सहारा लिए बगैर मामलों को सुलझाने के लिए स्वदेशी अदालतें खोलने तथा खादी को अपनाने का निर्णय किया गया। दिसम्बर 1920 की नागपुर कांग्रेस में वरिष्ठ कांग्रेसी बंगाली नेता चितरंजन दास ने इस आंदोलन को अपना समर्थन दिया। यद्यपि औपचारिक रूप से इस आंदोलन की शुरूआत 1 अगस्त 1920 को हुई कांग्रेसी नेताओं के समर्थन ने इसे नई गति दी और जनवरी 1921 से इसने बहुत शक्तिशाली रूप धारण कर लिया। एक महीने की अवधि में बहुत बड़ी संख्या में विद्यार्थियों ने सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों और कॉलेजों को छोड़ दिया और देश के विभिन्न भागों में शुरू की गई राष्ट्रीय संस्थाओं में प्रवेश ले लिया।

अनेक सुस्थापित वकीलों, जैसे सी.आर.दास, मोती लाल नेहरू, सैफुद्दीन किचलू, वल्लभभाई पटेल, सी. राजगोपालाचारी, और आसफ अली इत्यादि ने अपनी–अपनी आकर्षक प्रैक्टिस बंद कर दी। इस त्याग ने लोगों को बहुत प्रेरित किया। विदेशी सामान का बहिष्कार और विदेशी कपड़ा बेचने वाली दुकानों पर धरना इत्यादि देना विरोध करने के अन्य तरीके थे। चरखों का वितरण शुरू हुआ और हाथ से काते गए सूत से बना कपड़ा राष्ट्रवादियों में लोकप्रिय होने लगा। राष्ट्रवादी समाचारों पत्रों में विज्ञापन देकर लोगों को विदेशी सामान की होली जलांने के कार्यक्रम में भाग लेने के

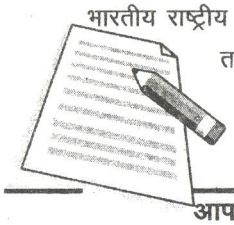

आपकी टिप्पणियाँ

लिए आमंत्रित किया गया। कपड़े के निर्यात के मूल्यों में एकदम गिरावट आ गई। कपड़े की दुकानों के साथ–साथ इस बार पहली बार शराब की दुकानों पर भी धरना दिया गया।

ब्रिटिश सरकार के सामने यह बात चेतावनी के रूप आई कि जुलाई 1921 में मोहम्मद अली ने ब्रिटिश इंडियन आर्मी में काम कर रहे मुस्लमानों से घोषित रूप से अपील की कि उन्हें सोचना चाहिए कि उनका ब्रिटिश सेना का अंग बनना अनैतिक है और उन्हें वहां काम करना बंद कर देना चाहिए। उन्हें तुरंत गिरफ्तार कर लिया गया। इस आह्वान को कांग्रेस और गांधी ने स्वीकार किया। एक घोषणा–पत्र जारी किया गया, जिसमें सभी लोगों (सिविलियन और सैनिक) को ब्रिटिश सेना से सभी संबंध तोड़ने का आह्वान किया गया। इन सभी हालात के दौरान नवम्बर 1921 में प्रिंस ऑफ वेल्स् भारत आए और बम्बई में जहां वे आए थे और शेष सारे देश में भी, उनका स्वागत हड़ताल से किया गया। गांधी जी ने प्रिंस ऑफ वेल्स् के आगमन के दिन एक बहुत बड़ी बैठक को संबोधित किया ब्रिटिश–विरोधी भावना इतनी प्रबल थी कि जब बैठक स्थल से जाते समय लोगों का उन लोगों से सामना हुआ जो प्रिंस के स्वागत के जुलूस में गए थे तो दंगों जैसी परिस्थिति पैदा हो गई। इस तनाव को कम करने के लिए गांधी जी को चार दिन के उपवास पर जाना पड़ा।

असहयोग आंदोलन धीरे–धीरे शक्तिशाली होता जा रहा था। बंगाल के मिदनापुर जिले में यूनियन बोर्ड के करों के खिलाफ एक आंदोलन आयोजित किया गया और आन्ध्र प्रदेश में भी कोई टैक्स नहीं आंदोलन आयोजित किया गया। गांधी जी की योजना के तहत करों का भुगतान करने से बिलकुल मना करने का सहारा बिल्कुल अंत में करना था और यही इस आंदोलन का सबसे मौलिक चरण था। उत्तर प्रदेश के अवध क्षेत्र में किसान आंदोलन किसान–सभाओं के जरिए जोर पकड़ रहा था जो और अधिक व्यवस्थित रूप लेती जा रही थीं और ब्रिटिश शासन के लिए एक बड़ा खतरा थीं।

औपनिवेशिक सरकार का रूख और अधिक सख्त होता जा रहा था। कपड़े के निर्यात में आई कमी; विद्यार्थियों, वकीलों, सरकारी कर्मचारियों, कामगारों, किसानों, खेतिहार मजदूरों द्वारा दर्शाए गए विरोध और सेना को प्रभावित करने के प्रयासों के परिणामस्वरूप इस आंदोलन के विरुद्ध दमनकारी उपाय अपनाने के तरीकों में वृद्धि हो गई थी। सार्वजनिक बैठकों और सभाओं पर रोक लगा दी गई, समाचार–पत्रों का दमन किया गया, और कांग्रेस और खिलाफत के कार्यालयों पर आधी रात को छापे मारे गए। गांधी जी के मार्ग दर्शन में कांग्रेस बारदोली में सिविल सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू करने का कार्यक्रम बना रही थी। परन्तु उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले में चौरी चौरा स्थान पर हिंसात्मक घटना होने की वजह से इस आंदोलन को समाप्त कर दिया गया। पुलिस द्वारा विरोध किए जाने पर खिलाफत और कांग्रेस का जुलूस हिंसक हो उठा और उन्होंने पुलिस पर हमला कर दिया। पुलिस के लोगों ने थाने में शरण लेने की कोशिश की, परन्तु भड़की हुई भीड़ ने थाने में आग लगा दी और जो पुलिस वाले आग से बचने के लिए बाहर भागे, उन्हें घसीटकर मौत के घाट उतार दिया गया। पुलिस के बाईस आदमी मारे गए। यह घटना 5 फरवरी को घटी और 12 तारीख को गांधी जी ने असहयोग आंदोलन वापस ले लिया। इस वापसी ने प्रमाणित कर दिया कि इस स्थिति

में गांधी जी किसी भी ऐसे आंदोलन का नेतृत्व नहीं करना चाहते थे जिसे वे नियंत्रित न कर सकें और यह भी प्रमाणित हो गया कि राष्ट्रवादी गांधी जी के इस आह्वान को स्वीकार करेंगे, यद्यपि अनेक लोगों का मत इससे भिन्न था, पर इसके बावजूद किसी ने भी आंदोलन की वापसी के उनके आह्वान के विरोध के बारे में नहीं सोचा।

कांग्रेस पार्टी के भीतर ही उन लोगों की राय में मतभेद था जो शीघ्र होने वाले चुनावों के जरिए विधान परिषद में प्रवेश करना चाहते थे, और वे जो गांधी जी द्वारा बताए गए रचनात्मक कार्यों को गांवों में जाकर अंजाम देना चाहते थे और संघर्ष के अगले चरण की तैयारी कर रहे थे। राजगोपालाचारी, अंसारी और कुछ अन्य व्यक्तियों ने ग्रामीण रचनात्मक कार्य की वकालत की, जबकि मोतीलाल नेहरू, विट्ठलभाई पटेल और हकीम अजमल खान परिषदों में प्रवेश पाना चाहते थे और उनकी प्रणाली में रुकावटें डालकर सरकार के कामकाज को तहस–नहस करना चाहते थे। राजेन्द्र प्रसाद और बल्लभभाई पटेल ने पहेल मत का समर्थन किया, जबकि सी.आर.दास दूसरे मत का ही समर्थन करते रहे। दास और मोतीलाल नेहरू ने चुनाव लड़ने के लिए 1923 में स्वराज पार्टी की स्थापना की। अ–परिवर्तनशील (नो–चेंजर्स) कहे जाने वाले गांधी जी के अनुयायियों के एक समूह को 1924 में गांधी जी के जेल से छूटने पर अधिकाधिक समर्थन मिला तथापि कांग्रेसियों को चुनावों में खड़े होने से नहीं रोका जा सका, यद्यपि उन्होंने रचनात्मक कार्य के महत्त्व को भी स्वीकार किया। कांग्रेसी प्रत्याशियों ने नवम्बर 1924 में हुए चुनावों में केन्द्रीय प्रांतों और बंगाल में कुछ सीटों पर जीत हासिल की। कौंसिलों की प्रक्रिया को तोड़ने के प्रारंभिक प्रयास शुरू हो गए थे, परन्तु जिस भी विनियम को सदस्य, पास नहीं होने देते थे, उसे गवर्नर द्वारा सौंपी गई विशिष्ट शक्तियों से पारित करा लिया जाता था, जिससे दोहरे शासन की सीमाओं का पता चलता था। शीघ्र ही चुने गए सदस्य अपनी दिशा खोने लगे और धीरे–धीरे प्रणाली में समाहित होने शुरू हो गए। बंगाल में सी.आर. दास का अचानक देहांत होने से वहां नेतृत्व की समस्या खड़ी हो गई। राजनीतिक अनिश्चितताओं और 'मुख्यधारा' के कांग्रेसियों की आंदोलन संबंधी गतिविधियों में कुछ मंदी आने की परिस्थिति में राष्ट्रवादी आंदोलन में से क्रांतिकारी आंदोलन के द्वितीय चरण में और अधिक मौलिकतावादी सक्रिय वर्ग का उदय हुआ।

## 21.7 क्रांतिकारी आंदोलन : पुनर्गठन और पुनःस्थापना

असहयोग आंदोलन की स्वाभाविक लहर ने भारतीय युवा शक्ति के एक ऐसे वर्ग को सामने ला खड़ा किया, जो स्वतंत्रता पाने के लिए दृढ़–संकल्प थे। देश के युवा वर्ग ने गांधी जी के आह्वान का बहुत उत्सुकता से प्रत्युत्तर दिया और उनके असहयोग आंदोलन में भाग लिया। आंदोलन को अचानक वापस लेना उनकी आकांक्षाओं पर एक आघात था। क्रांतिकारी आंदोलन के पहले चरण की गुप्त समितियों को पंजाब और बंगाल में पुनः स्थापित करना शुरू कर दिया गया था।

बंगाल की अनुशीलन समिति का संबंध सुभाष बोस से और युगांतर समिति का जे.एम. सेन गुप्ता समूह से था। इन दोनों समूहों में अत्यधिक राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता थी। कुछ छोटे क्रांतिकारी समूह बनने शुरू हो गए थे जैसे चिटगांव के सूर्य सेन के अधीन गठित एक समूह, जो अत्यधिक मौलिक विचारधारा के रूप में विकसित हुआ, उस समय की सबसे उल्लेखनीय क्रांतिकारी गतिविधि थी।

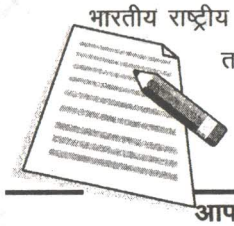

आपकी टिप्पणियाँ

जनवरी 1924 में गोपीनाथ साहा द्वारा डे नामक एक अंग्रेज की हत्या की गई। साहा ने कलकत्ता के पुलिस कमिश्नर टिगर्ब की हत्या की योजना बनाई थी और गलती से उसने डे की हत्या कर दी। इस घटना के परिणामस्वरूप अनेक राष्ट्रवादियों को गिरफ्तार कर लिया गया।

क्रांतिकारी घटनाओं में वृद्धि का एक अन्य केन्द्र था उत्तर भारत जहाँ संयुक्त प्रांत में सचिन सान्याल और जोगेश चटर्जी तथा अन्यों लोगों ने हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन का गठन किया और डकैतियों के जरिए धन इकट्ठा करना शुरू कर दिया। इनमें से सबसे प्रसिद्ध घटना है अगस्त 1925 में हुई काकोर ट्रेन डकैती, जिसके परिणामस्वरूप इस संगठन के अनेक सदस्यों गिरफ्तारी की गई। इस संगठन ने पंजाब के एक अत्यन्त ऊर्जावान और प्रतिभाशाली विद्यार्थी नेता भगत सिंह के नेतृत्व में गठित युवकों के एक समूह से भी संबंध स्थापित किए। पंजाब का यह समूह समाजवादी विचारधारा से अत्यन्त प्रभावित था अतः इस संगठन को हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन (एच एस आर ए) का नया नाम दिया गया। क्रांतिकारियों का उद्देश्य था संपूर्ण स्वतंत्रता, और उनके पास यह संकल्पना भी थी कि स्वतंत्रता मिलने के उपरांत राज्य का स्वरूप कैसा होगा। उन्होंने एक व्यापक जन–संघर्ष शुरू किया और इस प्रयोजन के लिए उन्होंने विद्यार्थियों, कामगारों और किसानों को सक्रिय किया।

## 21.8 साइमन कमीशन का बहिष्कार

क्रांतिकारी आंदोलन के पुनर्गठन और पुनरुज्जीवन के बीच और मुख्यधारा के आंदोलन के दमन के बाद भारत में और अधिक संवैधानिक सुधारों लाने के लिए साइमन कमीशन के गठन की घोषणा की गई। सभी गोरे लोगों के इस कमीशन में एक भी भारतीय शामिल नहीं था, जिससे स्पष्ट था कि आने वाले सुधार, अगर कोई होंगे, तो भी भारतीय लोगों की अपेक्षाओं को पूरा नहीं कर पायेंगे।

दोहरा शासन पहले ही एक मजाक बनकर रह गया था क्योंकि इसकी वजह से सभी मुख्य निर्णय लेने की शक्ति अभी भी दृढ़ता से औपनिवेशिक सरकार के हाथों में ही थी। सभी गोरों वाले साइमन कमीशन की घोषणा से एक व्यापक असंतोष फैल गया था और इसने राष्ट्रवादी आंदोलन की आग को और भड़का दिया था। भारत में हर मत के राजनीतिज्ञों ने एकमत से कमीशन की निंदा की क्योंकि इसमें भारत के किसी एक भी सदस्य को शामिल नहीं किया गया था।

कमीशन के लिए भारत की प्रतिक्रिया थी, प्रत्येक मत के मानने वाले नेताओं द्वारा एकमत से बहिष्कार का संकल्प लेना। जिस दिन कमीशन के सदस्य भारत में उतरे (3 फरवरी 1928) उस दिन हर मुख्य शहर और कस्बे में एक दिन की हड़ताल की गई। कमीशन के खिलाफ बड़े–बड़े जन–प्रदर्शन और जुलसू निकाले गए। बैनरों, इश्तिहारों और यहाँ तक कि पतंगों पर भी 'साइमन वापस जाओ छपा हुआ था। जहां पर भी कमीशन गया, हर जगह उसे काले झंडे दिखाए गए। कहने की आवश्यकता नहीं कि पुलिस ने बड़ी सख्ती और बर्बरता से दमन किया और जुलूसों पर धावा बोला गया और यहां तक कि अत्यन्त प्रमुख नेताओं को भी नहीं बख्शा गया। सबसे घातक हमला लाला लाजपत राय पर किया गया, जो लाहौर में इस युग के बहुत ही प्रतिभाशाली नेताओं में से एक थे। वृद्ध हो चुके इस नेता को लाठियों से पीटा गया और इस हमले के कुछ दिन बाद ही उनका

देहांत हो गया। लाला लाजपत राय की मृत्यु ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध एक व्यापक विक्षोभ पैदा कर दिया था। इस अवधि के दौरान कांग्रेस के बीच हुआ एक महत्त्वपूर्ण विकास था पूर्ण स्वराज या पूर्ण स्वतंत्रता का लक्ष्य अपनाना। पूर्ण स्वतंत्रता का अभिप्राय था ब्रिटिशों के साथ संबंधों से पूरी तरह छुटकारा।

पूर्ण स्वराज की शपथ लेने के परिणामस्वरूप देश में बहुत सी उम्मीदें जाग उठीं और 26 जनवरी 1930 को पूरे देश में इसी प्रकार की स्वतंत्रता की शपथ ली गई। देश में एक असंतोष पनप रहा था, जिसका प्रमाण था बम्बई–नागपुर क्षेत्र में कम्युनिस्टों द्वारा बुलाई गई रेलवे–हड़ताल, कांग्रेसियों के नेतृत्व में चलाया जा रहा आंदोलन जो सविनय अवज्ञा आंदोलन की तैयारी के लिए था, जिसका चरम रूप था करों का भुगतान न करना। कांग्रेस के विधायकों को अनुदेश जारी किए गए कि वे संघर्ष के अगले दौर की तैयारी के लिए त्याग पत्र दे दें। गांधी जी ने 31 जनवरी को वायसराय इरविन को अंतिम चेतावनी देकर इसकी शुरूआत की, जिसमें पूर्ण स्वतंत्रता या पूर्ण स्वराज का उल्लेख नहीं था। उसमें उल्लिखित ग्यारह सूत्र वास्तव में औपनिवेशिक सरकार से इस राष्ट्र द्वारा की गई विशिष्ट मांगों का एक समूह था। इन मांगों में से एक मांग थी नमक के कर को हटाना और नमक के उत्पादन से सरकार के एकाधिकार को समाप्त करना। इन मांगों में भूमि के राजस्व में पचास प्रतिशत की कमी, कपड़ा–मिलों की सुरक्षा, सेना के खर्चों और सिविल सेवा के वेतनों इत्यादि में पचास प्रतिशत की कमी करना शामिल था।

### पाठगत प्रश्न 21.4

1. किन विशिष्ट मुद्दों पर असहयोग आंदोलन की शुरूआत हुई थी?

   _____

2. स्वराज पार्टी की स्थापना कब और किसके द्वारा हुई?

   _____

3. एच.एस.आर.ए. का पूर्ण रूप बताएं।

   _____

## 21.9. सविनय अवज्ञा आंदोलन

ग्यारह सूत्रीय चेतावनी की कोई प्रतिक्रिया न होने के कारण नमक के मुद्दे पर आधारित सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू किया गया। नमक मूलभूत आवश्यकता की ऐसी वस्तु थी, जिस पर कर लगाने का प्रभाव गरीब से गरीब तबके पर भी पड़ता था, अतः इस प्रकार नमक भारतीय लोगों को वंचित किए जाने और उनके दमन का प्रतीक बन गया। जनसाधारण और राष्ट्रवादी नेता दोनों ने इस मुद्दे को महत्त्व देना शुरू कर दिया। 12 मार्च 1930 को गांधी जी ने अपने साबरमती आश्रम से अपने 72 अनुयायियों को साथ लेकर समुद्र तक डांडी मार्च शुरू किया। डांडी मार्च के पक्ष में लोगों की बहुत बड़ी प्रतिक्रिया हुई। लोगों की बहुत बड़ी भीड़ ने रास्ते में इस मार्च का स्वागत किया और अंत

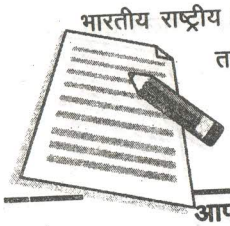

आपकी टिप्पणियाँ

तक साथ दिया। गांधी जी के प्रति एकता की भावना प्रदर्शित करने के लिए ग्रामीणों ने उन जगहों पर सूत काता जहां–जहां से गाधी जी गुजरे। 6 अप्रैल को गांधी जी समुद्र तट पर पहुंचे और वहां से एक मुट्ठी नमक उठाकर अखिल भारतीय स्तर पर डांडी के नमक का कानून तोड़कर सविनय अवज्ञा आंदोलन की शुरूआत की। संपूर्ण भारत में लोगों ने गैर–कानूनी तौर पर नमक का निर्माण शुरू कर दिया। बड़ी सावधानी के साथ योजनाबद्ध तरीके से और बड़ी संख्या में स्वयंसेवकों का चुनाव करके इस आंदोलन को एक भाग से दूसरे भाग में, मद्रास से महाराष्ट्र तक और बंगाल, असम से कराची तक फैलाया गया। सुदूर उत्तर में पेशावर में बहुत बड़े स्तर पर प्रदर्शन किया गया, जहां खान अब्दुल गफ्फार और उनके अनुयायी खुदाई खिदमतगार या कहें लाल कमीज (रेड शर्ट्स) सक्रिय थे और पिछले कुछ वर्षों से वहां रचनात्मक कार्य कर रहे थे। इसकी बहुत ही अच्छी प्रतिक्रिया देखने में आई थी। कम से कम एक सप्ताह तक परिस्थिति पूरी तरह जनता के हाथ में थी और गढ़वाली रेजिमेंट के सैनिकों ने निहत्थी भीड़ पर गोली चलाने से इंकार कर दिया था। 14 अप्रैल को नेहरू जी की गिरफ्तारी पर मद्रास, कलकत्ता और कराची में सार्वजनिक विरोध प्रदर्शन किए गए। औपनिवेशिक सरकार बहुत अनिश्चय की स्थिति में थी, क्योंकि उसने कभी भी यह आशा नहीं की थी कि नमक सत्याग्रह इस हद तक भड़क जाएगा। अंत में उसने कार्रवाई करने का निर्णय किया और मई में गांधी जी को गिरफ्तार कर लिया गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि आंदोलन और अधिक भड़क गया। सविनय अवज्ञा आंदोलन का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू यह था युवकों, खासतौर पर विद्यार्थियों और महिलाओं की भी इसमें भागीदारी थी। महिलाओं ने शराब और विदेशी सामान बेचने वाली दुकानों पर धरने दिए।

सरकार ने लोगों की नागरिक स्वतंत्रताओं को कम करने के लिए अध्यादेश जारी करने और प्रांतों में सिविल अवज्ञा संगठनों पर रोक लगानी शुरू कर दी। जून में कांग्रेस कार्य–समिति पर रोक लगा दी गई और कांग्रेस के अध्यक्ष मोतीलाल नेहरू को गिरफ्तार कर लिया गया। अगस्त आते–आते स्थानीय कांग्रेस समितियों पर भी रोक लगा दी गई थीं। अनेक स्थानीय मुद्दे भी सिविल अवज्ञा आंदोलन का हिस्सा बन गए थे।

सरकारी दमन और आंदोलन के और अधिक गहन होने के बीच साइमन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित की गई, जिसमें ऐसा कोई संकेत नहीं था कि भारत को स्वतंत्र उपनिवेश का दर्जा दिया जा सकता है। इसका परिणाम यह हुआ कि अत्यधिक नरमपंथी भारतीय राजनीतिज्ञ भी ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध हो गए। इस पर वाइसराय ने गोलमेज सम्मेलन का निमंत्रण भेजा और स्वतंत्र उपनिवेश की हैसियत देने के इरादे पर चर्चा करने की बात कही। मोतीलाल और जवाहर लाल नेहरू को इस प्रस्ताव पर चर्चा करने के लिए गांधी जी के पास ले जाया गया। परन्तु कांग्रेस और सरकार किसी भी परिणाम तक नहीं पहुंच सकीं। पहला गोलमेज सम्मेलन नवंबर, 1930 में लंदन में भारतीय नेताओं और ब्रिटिशों के बीच बुलाया गया, परन्तु उसमें कांग्रेस का कोई प्रतिनिधि नहीं था। परंतु यह स्पष्ट था कि ब्रिटिश और भारतीय नेताओं में परस्पर बराबरी के किसी भी वार्तालाप में कांग्रेस की अनुपस्थिति से कोई परिणाम नहीं निकलेगा। अगला सम्मेलन अगले वर्ष बुलाए जाने का निश्चय किया गया। सरकार ने 25 जनवरी, 1931 को गांधी जी को मुक्त कर दिया और कांग्रेस कार्य–समिति के

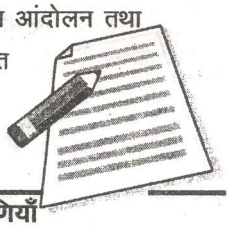

आपकी टिप्पणियाँ

सभी सदस्यों को भी बिना किसी शर्त के छोड़ दिया। कांग्रेस से आग्रह किया गया कि वह अगले गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए वाइसराय के प्रस्ताव पर विचार–विमर्श करे।

प्रथम गोलमेज सम्मेलन के प्रतिनिधियों के साथ लंबे वार्तालाप और विचार–विमर्श के बाद कांग्रेस ने गांधी जी को वाइसराय से वार्तालाप करने का काम सौंपा। गांधी और इरविन के बीच करीब पंद्रह दिन तक विचार–विमर्श हुआ। अंत में 5 मार्च, 1931 को गांधी इरविन समझौते पर हस्ताक्षर किए गए। इस समझौते की शर्तें निम्नलिखित थीं :

(क) अहिंसात्मक प्रतिरोध में गिरफ्तार किए गए सभी लोगों को तत्काल मुक्त किया जाएगा।

(ख) जो जुर्माने अभी तक वसूल नहीं किए गए थे, उन्हें माफ कर दिया जाएगा।

(ग) अधिग्रहण की गई वह सारी भूमि, जिसे अभी बेचा नहीं गया है, किसानों को लौटा दी जाएंगी।

(घ) जिन सरकारी कर्मचारियों ने त्याग–पत्र दे दिया था, उनके साथ नम्रता का व्यवहार किया जाएगा।

(ड) तटवर्ती गांवों को अपने उपयोग के लिए नमक बनाने का अधिकार दिया जाएगा।

(च) शांतिपूर्ण और गैर–आक्रामक धरने का अधिकार दिया जाएगा।

कांग्रेस ने अपनी ओर से सविनय अवज्ञा आंदोलन को वापस लेने की सहमति दे दी और अगले गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए भी सहमति प्रदान कर दी। अनेक राष्ट्रवादी नेताओं ने इस समझौते को अस्थायी विराम–संधि ही समझा। परन्तु बहुत से नेता इस समझौते की अनिवार्यता से सहमत नहीं थे। इससे क्रांतिकारी गुप्त समितियों की नई गतिविधियों और अधिकाधिक मौलिकतावादी कम्युनिस्ट आंदोलनों में और तेजी आई। भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरू को इसी समय फांसी दी गई थी, क्योंकि कम्युनिस्ट आंदोलन पूरे देश में फैल चुका था।

मार्च, 1931 में आयोजित कराची अधिवेशन में कांग्रेस ने 'पूर्ण स्वराज' के लक्ष्य को दोहराने के साथ ही दिल्ली में हुए गांधी–इरविन समझौते का भी समर्थन किया। यद्यपि दिल्ली समझौते में स्वतंत्रता का कोई जिक्र नहीं था, फिर भी कराची में कांग्रेस भारत के संविधान की रचना की तैयारी कर रही थी और उसने मौलिक अधिकारों और एक राष्ट्रीय आर्थिक नीति बनाने के संबंध में भी संकल्प लिए। यह संकल्प हमारे संवैधानिक इतिहास का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण पड़ाव था, जहां नागरिक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, प्रेस की स्वतंत्रता और संघ बनाने की आजादी की रूपरेखा बनाई गई। धार्मिक मामलों में तटस्थता, कानून के समक्ष समानता, सभी वयस्कों को मत देने का समान अधिकार, निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा और अनेक अन्य प्रावधान स्वतंत्र भारत के संवैधानिक प्रावधानों की पूर्व कल्पना थे।

गांधी जी, अगस्त 1931 में द्वितीय गोलमेज सम्मेलन के लिए रवाना हुए। इस दौरान ब्रिटिश सरकार ने ब्रिटेन और भारत दोनों जगह बहुत सख्त कदम उठाये। इरविन के स्थान पर विलिंगटन आ गए और होम गवर्नमेंट के हितकारी व्यवहार में भी परिवर्तन आ

आपकी टिप्पणियाँ

गया। इसके परिणामस्वरूप गांधी जी को गोलमेज सम्मेलन के विचार–विमर्श के दौरान न सिर्फ कुछ हासिल नहीं हुआ, अपितु दिसम्बर 1931 में वापस लौटते पर उन्होंने पाया कि नए वाइसराय उनसे मिलने के भी इच्छुक नहीं हैं। इससे ऐसे लगता था कि शायद औपनिवेशिक सरकार कांग्रेस को अपने बराबर करने पर अफसोस कर रही थी। हैसियत की मानकर उसके साथ समझौता सरकार ने जवाहरलाल नेहरू को गिरफ्तार कर लिया था और उत्तर पश्चिमी सीमांत प्रांत में खुदाई खिदमतगारों के नेता अब्दुल गफ्फार खान को गिरफ्तार करके उनके आंदोलन को बुरी तरह कुचल दिया था।

*मानचित्र 21.1 भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य घटनाओं के स्थल*

इन परिस्थितियों में कांग्रेस ने पुनः सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू करने का निर्णय लिया और उसी दिन गांधी जी ने शांति–वार्ता के लिए वाइसराय से मिलने का अनुरोध किया, परन्तु उसने मिलने से इनकार कर दिया। इसके पश्चात औपनिवेशिक सरकार ने सख्त आक्रामक कदम उठाये, जिनमें से पहला कदम था जनवरी के प्रारंभ में गांधीजी को गिरफ्तार करना और लोगों के नागरिक अधिकारों को बिल्कुल खत्म कर देना। उसके बाद सरकार ने जायदाद जब्त करने और लोगों को नजरबंद रखने का अधिकार प्राप्त कर लिया। इस अधिकार के प्राप्त करने के बाद सरकार ने कांग्रेस के सभी प्रमुख नेताओं को जेल में बंद कर दिया।

लोगों में इसकी बहुत भारी प्रतिक्रिया हुई। व्यापक जन–प्रदर्शन हुए। शराब की दुकानों और विदेशी सामान बेचने वाली दुकानों पर धरने दिये गये, बहुत बड़े पैमाने पर गैर–कानूनी वसूली इत्यादि की घटनाएं हुई और इनका सरकार ने बड़ी सख्ती से दमन किया क्योंकि सरकार राष्ट्रवादियों के साथ किसी प्रकार के समझौते के लिए तैयार नहीं थी। जेल पूरी तरह भर गईं थीं, कांग्रेस पर पूरी तरह रोक लगा दी गई थी, गांधी जी के आश्रमों पर पुलिस ने कब्जा कर लिया था, जुलूसों में लोगों को पीटकर भगा दिया जाता था, जो लोग कर का भुगतान करने से मना करते थे उन्हें पीटा और जेल भेज दिया जाता था, और उनकी सम्पत्ति को हड़प लिया जाता था। पूरे देश में अधिकांश नेता जेल में थे और सरकार के क्रूरतापूर्ण व्यवहार और अपमान के बावजूद लोगों ने अपने प्रयासों से दो वर्ष से अधिक समय तक इस सविनय अवज्ञा आंदोलन को जारी रखने का प्रयास किया। इस आंदोलन ने यह प्रमाणित कर दिया कि भारत के आम आदमी का मनोबल कितना मजबूत है और राष्ट्रवादी नेता के रूप में गांधी जी का नेतृत्व कितना सशक्त है। यहां तक कि इस स्थिति में भी नेताओं के अभाव और उनकी राय में अंतर के बावजूद लोगों ने आंदोलन जारी रखने के उनके निर्णय का पालन किया।

## 21.10 मौलिकतावादी और क्रांतिकारी आदोलनों में वृद्धि और वामपंथियों का उद्‌भव

1930 से 1934 के वर्षों के दौरान भी अनेक अभूतपूर्व क्रांतिकारी आतंकवाद के कार्यों की बाढ़ सी आ गई थी, जिनका केन्द्र था बंगाल और पंजाब। सन् 1931 के दौरान कुल 92 घटनाओं की रिपोर्ट मिली, जिनमें से 9 घटनाएं हत्याओं की थीं, उनमें से उल्लेखनीय घटना थी चटगांव के के शस्त्रागार पर धावा। चटगांव में सूर्य सेन के नेतृत्व में क्रांतिकारियों के एक समूह ने स्थानीय शस्त्रागार पर कब्जा कर लिया और इंडियन रिपब्लिकन आर्मी के नाम पर स्वतंत्रता की घोषणा कर दी और गांवों की पहाड़ियों में कई दिनों तक ब्रिटिशों के साथ बहादुरी से युद्ध किया। औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा क्रूरता से दमन के बावजूद क्रांतिकारी घटनाओं की संख्या में बढ़ोत्तरी होती गई। पंजाब में एच. एस.आई.ए भी बहुत सक्रिय हो गई थी, जहां पर सिर्फ 1930 के दौरान 26 घटनाएं घटित होने की रिपोर्ट मिली।

स्वतंत्रता–संघर्ष कभी भी गांधीवादी सत्याग्रह के एक ही मार्ग तक सीमित नहीं रहा। इसमें अत्यन्त हिंसक और उग्रवादी क्रांतिकारी आंदोलन और रूसी क्रांति के बाद भारत में आई समाजवादी विचारधारा भी शामिल थी और इसमें सैनिक आंदोलन भी शामिल थे। आंदोलन की ये भिन्न–भिन्न धारायें किसी भी तरह से पृथक नहीं थीं। अधिकांश

क्रांतिकारियों ने गांधी जी के असहयोग आंदोलन में भाग लिया था। असल में चटगांव शस्त्रागार पर कब्जा इसी शोर–शराबे में किया गया था कि 'गांधी राज आ गया है।' चन्द्रशेखर आजाद और भगतसिंह के क्रांतिकारी दलों ने समाजवाद को अपना लिया था, जैसा कि जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचंद्र बोस के अधीन कुछ वर्गों ने किया था।

समाजवाद ने व्यवस्थित जन–आंदोलनों के जरिए सामाजिक समानता के बहुत स्पष्ट एजेंडे के साथ आजादी के संघर्ष को जोड़ दिया था, जिससे कामगार वर्ग को गतिशील करने में सहायता मिली। एम.एन रॉय जैसे प्रमुख लोगों ने भारत में कम्युनिस्ट आंदोलन के सिद्धांत की शुरूआत करने की रूपरेखा बनाई, जिसने भारतीय संदर्भ में मार्क्सवाद और लेनिन के विचारों के उचित समायोजन की व्याख्या की। सात भारतीयों ने जिनमें रॉय भी शामिल थे, अक्तूबर 1920 में ताशकंद में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की नींव रखी। धीरे–धीरे अनेक भारतीय बुद्धिजीवियों के बीच और यहां तक कि कांग्रेस के सदस्यों में भी साम्यवाद के सिद्धांत को समर्थन मिलने लगा। सुभाष चन्द्र बोस एक अद्वितीय व्यक्तित्व के धनी थे और अनेक विचाराधाराओं (सिद्धांतों) से प्रभावित थे। सरकारी पदों को छोड़कर असहयोग आंदोलन से लेकर, क्रांतिकारियों के अतिवाद तक, समाजवादी विचारों की भावना को समर्थन देने के साथ–साथ अंत में सैनिक आक्रमण करने के साहसिक कदम का चुनाव करके वे राष्ट्रवादी आंदोलन की भावना का प्रतीक बनकर उभरे। बोस ने इन सभी विभिन्न युद्धनीतियों को लक्ष्य बनाकर यह प्रमाणित कर दिया कि राष्ट्रवादी आंदोलनों के बीच स्वतंत्रता प्राप्ति की विभिन्न संकल्पनाओं के अतिरिक्त और कोई मौलिक नहीं था।

## 21.11 संवैधानिक सुधार और विधान मंडल में कांग्रेस की भागीदारी

सन् 1935 में भारत सरकार अधिनियम पारित किया गया, जिसमें प्रांतों के विधान मंडलों के चुने गए सदस्यों को अधिक स्वायत्तताः देकर राष्ट्रवादी आंदोलनों को कुछ और रियायतें दी गई। इस अधिनियम द्वारा भारत के और अधिक लोगों को मतदान का अधिकार भी प्रदान किया गया। 1935 का अधिनियम लागू किए जाने के बाद ब्रिटिशों ने 1937 के प्रारंभ में प्रांतीय विधान मंडलों में चुनाव कराने की घोषणा की। कांग्रेस के भीतर दुविधा के समाधान के बाद उसने चुनाव–प्रक्रिया में भाग लिया और इसके बहुत ही अच्छे परिणाम आये। ग्यारह में से पांच प्रांतों में कांग्रेस को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ। इस जीत ने स्वतंत्रता–आंदोलन से जुड़े विद्यार्थियों, किसानों और कामगार वर्गों को अत्यन्त प्रोत्साहित किया। उन सभी ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई और सभी वर्गों में यहां तक कि राजसी राज्यों में भी, जो कि औपनिवेशिक राज्यों के पूर्ण नियंत्रण से बाहर थे, आंदोलन शुरू हो गए।

## 21.12 स्वतंत्रता की ओर

विविध प्रांतों में दो वर्ष तक कांग्रेसी सरकारें रहीं और उन्होंने सामान्य जनमानस के विभिन्न वर्गों के हितों के लिए अनेक कदम उठाये। कांग्रेस सरकारों द्वारा उठाये गए कुछ कदम थे किसानों के लिए किरायों में कमी, राजनीतिक कैदियों की रिहाई और प्रेस पर से प्रतिबंध उठाना। इन सबसे बढ़कर बात यह थी कि इससे यह संकेत मिला कि भारतीय लोग स्वयं पर शासन करने में सक्षम हैं। 1939 के अंत तक सभी कांग्रेसियों ने त्यागपत्र

दे दिये। 1938 में द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू हो चुका था और वाइसराय ने भारत की ओर से यह इकतरफा घोषणा कर दी थी कि भारत ब्रिटिश उपनिवेश होने के नाते युद्ध में ब्रिटेन की ओर से भाग ले रहा है। इस निर्णय के विरोध स्वरूप कांग्रेस हाईकमान ने यह अनुदेश जारी किए कि सभी कांग्रेसी त्याग–पत्र दे दें।

कांग्रेसी मंत्रियों के त्याग–पत्र के साथ ही राष्ट्रीय आंदोलन का एक महत्त्वपूर्ण चरण समाप्त हो गया। असहयोग और सविनय अवज्ञा आंदोलन के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आंदोलन नए क्षेत्रों और वर्गों तक पहुंच गया था। इससे लोगों के दिलो–दिमाग से ब्रिटिश नियंत्रण कम होने लगा था। कांग्रेस द्वारा सरकार को प्रभावशाली ढंग से चलाने से प्रमाणित हो गया था कि आगे चलकर ब्रिटिशों का नियंत्रण और कम हो सकता है।

द्वितीय विश्व युद्ध ने ब्रिटिशों के लिए और नई मुसीबतें पैदा कर दीं। युद्ध के कारण सैनिकों के लिये कपड़े और भोजन जैसी भिन्न उपभोक्ता–वस्तुओं की नई मांग पैदा हो गई थी। इन मांगो को समाज से जबरदस्ती छीना झपटी से ही पूरा किया जा सकता था। इससे ब्रिटिशों के विरुद्ध आक्रोश में और वृद्धि हो गई और उनके समर्थन की बुनियाद और कमज़ोर होने लगी। उदाहरणतया, युद्ध की जरुरतों को पूरा करने के लिये बहुत बड़ी मात्रा में खाद्य पदार्थों को बंगाल से बाहर लेकर जाना पड़ा। इसके परिणामस्वरुप बंगाल में भीषण अकाल पड़ गया और भूख की वजह से लगभग तीस लाख से ज्यादा लोगों की मृत्यु हो गई। इस प्रकार द्वितीय विश्व युद्ध द्वारा पैदा हुई परिस्थितियों ने लोगों के लिये अनेक कठिनाइयाँ पैदा कर दीं। इससे भारत में ब्रिटिश शासन के लिये भी अभूतपूर्व संकट पैदा हो गया।

लगातार ब्रिटिश समर्थन की बुनियाद कमज़ोर होने की परिस्थितियों को देखकर महात्मा गांधी ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध अंतिम आक्रमण करने का निर्णय किया। इस प्रकार अगस्त 1942 में प्रसिद्ध भारत छोड़ो आंदोलन शुरु हुआ। इस आंदोलन में ब्रिटिशों के समक्ष कोई मांगें नहीं रखी गईं।उनसे सिर्फ भारत छोड़ने के लिये कहा गया। ब्रिटिशों ने गांधी ज़ी के 'भारत छोड़ो' आंदोलन के प्रत्युत्तर में उन्हें और कांग्रेस कार्य समिति के सभी सदस्यों को बंदी बना लिया। कांग्रेस के नेताओं को बंदी बनाए जाने के समाचार ने लोगों को और अधिक क्रोधित कर दिया और वे सब सड़को पर उतर आए और उन्हें जैसे भी समझ आया, उसी रुप में उन्होंने ब्रिटिश सरकार पर आक्रमण कर दिया। अपने नेताओं की अनुपस्थिति में लोग स्वयं अपने नेता बन बैठे और उन्होंने सरकारी सम्पत्ति पर आक्रमण किया, उसे लूटा और नष्ट किया। सरकार ने इस आंदोलन का क्रूरता से दमन किया और पुलिस की गोलीबारी में अनेक लोग मारे गए।

अंत में बहुत बड़े स्तर पर हत्याओं और गिरफ़्तारियों के बाद सरकार इस आंदोलन का दमन करने में कामयाब हो सकी। सरकारी आंकड़ो के मुताबिक, 1943 के अंत तक गिरफ़्तार किये गये लोगों की संख्या 91,000 लोगों से भी ज़्यादा थी। यद्यपिइ स आंदोलन का दमन हो चुका था, परन्तु ब्रिटिश सरकार के समक्ष यह स्पष्ट हो चुका था कि वे बहुत लम्बी अवधि तक भारत पर अपनी पकड़ बनाकर नहीं रख पाएंगे। ब्रिटिशों ने स्वयं ही यह अनुभव किया था कि अब तक उन्होंने उस समर्थन–प्रणाली की सहायता से देश पर शासन किया था, जो 19वीं सदी से भारत में उन्होंने निर्मित की थी। राष्ट्रीय आंदोलनों से जुड़े संघर्षो की शृंखला के माध्यम से यह समर्थन–प्रणाली खत्म हो चुकी थी। भारतीयों के विभिन्न वर्गों

(किसानों, कामगारों, मध्यम–वर्ग, धनी लोग, पुलिस, सेना और अन्य सभी) की सहायता के बगैर ब्रिटिशों के लिये भारत पर शासन करना संभव नहीं था।

एक बार यह अनुभव होने के बाद ब्रिटिशों ने धीरे–धीरे और शांतिपूर्ण ढंग से भारत से वापसी की तैयारियाँ शुरु कर दीं। सन् 1944–45 के बाद उन्होंने सभी कांग्रेसी नेताओं को मुक्त कर दिया और ब्रिटिशों से भारतीयों के हाथों में सत्ता हस्तांतरित करने के लिये कांग्रेस के नेताओं के साथ वार्त्ता शुरु कर दी। और इस प्रकार अगस्त 1947 में भारत स्वतन्त्र हो गया। स्वतन्त्रता–प्राप्ति भारतीयों के लिये बहुत ही खुशी की बात थी। भारतीयों ने शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ़ अपनी लड़ाई में विजय प्राप्त की थी। परन्तु यह संपूर्ण विजय नहीं थी। भारत और पाकिस्तान में विभाजन भी साथ में आया। ब्रिटिश सरकार ने हमेशा भारतीय लोगों की एकता तोड़ने का प्रयास किया। वे कभी भी इस बात से सहमत नहीं हुए कि सभी भारतीय लोग सामान्य हितों पर सहमत हैं। और इसीलिये, जब उन्होंने भारत छोड़ा तो इस देश को धर्म के आधार पर विभाजित करने का निर्णय लिया। भारत के विभाजन के साथ–साथ बहुत बड़े स्तर पर साम्प्रदायिक हिंसा भी साथ आई।

वर्ष 1947 भारत के इतिहास का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण चरण है। यह वर्ष भारतीय लोगों की विजय का वर्ष है क्योंकि इसी वर्ष उन्होंने विदेशी शासन के चंगुल से स्वतन्त्रता प्राप्त की। परन्तु यह वर्ष भारतीय लोगों की एकता के लिये एक बड़ी त्रासदी का वर्ष भी है क्योंकि इस वर्ष देश का दो पृथक राष्ट्र–राज्यों में विभाजन हो गया था।

## पाठगत प्रश्न 21.5

1. डांडी मार्च कहाँ से शुरु हुआ था?

2. 1937 के चुनावों में कितने प्रान्तों में कांग्रेस को स्पष्ट बहुमत मिला?

3. भारत छोड़ो आंदोलन में कितने लोगों को गिरफ़्तार किया गया था?

## आपने क्या सीखा

इस पाठ में निम्नलिखित मुद्दे उल्लेखनीय हैः

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन किसी एक अकेली घटना का नाम नहीं था, बल्कि यह राजनीतिक घटनाओं की एक संपूर्ण श्रृंखला थी जिसका विस्तार अनेक दशकों तक फैला था।

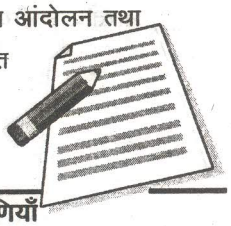



साम्राज्यवाद का विरोध और राष्ट्रीय एकता दो ऐसे विषय थे जो सभी घटनाओं में सामान्य थे और उन्हें परस्पर जोड़ते थे।

राष्ट्रीय आंदोलन के प्रारंभिक चरण में नरमपंथी नेताओं का वर्चस्व था। इन नेताओं ने औपनिवेशवादी शासको के समक्ष सिलसिलेवार अनेक मांगे रखी। परन्तु इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि उन्होंने इस विचार को जन्म दिया कि ब्रिटिश शासन भारतीयों की अर्थव्यवस्था को विकास की ओर निर्दिष्ट नहीं कर रहा है, बल्कि वह भारतीय अर्थव्यवस्था को पतन की ओ ले जा रहा है।

नरमपंथी नेताओं के बाद आए बालगंगाधर तिलक, बिपिन चन्र्द पाल और लाजपतराय जैसे गरमपंथी नेता, जिन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन में जनसामान्य की भागीदारी के विचार को जन्म दिया। गरमपंथी नेताओं ने स्वदेशी आंदोलन का नेतृत्व किया, जो कि ब्रिटिशों के बंगाल–विभाजन के निर्णय के विरुद्ध प्रारंभ किया गया था।

स्वदेशी आंदोलन के अंत ने क्रांतिकारी गतिविधियों को राष्ट्रीय आंदोलन में प्रविष्ट करा दिया। ये क्रांतिकारी नेता, जैसे खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी ब्रिटिश सरकार से हिंसक उपायों द्वारा लड़ना चाहते थे। वे व्यक्तिगत रुप में ब्रिटिश कार्यालयों को भी अपना लक्ष्य बनाना चाहते थे।

राष्ट्रीय आंदोलन में महात्मा गांधी का प्रवेश अगला महत्त्वपूर्ण कदम था। प्रारंभ में महात्मा गांधी ने चम्पारण, खेड़ा और अहमदाबाद में स्थानीय स्तर पर अपने राजनीतिक तरीके आज़माए। शीघ्र ही उन्होंने राष्ट्र व्यापी संघर्ष का नेतृत्व किया।

ब्रिटिश शासन के विरुद्ध गांधी जी का संधर्ष अहिंसात्मक – असहयोग पर आधारित था। इन तरीकों के जरिए उन्होंने तीन मुख्य संघर्षों का नेतृत्व किया – असहयोग आंदोलन (1920–22), सविनय अवज्ञा आंदोलन (1930–34) और भारत छोड़ो आंदोलन (1942)।

इन संधर्षों का परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रीय आंदोलन ने भारतीय जनमानस के बीच अत्यन्त लोकप्रियता प्राप्त कर ली। यह आंदोलन किसानों, कामगारों और विद्यार्थियों के विविध वर्गो तक जा पहुचाँ। धीरे–धीरे यह राष्ट्रीय आंदोलन देश के अधिकांश हिस्सों तक फैल गया।

जैसे–जैसे राष्ट्रीय आंदोलन की लोकप्रियता बढ़ती गई, वैसे–वैसे ब्रिटिश सरकार की लोकप्रियता घटती गई। ब्रिटिशों ने अनेक भारतीयों की सहायता से भारत पर शासन किया था। ये भारतीय भारत में ब्रिटिश शासन की समर्थन–प्रणाली का निर्माण करते थे। इस समर्थन–प्रणाली को नष्ट करने और तोड़ने मे राष्ट्रीय आंदोलन सफल रहा।

जैसे ही ब्रिटिशों की समर्थन–प्रणाली टूटने लगी, उन्होंने अनुभव किया कि अब भारत में उनके लिये शासन करना असंभव होगा। इसलिए ब्रिटिशों ने धीरे–धीरे भारतीयों के हाथों में सत्ता हस्तांतरित करने के लिये भारतीय नेताओं से वार्त्ता की प्रक्रिया प्रारंभ करने का निर्णय लिया।

अंत में 1947 में ब्रिटिशों ने भारत छोड़ दिया। 15 अगस्त 1947 से भारतीय विदेशी शासन से स्वतन्त्र हो गये।

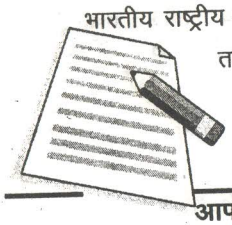

आपकी टिप्पणियाँ

लेकिन भारत छोड़ने से पहले ब्रिटिशों ने धर्म के आधार पर भारत का विभाजन करने का निर्णय लिया। भारत की स्वतंत्रता के साथ ही भारत का विभाजन भी हो गया। अतः स्वतंत्रता और विभाजन को आधुनिक भारत के इतिहास में दो अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटनाओं के रुप में देखा जाना चाहिए।

## पाठांत प्रश्न

1. प्रारंभिक कांग्रेस के सरोकारों के मुद्दो का उल्लेख करें.
2. स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन के विकास की जड़ें खोजें.
3. 1907–1914 के दौरान भारत और विदेशों में क्रांतिकारी आंदोलन की विविध शक्तियों की संक्षेप में चर्चा करें।
4. साइमन कमीशन के बहिष्कार की चर्चा करें।
5. गांधी–इरविन समझौते की क्या शर्तें थी?
6. द्वितीय असहयोग आंदोलन क्यों शरू किया गया था?
7. 1930–1934 के दौरान वामपंथियों के उद्भव का उल्लेख करें।
8. 'वर्ष 1947 विजय के साथ–साथ महान त्रासदी का भी वर्ष था' टिप्पणी करें।

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

### 21.1

1. दिसंबर 1885 ए. ओ. ह्यूम
2. 1905 लॉर्ड कर्जन
3. जात्रा
4. कलकत्ता के महत्त्व को कम करने के लिये

### 21ण्2

1. सोहन सिंह भाकना और हर दयाल
2. कनाडा जाने वाले जहाज कामागाटा मारु के यात्रियों को कनाडा सरकार द्वारा परे धकेल दिया गया था, जब वे 1914 में कलकत्ता पहुँचे तो उन यात्रियों की पुलिस के साथ झड़प हुई जिसमें 22 लोग मारे गये थे।
3. मैडम कामा
4. होम रुल आंदोलन

**21.3**

1. चम्पारण, अहमदाबाद, खेड़ा
2. 6 अप्रैल 1919
3. इस दिन जलियांवाला बाग में लोगों के एकत्रित होने पर जनरल डायर ने अपने लोगों को निहत्थे और असहाय लोगों पर गोलीबारी करने का आदेश दिया, जिसमें 379 लोग मारे गये थे।

**21.4**

1. खिलाफ़त की गलती, पजाब की गलती और स्वराज
2. 1923; मोती लाल नेहरू और सी. आर. दास
3. हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन

**12.5**

1. सामरमती आश्रम
2. पाँच
3. 91,000 लोगों से अधिक

**पाठांत प्रश्नों के संकेत**

1. देखें 21.1
2. देखें 21.2
3. देखें 21.3
4. देखें 21.8
5. देखें 21.9 अनुच्छेद 4
6. देखें 21.9 अनुच्छेद 7, 8, और 9
7. देखें 21.10 अनुच्छेद 2 और 3
8. देखें 21.12

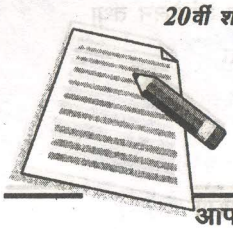

आपकी टिप्पणियाँ

22

# 19वीं शताब्दी का महत्त्व

जब हमें पुस्तकों, फिल्मों, दूरदर्शन अथवा बुजुर्गों द्वारा बताई गई कहानियों के माध्यम से अतीत के बारे में जानकारी मिलती है। तो हमें अन्य युगों और अपने काल के बीच अनेक विभिन्नताएं और समानताएं दिखाई देती हैं। हमें मालूम है कि अनेक भौतिक वस्तुएं और प्रौद्योगिकियां, जिनका हम आज उपयोग करते हैं, वे 1900 में मौजूद नहीं थी अथवा उस समय बहुत कम लोग उनका उपयोग करते थे। फिर भी मानव जीवन के संगठन के रुप में हम वर्ष 1900 के लोगों से बहुत अधिक समान है। इस इकाई में हम चर्चा करेंगे कि 1900 में विश्व के विभिन्न भागों में लोग कैसे रहते थे।

## उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- 1900 में विश्व के विभिन्न प्रदेशों में जनसंख्या के रुप की कल्पना कर सकेंगे;
- पूंजीवादी औद्योगीकरण को परिभाषित कर सकोगे और इसके सामाजिक परिणामों को समझा सकेंगे;
- उपनिवेशवाद के संबंधों की व्याख्या कर सकेंगे;
- ऊर्जा और संसाधन उपयोग के आधुनिक ढ़ाँचे की कल्पना कर सकेंगे और
- आधुनिक राजनीतिक विचारधाराओं और संघटनों के उद्गम का विश्लेषण कर सकेंगे।

## 22.1 विश्व जनसंख्या की संरचना : 1900

मानव जनसमुदायों, उनकी विकास दरों और आवासों के बदलते रुप का अध्ययन जनसांख्यिकी कहलाता है।

सन 1900 में मानव जनसंख्या लगभग 150 करोड़ थी। आज की तरह उस समय भी चीन और भारत सबसे अधिक जनसंख्या वाले देश थे। फिर भी आज की अपेक्षा सन 1900 में विश्व की जनसंख्या का कम भाग एशिया में निवास करता था। समग्र विश्व के ज्यादातर लोग सन 1900 में कृषकों के रुप में बस गए थे, ये फसलें उगाते और पशु

पालते थे तथा गांवों में रहते थे। विश्व के अनेक भागों में लोग खानाबदोश थे, वे पशुओं के समूहों को चराते थे और कई आदिवासी शिकार–खाद्य संग्रहकर्ता थे, हालांकि कई सौ वर्षो पूर्व की तुलना में सन 1900 में वे बहुत कम थे।

विश्व की जनसंख्या का लगातार बढ़ता भाग शहरों में निवास करता था। विश्व के कई भागों में प्राचीन कालों से शहर मौजूद थे, परन्तु इनका आकार और जनसंख्या सीमित थी। तथापि पूंजीवादी औद्योगीकरण से शहरीकरण हुआ और शहरों में जनसंख्या तेजी

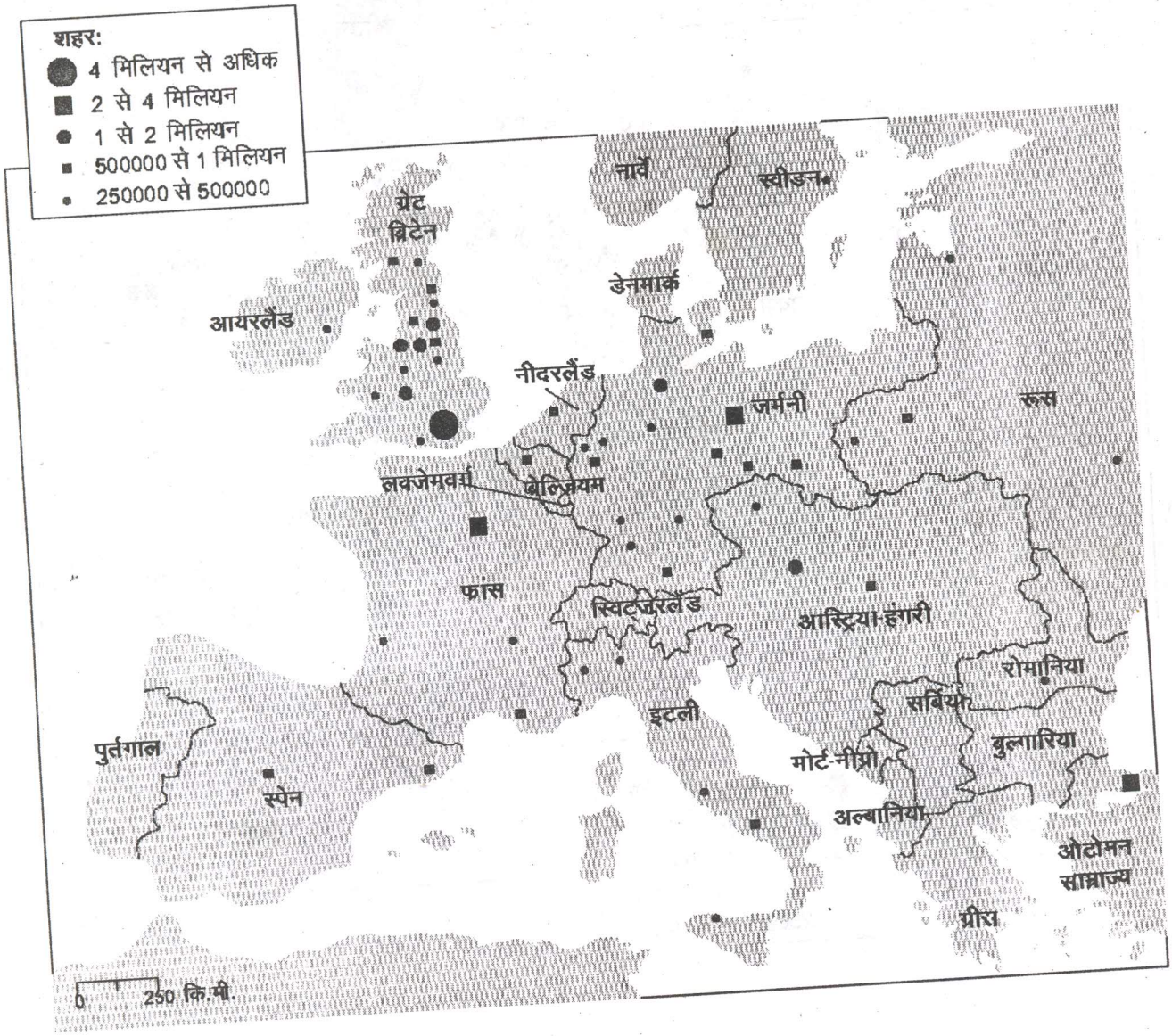


*मानचित्र 22.1 (अ) प्रारंभिक 20वीं सदी के यूरोप में शहरीकरण*

आपकी टिप्पणियाँ

से बढ़ी। सन 1900 तक यूरोप में विश्व के अन्य प्रदेशों की तुलना में शहरों का घनत्व बढ़ा। सौ से अधिक शहरों में कम–से–कम 1,00,000 लोगों की जनसंख्या थी और छह यूरोपीय शहरों में प्रत्येक में लगभग 10,00,000 लोग रहते थे। यूरोप और अमरीका में सबसे बड़े शहर थे, जबकि एशिया तथा अफ्रीका में ऐसे बड़े भूभाग थे, जिनमें कुछ ही शहर थे और सैकड़ों वर्षों की तलना में वे अलग–थलग थे तथा कम बसे हुए थे। सन

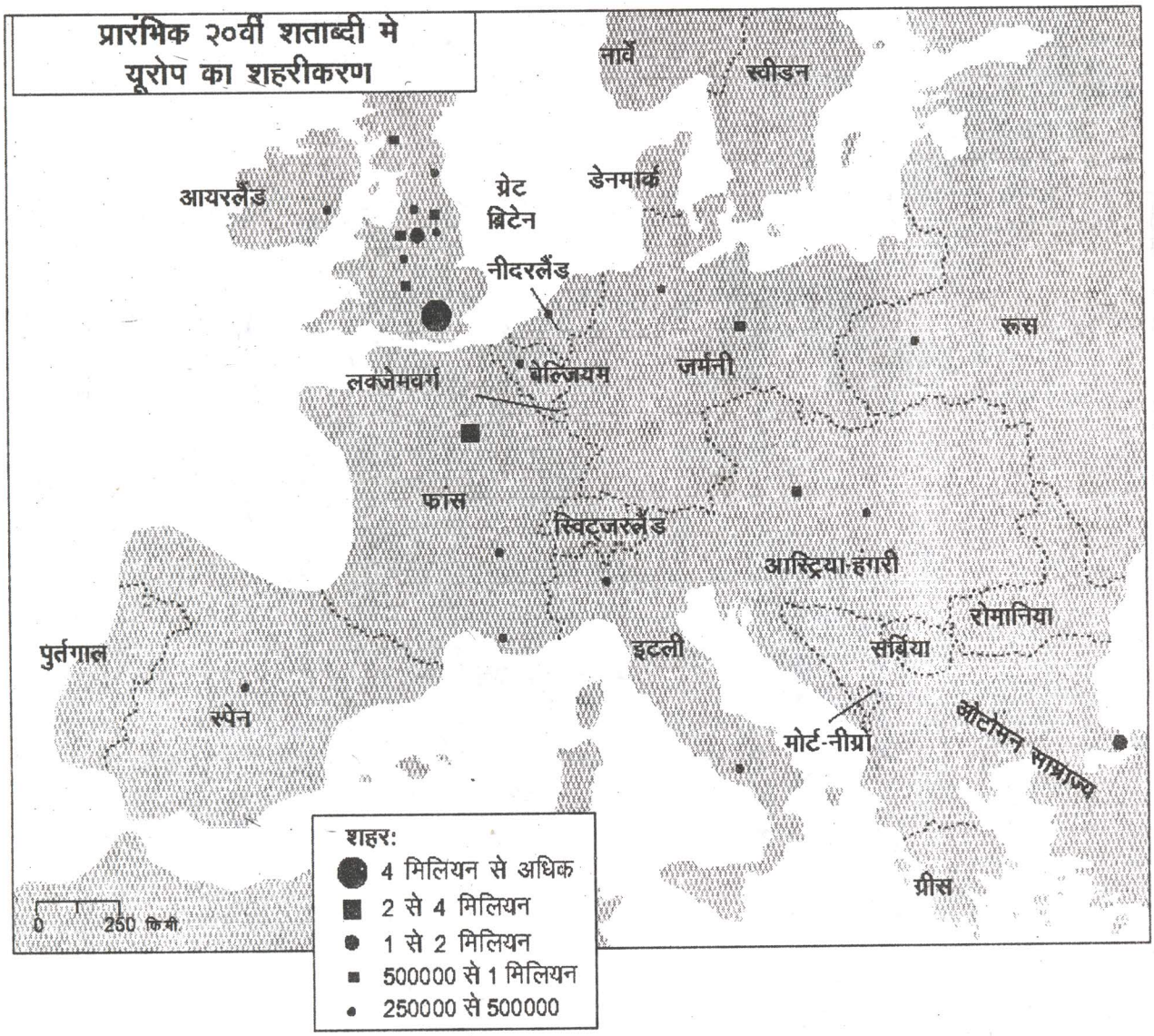


*मानचित्र 22.1 (ब) प्रारंभिक 20वीं सदी के यूरोप में शहरीकरण*

आपकी टिप्पणियाँ

1900 में यूरोप से बाहर के ज्यादातर बड़े शहर जैसे सिडनी और शिकागो 100 या 200 वर्ष पुराने थे तथा इनमें ज्यादातर यूरोप मूल के लोग रहते थे। कुछ शहर जैसे बंगाल में कलकत्ता ब्रिटिश शासन के तहत विकसित हुए।

सामान्यतः सन 1900 में एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमरीका की मानव जनसंख्या में 75–95 प्रतिशत ग्रामीण थे अथवा गांवों में रहते थे और कृषि पर निर्भर थे। औद्योगीकृत यूरोप अथवा अमरीका और ऑस्ट्रेलिया, जहां यूरोपीय मूल के लोग बस गए थी, वे पहले से ही शहरी हो चुके थे अथवा उनकी लगभग 50 प्रतिशत जनसंख्या शहरी थी अर्थात् वे नगरों और शहरों में रहते थे।

## 22.2 औद्योगीकरण और सामाजिक वर्ग

लगभग सन 1700 के बाद पश्चिमी यूरोप में औद्योगीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। उससे बहुत बड़ी संख्या में श्रमिक धातु का उत्पादन करने के लिए ऊर्जा और संसाधनों वाले क्षेत्रों के निकट आ गए तथा तैयार माल का तेजी से उत्पादन करने के लिए मशीन चलाने लगे। सन 1900 तक जब व्यापक पैमाने पर उद्योग चलाने के लिए भारी धन राशि की आवश्यकता पड़नी शुरु हुई तो पूंजीवादी औद्योगीकरण का विकास हुआ। 'पूंजीवाद' पूंजी शब्द से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ संचित धन और सम्पत्ति है और जिनके पास पूंजी होती है वे पूंजीपति कहलाते हैं। पूंजीपतियों का सीधा संबंध औद्योगिक उत्पादन, व्यापार, प्रशासन और बैंकिंग से होता था। 1900 तक ज्यादातर यूरोप, अमरीका और ऑस्ट्रेलिया में पूंजीवादी औद्योगीकरण फैल गया था।.

पूंजीपति यह धन और सम्पत्ति व्यापार और वाणिज्य अथवा छोटे मालिकों की सम्पत्ति के हरण करने से प्राप्त करते थे। दूसरी ओर फैक्टरियों में काम करने वाले पुरुष, महिलाएं और बच्चे थे, जिनके पास कोई संपत्ति नहीं थी और वे अपनी आजीविका के लिए अपनी मजदूरी पर आश्रित थे, जिसके लिए उन्हें निश्चित पगार मिलती था। 1900 में उन मज़दूरी पाने वालों की संख्या अधिक थी, जिनके पास पैसे की कमी नहीं थी, फिर भी उन्हें धनी नहीं कहा जा सकता था। इनमें से कई वेतन भोगी मध्यम वर्ग के लोग थे, जैसे अध्यापक, डॉक्टर, इंजीनियर, क्लर्क तथा अन्य सेवाओं से संबंध रखने वाले लोग।

उस समय बहुत से लोगों का मानना था कि ऐसे वर्गों का होना एक सामान्य बात है तथा ये हमेशा रहेंगे और ज्यादातर लोग इन असमानताओं को तब तक स्वीकार करते रहेंगे, जब तक उनकी स्थिति में सुधार नहीं हो जाता। उन्होंने देखा था कि उपनिवेशों से धन का हस्तांतरण होने से यूरोप के देशों में भी कार्य करने वाले लोगों को कुछ लाभ होता था। 1900 तक कुछ हद तक यह हुआ और ज्यादातर लोग अपने पूर्वजों की तुलना में बेहतर जीवन जीने लगे। लेकिन अभी भी बेरोजगारी की समस्या गंभीर थी।

1900 तक एशिया और अफ्रीका के बम्बई, शंघाई और डकार जैसे शहरों में बड़ी संख्या में व्यापारी, दुकानदार और मध्यम श्रेणी के अन्य वर्ग तथा औद्योगिक वेतन वाले कामगर रहने लगे थे। परन्तु यहां की जनसंख्या में आसपास के गांवों के भूस्वामियों, किसानों और कृषि श्रमिकों की संख्या ही अधिक थी।

1900 के पूंजीवादी समाजों के बारे में कुछ अन्य तथ्यों को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। यूरोपीय अर्थव्यवस्थाओं के लिए अधिकतर कच्चा माल उपनिवेशों से लाया जाता था

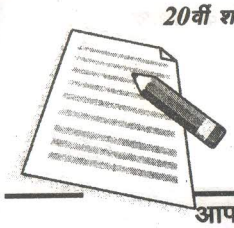

आपकी टिप्पणियाँ

और तैयार माल उपनिवेशों के बाजारों में बेचा जाता था। यह संबंध भी असमानता पर आधारित था: यह कोई समान व्यापार संबंध नहीं था। यूरोपीय समाजों में भूस्वामियों का अधिक दिनों तक वर्चस्व नहीं रहा।

## 22.3 शहरी विचारधारा और ज्ञान

औद्योगीकरण की अन्य विशेषता थी ३समाज में उत्पादन करना तथा ज्ञान की भागीदारी। लोग शहरी जीवन से पहले की तुलना में और अधिक निकटता से जुड़ गए। शहरों और नगरों में न सिर्फ औद्योगिक वेतन पाने वाले श्रमिकों की संख्या अधिक थी, बल्कि शिक्षा औरसाक्षरता वाले कार्यों में लगे लोगों – क्लर्कों, मैनेजरों, अध्यापकों, सरकारी कर्मचारियों आदि की भी संख्या बढ़ रही थी। शीघ्र ही इस बात को स्वीकार किया जाने लगा कि कार्य कुशलता में पढ़े–लिखे और हिसाब–किताब जानने वाले औद्योगिक कामगारों का भी योगदान होता था। समाचार–पत्रों और पत्रिकाओं ने इसमें योगदान दिया। 1900 में लंदन, पेरिस, बर्लिन और न्यूयॉर्क जैसे शहरों में प्रतिदिन दस लाख प्रतियों से अधिक समाचार–पत्र छपने लगे।

1900 तक ज्यादातर औद्योगिक समाजों के लिए यह आवश्यक हो गया था कि लड़के और लड़कियां कम–से–कम तेरह अथवा चौदह वर्ष की आयु तक प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त कर लें। विद्यालय में पढ़ाने का कार्य आधुनिक व्यवसाय हो गया था, जिसमें महिलाओं की संख्या अधिक थी। इससे शहरी और ग्रामीण लोगों में ज्ञान और संस्कृति का अंतर आ गया। कुल मिलाकर 1900 तक कुछ पश्चिमी समाजों में प्रौढ़ साक्षरता साठ प्रतिशत और नब्बे प्रतिशत के बीच थी, जबकि गैर–पश्चिमी समाजों में इसका प्रतिशत बहुत कम था।

### पाठगत प्रश्न 22.1

1. 1900 में यूरोप से बाहर के जनसमुदायों का कितना भाग गांवों में रहता था?

2. 1900 में विश्व के ज्यादातर बड़े शहर (10,00,000 से अधिक लोग) यूरोप में थे अथवा उससे बाहर?

3. 1900 तक शहरी केंद्रों और ग्रामीण क्षेत्रों में 'साक्षरता अंतर' क्यों था?

4. 1900 के विश्व में उच्च साक्षरता के क्या संकेत थे?

## 22.4 ऊर्जा और संसाधन उपयोग : विश्व के औद्योगिक बनाम गैर-औद्योगिक क्षेत्र

1900 में औद्योगीकृत और गैर–औद्योगीकृत विश्व में लोगों ने सिर्फ विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन ही नहीं, किया बल्कि उन्होंने ऊर्जा के उपयोग की बिलकुल भिन्न पद्धतियां भी विकसित कीं। 1900 में गैर–औद्योगीकृत विश्व का ज्यादातर उत्पादन मानव और पशु

शक्ति से किया जाता था। अमरीका के खेतों में हल और यांत्रिकी कटाई मशीनें घोड़ों द्वारा चलाई जाती थीं, इसी प्रकार नगरों में ठेला, गाड़ियां और बसें चलाई जाती थीं।

औद्योगिक समाजों को अपनी फैक्टरियां चलाने, अपने घरों और कार्यालयों में रोशनी करने, परिवहन के शक्तिशाली आधुनिक साधनों जैसे रेलवे–इंजन और ऑटोमोबाइल्स चलाने के लिए नए ऊर्जा स्रोतों की आवश्यकता थी। अतः 1900 में ब्रिटेन, फ्रांस और जर्मनी व्यापक रुप से कोयले का उपभोग करने वाले समाज थे, जबकि इटली ने जल–विद्युत का उपयोग करना शुरु कर दिया था। अमरीका पेट्रोलियम ईंधनों पर आश्रिम होता जा रहा था। 1915 तक यह स्पष्ट हो गया था कि परिवहन में घोड़ों के स्थान पर कारों का उपयोग होगा।

इन राष्ट्रों ने यह महसूस करना शुरु कर दिया था कि इनकी आर्थिक और राजनीतिक शक्ति ऊर्जा स्रोतों पर निर्भर थी और इन्होंने अपने उपनिवेशों के संसाधनों का दोहन करना शुरु कर दिया। उदाहरण के लिए ब्रिटिश लोग असम और बर्मा से तेल जुटाते थे; यही कार्य डच लोग सुमात्रा में और अमरीका के लोग मैक्सिको में कर रहे थे। ये घटक इनकी विदेशी नीतियों का निर्धारण करते थे।

## 22.5 उपनिवेशवाद, आर्थिक ढांचे और सामाजिक संबंध

1900 में पश्चिमी विश्व के ज्यादातर औद्योगीकृत राष्ट्र अपनी सीमाओं से दूर के प्रदेशों पर शासन करते थे अथवा उनको आर्थिक रुप से नियंत्रित करते थे। ब्रिटेन ने भारत के ज्यादातर भागों पर राज्य किया जबकि हालैंड ने आधुनिक इंडोनेशिया के संपूर्ण क्षेत्र पर शासन किया। फ्रांस, ब्रिटेन, जर्मनी, इटली, पुर्तगाल और बेल्जियम के अफ्रीका, जापान और चीन में उपनिवेश थे।

इन उपनिवेशों के शासकों ने एशिया और अफ्रीका को नवीनतम प्रौद्योगिकियां हासिल करने से वंचित रखा तथा इन्होंने अपने उपनिवेशों में सावधानीपूर्वक रेलवे और टेलीग्राफ पर नियंत्रण रखा। ये स्वतंत्रता की अभिलाषा करने वालों पर सख्ती करते थे। इन्होंने प्रशासन में पहले से उपयोग मे लाई जा रही भाषा के स्थान पर अपनी भाषा लागू कर दी। उन्होंने विदेशी शासन मे औपनिवेशिक समाज के कुछ भागों को सम्मिलित करने के उद्देश्य से कुछ शैक्षिक नीतियां प्रारंभ की। उन्होंने निम्नतर स्तरों पर औपनिवेशिक प्रशासन को चलाने के लिए उनके कुछ भागों को भी तैयार किया। उन्होंने 'फूट डालो राज करो' की नीति अपनाई, आधुनिक आर्थिक क्रियाकलाप के विकास को रोका तथा औपनिवेशिक भाषाओं और शिक्षा का उपयोग स्थानीय भाषाओं में शिक्षितों के बीच भेद करने वे उद्देश्य हेतु किया।

उपनिवेशवाद के प्रभाव और पूंजीवाद के प्रवेश ने उपनिवेशों में सामाजिक संबंधों को बदल दिया। उन्होंने नकदी फसलों, जिसका वे व्यापार करना चाहते थे, के लिए अपनी प्राथमिकताओं में परिवर्तन लाने के लिए उत्पादन के ढांचे में बदलाव किया। निर्यात हेतु उत्पादन के इस प्रतिमान में उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अत्यधिक विस्तार किया गया। उदाहरण के लिए भारतीय किसान अफीम का उत्पादन करते थे जिसे ब्रिटेन के उद्यमी चीन को निर्यात करते थे। भारतीय व्यापारी भी इसमें सम्मिलित थे। दूसरे शब्दों में, उत्पादन और व्यापार दोनों की शासक के हितों में वृद्धि की जाती थी। परिणामस्वरुप

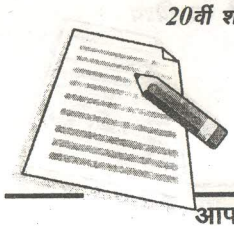

आपकी टिप्पणियाँ

संपूर्ण विश्व के ज्यादातर लोग उन वस्तुओं का उत्पादन करने लगे, जिनका वे उपभोग नहीं करते थे, जबकि वे उन वस्तुओं का उपभोग करते थे जिनका कहीं और अन्यों द्वारा उत्पादन किया जाता था।

ऐसे वाणिज्यिक ढांचों ने शासकों के नियंत्रण के कारण अंतर–निर्भरता और अधीनताएं सृजित कीं। कई क्षेत्रों में किसान पर्याप्त मात्रा में खाद्य पदार्थों का उत्पादन नहीं कर पाते थे जिसके परिणामस्वरुप उन्नसवीं शताब्दी के अंत में आए अकालों के कारण लाखों लोग मरे; यद्यपि अब तक के इतिहास में खाद्य का विश्व में कुल उत्पादन पहले से अधिक था।

### पाठगत प्रश्न 22.2

1. 1900 में कौन से देशों ने जीवाश्म ईंधनों का उपयोग करना प्रारंभ किया?

2. 1900 में ऐसी आपूर्ति कहां स्थित थी?

3. क्या 1900 में महाशक्तियों के उपनिवेशों के लिए अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का लाभ था?

4. उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में जबकि विश्व में कुल खाद्य आपूर्ति में तेजी से वृद्धि, हुई अनेक लोगों की खाद्य सुरक्षा समाप्त हो गई। क्यों?

5. भाषा के उपयोग तथा शिक्षा में पहुँच बनाने से औपनिवेशिक शासन का क्या संबंध था?

## 22.6 विकसित और अविकसित राष्ट्रों में विचारधाराओं और राजनीति की गतिशीलता

1900 के विश्व ने समाज के जीवन और संगठन के बारे में विचारों के तीव्र विकास तथा विचारधारा की होड़ अथवा राजनीतिक विचारों की विभिन्न धाराओं को देखा। बड़ी हद तक यह औद्योगीकरण से संबंधित आर्थिक व सामाजिक बदलाव का परिणाम था। छपाई संस्कृति और संचार के अन्य साधनों के आगमन से इन बहसों का व्यापक विस्तार हुआ तथा जनता और संगठन विभिन्न विचारधाराओं का अनुसरण करने लगे। 1900 तक पश्चिमी राष्ट्रों और साथ ही कई उपनिवेशों में प्रिंट मीडिया लोगों की बहुत बड़ी संख्या को उत्पादों और सेवाओं के विज्ञापन संबंधी सूचना उपलब्ध कराते थे, परन्तु साथ ही उनके राजनीतिक विचारों को मूर्त रुप देते थे।

### उदारवाद

विचारों के समूह के रुप में उदारवाद का उदय तीन सौ वर्षों से पहले उस समय हुआ था जब कुलीन लोग और बड़ी सम्पत्ति के मालिक (कभी–कभी गरीब लोग भी इसमें

सम्मिलित हो जाते थे) शासकों के अधिकारों को निर्धारित अथवा सीमित करने के लिए संघर्षरत थे। उदारवादियों का मानना था कि व्यक्तियों को 'नैसर्गिक अधिकार' प्राप्त हैं जिनमें उत्पीड़न के विरुद्ध अधिकार, सम्पत्ति संचित करने, धार्मिक स्वतंत्रता, अपने विचारों को स्वतंत्रतापूर्वक व्यक्त करने का अधिकार और अन्य सम्मिलित थे। उनका मत था कि सरकार व शासकों द्वारा इन अधिकारों का सम्मान करवाया जाना चाहिए। इनका मानना था कि इन अधिकारों को सृजित करने और इन्हें लागू करने के लिए सार्वजनिक कानूनों और संविधानों को तैयार करना सर्वोत्तम विधि थी। ये कानून और संविधान शासकों और सरकारी तंत्र द्वारा उपयोग किए गए निरंकुश अधिकारों के विरुद्ध श्रेष्ठ रक्षा उपाय थे। ये राष्ट्रीय चर्चा के माध्यम से अपने लोगों के धार्मिक विश्वासों के अनुसार आदेश देने वाले राजकीय अधिकारियों के प्रति आपत्ति जताते थे, क्योंकि धर्म निजी मामला था। जन आंदोलनों के विकास से उदारवाद को मजबूरन न सिर्फ धनी वर्गों को बल्कि समाज के सभी सदस्यों को राजनीतिक और नागरिकता के अधिकार प्रदान करने पड़े। इन अधिकारों में संगठन बनाने और चुनावों में भाग लेना सम्मिलित था।

उदारवाद अनेक आर्थिक विचारधाराओं से संबंधित था। उदारवादी सभी लोगों को आर्थिक एजेंटों, उत्पादकों और वस्तुओं और सेवाओं के उपभोक्ताओं के रुप में समझते थे। ये इनको अपने व्यक्तित्वों के महत्वपूर्ण पहलुओं और व्यक्तियों की अभिव्यक्ति के रुप में मानते थे। परंतु उनके लिए मजदूर श्रेणी के लोग नहीं बल्कि लाभ कमाने वाले व्यापारी, दुकानदार और उत्पादक नायक थे। आर्थिक उदारवाद के मुख्य प्रवक्ताओं में एडमस्मिथ का कहना था कि यदि लोगों को उनके हित में काम करने की अनुमति दे दी जाए, तो ये सर्वसामान्य के हित के लिए योगदान करेंगे। यदि आर्थिक गतिविधि को स्वतंत्र रखा जाए, तो यह अपनी आपूर्ति व मांग के समीकरण बना लेती है और इससे समाज की स्थिति उपयुक्त बन जाती है। इन्होंने मुक्त व्यापार का समर्थन किया। इस प्रकार, अर्थव्यवस्था हेतु श्रेष्ठ सरकार वही है, जो नियंत्रण कम रखे और सब कुछ बाजार प्रचालन पर छोड़ दे।

1900 तक अनेक उदारवादियों ने यह सोचना शुरु कर दिया था कि सरकारों को समाज के गरीब वर्गों के लिए शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे कुछ कल्याणकारी कार्य प्रारंभ करके न्यूनतम हस्तक्षेप करना चाहिए। परन्तु इनके मौलिक विचार आज तक बाकी हैं। इन्होंने मुख्यतया धनी लोगों के हितों को बढ़ावा दिया। उदारवादियों को व्यावसायियों और शिक्षित लोगों से अपना मुख्य समर्थन मिलता था जो ऐसी परपरागत और निरंकुश व्यवस्था से असंतुष्ट थे जो जन्म के आधार (अर्थात कुलीन वर्ग) और व्यापार और औद्योगिक पूंजीपतियों को विशेषाधिकार प्रदान करती थी। इन्होंने कई ऐसे कामगार लोगों का समर्थन हासिल कर लिया था जो संविधानों और व्यक्ति के अधिकारों के बारे में इनके विचारों से सहमत थे, परन्तु ये लोग यह नहीं समझ पाए कि वे आर्थिक समानता अथवा कामगार लोगों के आर्थिक अधिकारों के प्रति बिल्कुल भी इच्छुक नहीं थे।

### अनुदारवाद

अनुदारवाद मुख्यतः समाज के भूस्वामी और अन्य वर्गों से आया, जो अपने लिए लाभकारी विशेषाधिकारों को समाप्त करना और सीमित करना नहीं चाहते थे। ये भूस्वामी वर्गों के वे सौदागर और व्यापारी थे, जिन्हें राज्य संरक्षण और एकाधिकार प्राप्त थे जो मुक्त

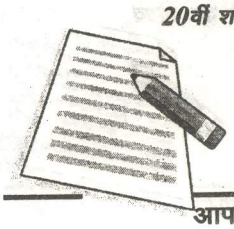

आपकी टिप्पणियाँ

व्यापार नीतियों के कारण समाप्त हो गए थे। उनके लिए नैसर्गिक अधिकारों की संपूर्ण विचारधारा विघटनकारी थी क्योंकि इससे समाज में प्रचलित पुरानी व्यवस्था समाप्त हो गई थी जिसमें समाज के प्रत्येक वर्ग का अपना स्थान पहले से ही निर्धारित था। इनके लिए सामाजिक व्यवस्था और स्थिरता समानता से ज्यादा महत्वपूर्ण थी। इन्होंने महसूस किया कि भगवान के समक्ष सब बराबर हो सकते है परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि वास्तविक संसार में भी सब बराबर हो। ये उसे आधुनिक विश्व की अव्यवस्था के विरुद्ध पुरानी सामाजिक व्यवस्था को श्रेष्ठ सुरक्षा मानते थे, क्योंकि आधुनिक व्यवस्था से समाज में भारी परिवर्तन और संघर्ष उत्पन्न हो गया। सभी पश्चिमी राष्ट्रों में मजबूत अनुदार राजनीतिक समूह थे, जो चुनावों में भाग लेते थे और इनका प्रशासनिक तंत्र पर भी प्रभाव था।

**समाजवाद**

समाजवादी भी उदारवादियों की आलोचना करते थे, परन्तु उन बातों के लिए जो अनुदारवादियों से बहुत भिन्न थीं। समाजवादियों ने कामगार लोगों के हितों को प्रस्तुत किया और उनका मानना था कि औद्योगीकृत पूंजीवादी समाजों में राजतंत्र की पुरानी तानाशाही के जुल्म और अभिजात तंत्र का स्थान धनी पूंजीपति बुजुर्आओं ने ले लिया। लूई ब्लाँक और रॉबर्ट ओवेन जैसे कुछ पहले के समाजवादियों का मानना था कि उत्पादकों के सहयोग से लाभ में और अधिक समान भागीदारी होगी।

कार्ल मार्क्स जैसे अन्य समाजवादियों का मानना था कि श्रमिकों को पूंजीवादी प्रणाली में कभी उचित पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। यह तभी संभव होगा जब सभी उद्यमों पर सार्वजनिक स्वामित्व हो अर्थात सबके समान लाभ हेतु उन पर राज्य का स्वामित्व हो। मार्क्स ने कहा कि साम्यवादी समाज में जब उत्पादन के सभी साधन सार्वजनिक होंगे और कोई निजी संपत्ति नहीं होगी, तो प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार योगदान देगा/देगी और उसकी आवश्यकताओं के अनुसार उसे प्राप्ति होगी। अतः सामाजिक न्याय के लिए निजी सम्पत्ति समाप्त करना आवश्यक था। समानता वाले समाज को अस्तित्व में लाने के लिए वर्गों को भी समाप्त करना होगा। मार्क्स के अनुसार समाजवादी आंदोलनों का अंतिम उद्देश्य ऐसे समाज की स्थापना करना है। मार्क्स ने यह भी कहा कि चूंकि शासन करने वाला वर्ग इसमें सहयोग नहीं देगा इसलिए क्रांति आवश्यक है। अतः साम्यवादी पार्टियाँ और मजबूत और समर्पित श्रमिक आंदोलन होने चाहिए।

अतः 1900 में सोशल डेमोक्रेटिक (मार्क्सवादी) पार्टी ने लाखों कामगारों को श्रमिक संघों, क्लबों और समितियों में संगठित किया, चुनावों में भाग लिया तथा रीशस्टेग (जर्मन संसद) में भारी सीटों पर विजय प्राप्त की। वे कामगारों के जीवन में सुधार लाने से संबंधित विधेयक पास कराने में सफल हो गए। 1900 तक विश्व के कई भागों में मार्क्सवादी, समाजवादी और लेबर पार्टियां अस्तित्व में आ गईं, हालाँकि वे सरकारों और अपने देशों की पुलिस की कड़ी निगरानी में थीं, क्योंकि सरकारें क्रांतियों को किसी भी कीमत पर रोकना चाहती थी। रुस जैसे राष्ट्रों में साम्यवादी संगठनों पर प्रतिबंध लगा दिया गया तथा जाने–माने साम्यवादियों को जेल में डाल दिया गया अथवा उन्हें देश निकाला दिया गया (जैसा कि रुसी क्रांतिकारी आंदोलन के नेता वी. आई. लेनिन के साथ हुआ)।

## पाठगत प्रश्न 22.3

1. उदारवादियों द्वारा मान्यता प्राप्त 'नैसर्गिक अधिकार' कौन से थे?

2. उदारवादियों ने आर्थिक गतिविधि के सरकारी निर्धारण का सिद्धान्ततः विरोध क्यों किया?

3. उदारवाद और अनुदारवाद के संबंध में 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बदलते वर्गों में बहस का उल्लेख कीजिए।

4. समानता की मार्क्सवादी अवधारणा और असमानता के आधार की मार्क्सवादी समझ को स्पष्ट कीजिए?

5. 1900 के एक ऐसे राष्ट्र का उदाहरण दीजिए जहां मार्क्सवादी कामगार वर्ग के लोगों को एकजुट करने में अत्यधिक सफल रहे?

6. साम्यवादी (मार्क्सवादी) साम्राज्यवाद के घोर विरोधी हैं। क्यों?

### साम्राज्यवाद

1900 का विश्व ऐसा था जिसमें ज्यादातर औद्योगीकृत राष्ट्रों का गैर–औद्योगीकृत राष्ट्रों के लोगों और संसाधनों पर अधिकार था। औद्योगीकृत राष्ट्रों के कई निवासियों का मानना था कि जिन राष्ट्रों पर शासन किया जा रहा था उनके लिए उपनिवेशवाद लाभकारी था और 'पिछड़े' राष्ट्रों के निवासियों को विदेशी शासन द्वारा 'सभ्य' बनाया जा रहा था। शासक राष्ट्रों के उदारवादी इस बात पर बंटे हुए थे कि उपनिवेशों पर अपने राष्ट्रों के प्रभुत्व को कैसे बनाए रखा जाए। प्रत्येक यह नहीं सोचता था कि प्रत्यक्ष राजनीतिक शासन आवश्यक था परन्तु साथ भी उपनिवेशवाद के लाभों और उपनिवेशों के संसाधनों पर नियंत्रण खोने का भी इच्छुक नहीं था। जर्मनी में उदारवादियों का मानना था कि उनके राष्ट्र की औद्योगिक शक्ति अधिक उपनिवेश बनाने पर निर्भर थी। अमरीका के अनेक उदारवादियों का कहना था कि उनके राष्ट्र को क्यूबा और फिलिपींस पर राज्य करने का कोई नैतिक अधिकार नहीं था, परन्तु अमरीका के किसी भी नागरिक ने लातिन अमरीका में अपनी सरकार के हस्तक्षेप की आलोचना नहीं की। ब्रिटिश, फ्रांसीसी, जर्मन, बेल्जियम के और अमरीका के पूंजीपतियों ने औपचारिक साम्राज्यों की भीतरी औरबाह्य दोनों आर्थिक गतिविधियों पर भारी निवेश किया था। अतः इन्होंने अपने संबंधित देशों को समर्थन दिया और विदेशी–नीतियों को प्रभावित किया तथा शेष विश्व के राष्ट्रों पर औपनिवेशिक आधिपत्य जमाने के लिए प्रेरित किया। जिनमें अफ्रीका लातिन अमरीका और एशिया सम्मिलित थे।

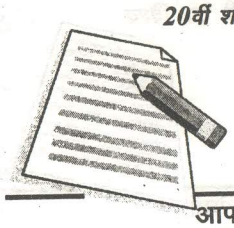

आपकी टिप्पणियाँ

1900 में घोर साम्राज्यवाद–विरोधी विचारों वाला राजनीतिक समूह साम्यवादियों का था, उनका मानना था कि सब जगह उपनिवेशवाद सिर्फ शासक वर्गों को लाभ पहुंचाता था, और कहीं भी कामगार लोगों के हित में नहीं था। अतः सभी राष्ट्रों के कामगार वर्गों का कुछ राष्ट्रों के इस साम्राज्यवादी प्रभुत्व को उखाड़ फेंकने के लिए एकजुट होना आवश्यक था।

**राष्ट्रवाद**

राष्ट्रवाद और राष्ट्र–मुक्ति की विचारधारा उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दियों के विश्व में विस्फोटक शक्ति थी। 1900 में विश्व के सभी भागों में प्रतिस्पर्धी राष्ट्रवादी उन्नति कर रहे थे और लोगों को संघटित करने का यह महत्वपूर्ण ढंग था। सभ्यतागत पहचान की व्यापक धारणाएं लोगों का समर्थन हासिल करने के लिए राष्ट्रवाद से प्रतिस्पर्धा में थी। ये दोनों एशिया और अफ्रीका में महत्वपूर्ण थीं। पैन (सभी) अफ्रीकावाद और पैन–इस्लामवाद ने उपनिवेशों में स्वतंत्रता संग्राम को बढ़ावा दिया। चीनियों और भारतीयों ने अपनी सांस्कृतिक स्वतंत्रता पर बल दिया तथा स्वतंत्रता हेतु अपने संघर्ष में औपनिवेशिक नीतियों का विरोध किया। सरकार में जन प्रतिभागी राष्ट्रीय आंदोलनों का महत्त्वपूर्ण पक्ष था। साम्राज्यवादी राष्ट्रों की औपनिवेशिक नीतियों का विरोध करना, आर्थिक दोहन को समाप्त करना और स्वशासन, इन बातों ने समग्र विश्व के राष्ट्रीय उदारवादी आंदोलनों हेतु आधार तैयार किया। इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के ज्यादातर राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष प्रजातंत्र से संबंधित विचारधाराओं और कैसे राष्ट्रीय सम्पत्ति सृजित की जाए और उसमें भागीदारी की जाए आदि से संबंधित विचारधाराओं से जुड़े थे।

इसके विपरीत, औद्योगीकृत, साम्राज्यवादी देशों में राष्ट्रवाद आक्रामक हो गया था तथा औपनिवेशिक नीतियों और अन्य राष्ट्रों पर प्रभुत्व के समर्थन में हो गया। अगली इकाइयों के अपने अध्ययन में आप देखेंगे कि इससे इन राष्ट्रों में प्रतिस्पर्धा और बढ़ी तथा अन्ततः प्रथम विश्व युद्ध आरम्भ हो गया।

## आपने क्या सीखा

1900 से पूर्व की शताब्दी तीव्र जनसंख्या वृद्धि की अवधि थी, इसमें ज्यादातर वृद्धि यूरोप और उत्तरी अमरीका में हुई। इन स्थानों पर जनसंख्या वृद्धि औद्योगीकरण के साथ–साथ हुई। औद्योगिक समाज के आविर्भाव से अपेक्षित सामाजिक व्यवस्था प्राप्त करने संबंधी विचारों और सिद्धांतों अर्थात विचाराधाराओं का निर्माण और सृदृढ़ीकरण हुआ। 1900 तक साम्राज्यवाद से मुक्ति हेतु इन नीतियों से गैर–औद्योगिक समाजों के लोगों के संघर्षों को स्वरुप प्रदान करने के लिए विचारधाराएं बनने लगी थीं। उनका विकसित यूरोप तथा अविकसित औपनिवेशिक विश्व पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा।

## पाठांत प्रश्न

1: औद्योगीकरण ने मानव अस्तित्व के प्राचीन ढांचों में किस प्रकार परिवर्तन किया?

2. औद्योगीकरण ने वैश्विक उत्पादन और व्यापार के ढांचों में किस प्रकार परिवर्तन किया?
3. उदारवाद और समाजवाद कैसे एक दूसरे के विरोधी थे, जबकि दोनों मानव स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहते थे?

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

### 22.1

1. 75–95 प्रतिशत
2. यूरोप के भीतर
3. शहरी क्षेत्र औद्योगिक उत्पादन और वाणिज्यिक वितरण के स्थल थे। साक्षरता ऐसे क्षेत्रों में अत्यधिक उपयोगी अथवा प्रासंगिक थी और ग्रामीण क्षेत्रों में कम उपयोगी थी।
4. प्राथमिक विद्यालयों में बड़ी संख्या में उपस्थिति तथा समाचार पत्रों का व्यापक प्रचलन।

### 22.2

1. ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, अमरीका कुछ राष्ट्र थे जो 1900 में जीवाश्म ईंधन पर निर्भर थे।
2. 1900 में जीवाश्म ईंधन की कई समृद्ध आपूर्तियां यूरोप और अमरीका से बाहर स्थित थीं।
3. उपनिवेश असमान व्यापार से दुखी थे। वे मुख्यतया औद्योगीकृत राष्ट्रों के लिए कम दाम का खाद्य और कच्चा माल उत्पन्न करते थे।
4. ज्यादातर लोग उनसे दूर रहने वाले लोगों के लिए खाद्यान्न उत्पन्न करते तथा दूसरों द्वारा उत्पादित वस्तुओं की व्यापक मात्रा का उपभोग करते थे।
5. औपनिवेशिक शासकों ने नए सामाजिक भेदभाव सृजित करने तथा राष्ट्रीय जागरुकता के विकास में बाधा डालने के लिए भाषा और शिक्षा का उपयोग किया।

### 22.3

1. अत्याचार का विरोध, निजी सम्पत्ति, धर्म चुनने की स्वतंत्रता, बोलने तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, सरकार में भागीदारी।
2. उदारवादियों का मानना था कि आर्थिक गतिविधि में अपने फायदे में लगे व्यक्ति शक्तिशाली नियामक प्राधिकरण (सरकार) से कहीं ज्यादा बेहतर ढंग से कार्य करेंगे।
3. 1900 के प्रारंभ में ज्यादातर अनुदारवादी भू–स्वामी वर्गों के सदस्य थे या उन पर निर्भर थे। जबकि उदारवादी अक्सर उत्पादन और वाणिज्य में सक्रिय रहते थे।

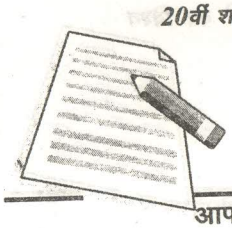

आपकी टिप्पणियाँ

1900 तक परम्परागत भू–स्वामी वर्गों के सदस्य उदारवादियों का समर्थन करने के लिए व्यापारी वर्ग से जुड़ गए, जबकि कुछ परम्परागत उदारवादी अनुदारवादियों की सहायता करते थे।

4. मार्क्सवादियों का मानना था कि मानव असमानता उत्पादन के साधनों तक पहुंच अथवा पहुंच की कभी के कारण थी। निजी सम्पति समाप्त करने तथा संसाधनों को राष्ट्र के नियंत्रण में रखने से लोग वास्तव में समान हो जाते।

5. जर्मनी जहां सोशल डेमोक्रेटिक वर्कर्स पार्टी ने कामगार वर्गों से ज्यादातर वोट प्राप्त किए।

6. समाजवादियों का मानना था कि पूंजीवादियों और श्रमजीवी वर्ग के बीच समाज का बँटवारा विश्व स्तर पर घट रहा था। अतः सभी राष्ट्रों/उपनिवेशों के श्रमजीवियों को दमनकारी पूंजीपतियों के विरुद्ध सर्वत्र संघर्षों में रुचि रखनी चाहिए।

## पाठांत प्रश्नों हेतु संकेत

1. अनुच्छेद 22.1–22.4 देखें
2. अनुच्छेद 22.5 देखें
3. अनुच्छेद 22.6.2 और 22.6.4 देखें

## शब्दावली

1. **बुर्जुआ** – सामाजिक वर्ग के ऐसे लोग जिनके पास घरों, फैक्टरियों के रुप में पर्याप्त सम्पत्ति थी अथवा बैंको में खाते थे – पूंजीपति।

2. **सी. ई** – सामान्य काल – ईसाई कैलेन्डरों के अनुसार निर्धारित ऐतिहासिक कालावधि इसमें ईसा मसीह के जन्म के बाद के वर्ष को एक वर्ष माना जाता है। अन्य धार्मिक परंपराओं (उदाहरण के लिए यहूदी धर्म, हिन्दू धर्म, इस्लाम) पर केन्द्रित सभ्यताआ और राष्ट्रों में अलग–अलग कैलेन्डरों का अनुसरण किया जाता था जबकि आज संपूर्ण विश्व में ईसाई कैलेंडर का व्यापक उपयोग किया जाता है। बीसवीं शताब्दी का अर्थ है 1900 से आरम्भ होने वाले वर्षों का समय।

3. **विचारधारा/आदर्श** – सिद्धांतों अथवा विचारों अथवा वैश्विक विचार का समूह जो समाज के विकास हेतु विशेष योजना का समर्थन करता है; सामाजिक दर्शन शास्त्र।

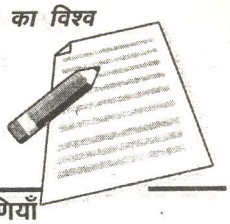

आपकी टिप्पणियाँ

4. **साम्राज्यवाद** – (1) मूल देश पर आश्रित उपनिवेशों, प्रदेशों का अधिग्रहण करने अथवा उनके रखरखाव करने की प्रक्रिया।

(2) साम्राज्य अधिग्रहण करने की विचारधारा

5. **श्रमवाद/मजदूरदलवादी** – कामगारों के राजनीतिक अथवा आर्थिक संगठनों का संकेत देते हैं। 'श्रमवाद' नियोक्ताओं अथवा राष्ट्र से श्रम अधिकारों की रक्षा करता है। कुछ मजदूर–दलों के समर्थक मार्क्सवादी हैं।

6. **(छापे की) संस्कृति** – मुद्रित पाठों जैसे पुस्तकों और समाचार पत्रों पर आधारित संचार और ज्ञान का ढांचा (जो लोगों द्वारा हाथ से पाठो की प्रतिलिपि करने के बजाय) यांत्रिक साधनों के माध्यम से तत्काल प्रतिकृति कर सकत हैं। छापे की संस्कृति साक्षरता, प्रतिलिपि बनाने और मुद्रण की सस्ती प्रौद्योगिकी पर निर्भरहै। यूरोप, जापान और कोरिया में 1500 सी. ई. में छापे की संस्कृति थी, जिसमें इन सभी स्थानों पर कम संख्या में पाठक थे। 1850 तक संपूर्ण विश्व के करोड़ों लोग प्रिंट संस्कृति से जुड़ गए थे जो ज्यादातर नगरों और शहरा में रहते थे। स्टॉक्स (सट्टा बाजार) की कीमत जानने के लिए समाचार पत्र पढ़ना और उपन्यास पढ़ना दोनों ही छापे की संस्कृति का व्यावहारिक अनुभव हैं।

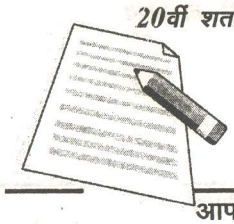

आपकी टिप्पणियाँ

# 23

# प्रथम विश्व युद्ध और रूसी क्रांति

प्रथम विश्व युद्ध तथा रूसी क्रांति उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ के वर्षों में हुए परिवर्तनों और शृंखलाबद्ध घटनाओं का परिणाम थी। दोनों ही बहुत बड़ी महत्त्वपूर्ण घटनाएं थीं और इनसे लाखों लोग प्रभावित हुए थे। दोनों ने समग्र रूप से बीसवीं शताब्दी को प्रभावित किया तथा उसे नया स्वरूप प्रदान किया।

## उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- कुछ ऐसे घटकों को पहचान पाएँगे जो 1914 में युद्ध के कारण बने और इस बात पर चर्चा कर सकेंगे कि क्या युद्ध के ऐसे घटक आज के विश्व में भी मौजूद हैं;
- 1917 के रूसी साम्राज्य में ही यह क्रांति कैसे संभव हुई तथा किसी अन्य देश में क्रांति में क्यों नहीं हुई इसकी व्याख्या कर सकेंगे;
- दोनों युद्धों और रूसी क्रांति के तात्कालिक और दीर्घकालिक परिणामों का विश्लेषण कर सकेंगे; और
- भारत के लिए इस युद्ध और इस क्रांति की क्या सार्थकता है; इस पर चर्चा कर सकेंगे।

## 23.1 इतिहास में प्रथम विश्व युद्ध पिछले युद्धों से किस प्रकार भिन्न था

स्पेन, नीदरलैंड, तीन स्केन्डीनेवियन राष्ट्रों और स्विटजरलैंड को छोड़कर यूरोप के सभी राष्ट्र ऐसे युद्ध में सम्मिलित थे जिन्होंने संपूर्ण विश्व को हिंसा और दुःख से जोड़ दिया। अन्य क्षेत्रों, विशेष रूप से उपनिवेशों पर शासन करने वाले राष्ट्रों के लिए उनकी सेनाओं को भी इस युद्ध में लड़ाई लड़नी पड़ी। उदाहरण के लिए, भारतीय सैनिकों को भारत से बाहर ब्रिटेन के लिए लड़ाई लड़नी पड़ी। यह अनुमान लगाया गया है कि ब्रिटेन की तरफ से कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, दक्षिण अफ्रीका और भारत (जिन क्षेत्रों पर ब्रिटेन का शासन था) से 30 लाख से अधिक सैनिक आए थे। इन युद्धों का क्षेत्र व्यापक था अर्थात इस युद्ध के क्षेत्रों के प्रदेश में यूरोप, एशिया, अफ्रीका और प्रशांत महासागर सम्मिलित थे। पहली बार लगभग समग्र विश्व के लोग ऐसे युद्ध में सम्मिलित थे, जिसे वे विश्व युद्ध के रूप में जानते थे।

युद्ध में नई प्रौद्योगिकियों, हवाई जहाजों, टैंकों और पनडुब्बियों का उपयोग किया गया था, जिन्हें इससे पहले के युद्धों में नहीं देखा गया था। परन्तु साधारण ढंग से भूमि पर लड़े जाने के अतिरिक्त ज्यादातर लोग इसे इसलिए याद रखेंगे कि युद्ध की ज्यादातर फोटो में सैनिकों को भूमि पर खाइयों में लड़ते दिखाया गया था। समुद्री युद्ध दक्षिण अटलांटिक और प्रशांत महासागर में हुआ। ब्रिटेन तथा इसके मित्र राष्ट्रों की और से 100,000 से अधिक सैन्य टुकड़ियों के साथ अमेरीका पहली बार विश्व स्तर पर सम्मिलित हुआ था।

इस विश्व युद्ध के कारण लोगों को भारी मात्रा में सैनिकों के रूप में संगठित किया गया, जबकि महिलाओं को शहरों में कई कार्यों के लिए तथा युद्ध क्षेत्रों में उन्हें नर्स के रूप में रखा गया। सरकारों ने यह सुनिश्चित करने के लिए अनेक उपाय किए कि उनकी अपनी सेनाओं को किसी वस्तु की कमी नहीं होगी। जैसे वे लोगों को संगठित करते थे वैसे ही उन्होंने खाने के लिए किसानों से खाद्यान्न एकत्रित किए। उन्होंने सेना की उपकरण और गोलाबारूद संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उसी वेतन पर अधिक लंबे समय तक कार्य करने के लिए कामगारों के अधिकारों को समाप्त कर दिया। खाद्य और रोजमर्रा के उपभोग वाली वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि हो गई क्योंकि ज्यादा निवेश युद्ध संबंधी उद्योगों और युद्ध संबंधी अन्य आवश्यकताओं पर किया गया। सामान्यतः लोगों में निराशा का भाव था।

हमें यह याद रखना चाहिए कि युद्ध अथवा युद्ध से आई विपत्तियों के कारण 10 लाख लोग मारे गए, 20 लाख लोग घायल हो गए और लाखों लोग शरणार्थी अथवा बेरोजगार हो गए थे क्योंकि नगर और उद्योग नष्ट हो गए थे। देशों के सीमा क्षेत्रों पर रहने वाले ही नहीं वरन राष्ट्र के आंतरिक भागों में रहने वाले लोग भी बेघर हो गए थे। युद्ध के इतिहास में पहली बार असैनिक जन समुदाय प्रभावित और घायल हुआ। असैनिक क्षेत्रों पर बम डाले गए और युद्ध के कारण अकाल तथा महामारियाँ फैलीं जिनसे लाखों नागरिकों की मौत हो गई।

जब यह युद्ध शुरू हुआ तो लोगों ने सोचा कि यह युद्ध छोटा होगा, लेकिन यह चार वर्ष तक चला। आप कल्पना कर सकते हैं कि लगातार चार वर्ष तक युद्ध में संलग्न रहने वाले राष्ट्रों के लोगों का जीवन कैसा रहा होगा। इसने मौजूदा सामाजिक–आर्थिक और राजनीतिक ढाँचे को नष्ट कर दिया। संपूर्ण विश्व की अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया। चारों ओर फैलने तथा पहली बार इतने बड़े स्तर पर विरोधी राष्ट्रों द्वारा सभी संसाधनों को संगठित करने के कारण इसे प्रथम विश्व युद्ध के रूप में जाना गया।

इन सब कारणों से इस युद्ध को विश्व इतिहास का निर्णायक बिन्दु माना जाता है।

## 23.2 युद्ध के कारण

प्रथम विश्व युद्ध के कारण जटिल हैं, हालांकि यह युद्ध एक विशेष घटना के कारण प्रारंभ हुआ था जो कहीं भी, किसी भी समय घट सकती थी। सर्बिया और आस्ट्रिया में शत्रुता थी जिसके कारण हिब्सबर्ग साम्राज्य के सिंहासन के उत्तराधिकारी आर्क ड्यूक फ्रेंज फरदिनांद की 1914 में साराजीवों में हत्या कर दी गई थी। यही घटना मुख्य कारण बनी जो प्रथम विश्व युद्ध के रूप में परिवर्तित हो गई।

एक घटना के ऐसे विध्वंसकारी परिणाम क्यों हुए, जिनके कारण अंततः संपूर्ण विश्व में चार वर्ष तक युद्ध चला?

आप प्रारंभिक पाठों में उपनिवेशों हेतु दौड़ के बारे में पहले ही पढ़ चुके हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कैसे पूर्ण रूप से साम्राज्यवाद प्रणाली ने स्थान बनाया। उदाहरण के लिए, 1876 में अफ्रीका का 10 प्रतिशत से ज्यादा हिस्सा यूरोप के शासन के अधीन नहीं था परन्तु 1900 तक वहाँ 90 प्रतिशत से अधिक उपनिवेश बन गए। आप देख चुके हैं कि जर्मनी इस दौड़ में पीछे रह गया था लेकिन उसने भी यह महसूस करना शुरू कर दिया कि शासन करने के लिए उसे भी अपने उपनिवेश स्थापित करने चाहिए। 1914 तक ये शक्तियां अपने प्रभाव क्षेत्र को बढ़ाने, अपने अधीन और अधिक क्षेत्र लाने तथा विश्व के संसाधनों में अधिक भागीदारी करने को तैयार थीं।

ज्यादातर विश्व इनमें पहले से ही बँट चुका था, प्रत्येक अपने अधीन वाले क्षेत्रों के आर्थिक तथा राजनीतिक नियंत्रण विश्व को पुनः व्यवस्थित करके बढ़ा सकते थे अथवा दूसरे के खर्च पर अपने हिस्से को एक दूसरे से लड़कर बढ़ा सकते थे। तथापि उनमें से किसी ने भी इतने बड़े युद्ध के बारे में नहीं सोचा था, फिर भी संघर्ष की संभावना हमेशा रहती थी।

वे दूसरे देश में नए क्षेत्र प्राप्त करने अथवा पहले से अपने अधीन वाले क्षेत्रों की सुरक्षा करने के लिए छोटे–छोटे युद्ध करते थे; और कभी–कभी वे अपने प्रतिद्वंदी को रोकने के लिए दूसरी शक्ति का सहयोग करते थे। जर्मनी के बिस्मार्क ने 1879 में ऑस्ट्रिया–हंगरी के साथ सहयोग किया था, जो द्विपक्षीय सहयोग के रूप में जाना जाता था। 1894 में जब इटली इसमें सम्मिलित हो गया तो यह त्रिपक्षीय सहयोग बन गया। दूसरी ओर 1884 में फ्रांस ने रूस के साथ सहयोग किया, 1904 में फ्रांस ने ब्रिटेन के साथ करार किया और 1907 में ब्रिटेन ने रूस के साथ संधि की। यह त्रिपक्षीय संधि के रूप में जानी जाती है।

यूरोप के नेताओं ने सोचा कि इन सहयोगों से शक्ति के संतुलन के माध्यम से युद्ध रोका जा सकेगा। वास्तव में यह हुआ कि इन सहयोग से देश एक–दूसरे से बंध गए थे। जब एक देश युद्ध करता तो अपने सहयोग के दूसरे देशों को उसकी सहायता के लिए इस युद्ध में सम्मिलित होना पड़ता था। इस प्रकार साम्राज्यवादी राष्ट्रों में प्रतिद्वंद्विताएँ और संघर्ष इस युद्ध के मुख्य कारण बन गए।

राष्ट्रीय आंदोलन उन्नीसवीं शताब्दी की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ थीं। उन्नीसवीं के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में राष्ट्रवाद में भी परिवर्तन आया। विकसित पूंजीवादी राष्ट्रों में यह नियंत्रण के क्षेत्रों के विस्तार और उसकी सैन्य शक्ति की वृद्धि से जुड़ गया। फ्रांस की क्रांति इसकी 'स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व' के आदर्शों से आई। दबाव का बोध अब नहीं था। ये राष्ट्र एक देश में प्रचलित अक्षुण्णता के विचार से और अधिक नहीं जुड़ना चाहते थे। दूसरी ओर बहु–राष्ट्रीय साम्राज्यों जैसे, ऑस्ट्रिया–हंगरी और रूस साम्राज्य में लोग स्वयं को मुक्त करना और स्वतंत्र राष्ट्रों का निर्माण करना चाहते थे, सभी बड़ी शक्तियां उसका विरोध करती थीं।

इस प्रकार, बड़ी शक्तियां अभूतपूर्व शस्त्रास्त्रों की दौड़ में लग गईं तथा उन्होंने विशाल थल और जल सेनाएं तैयार कर लीं। सैन्यवाद विदेशी नीति का मुख्य पहलू बन गया। घरेलू नीतियों का लक्ष्य अपने नागरिकों का कल्याण करने के बजाय अपनी सैन्य शक्तियों तथा सामर्थ्य को बढ़ाना था। जन संचार को इसमें मुख्य साधन बनाया गया। समाचार पत्रों ने आक्रामक राष्ट्रवाद का प्रचार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

1901 में अपेक्षाकृत कुछ लोगों को कहीं भी वोट डालने की अनुमति दी गई और महिलाओं को व्यावहारिक रूप से कहीं भी वोट डालने की अनुमति नहीं थी। अतः बहुत कम लोग ही अपनी सरकारों द्वारा बनाई गई नीतियों से प्राभावित होते थे। सरकारें पूंजीपतियों और भू–स्वामियों के हितों का ध्यान रखती थीं और इनके प्रभाव में सरकारें अपनी नियंत्रणाधीन क्षेत्रों में वृद्धि करने के लिए आपस में प्रतिस्पर्धा करती थीं। यद्यपि इस प्रतिस्पर्धा में आम आदमी की भागीदारी कम थी। फिर भी युद्ध प्रारंभ होने पर लोग अपने राष्ट्रों की सहायता के लिए निकल पड़ते थे।

लोग आधुनिक युद्ध की विभीषिका को अभी तक नहीं समझ पाए थे। यह युद्ध का प्रभाव था कि लोगों ने इस युद्ध पर पुनर्विचार किया तथा शांति की मांग शुरू कर दी।

## 23.3 युद्ध की प्रक्रिया

हम युद्ध अथवा मुख्य आंदोलनों की प्रक्रिया की विस्तार से चर्चा नहीं करेंगे। परन्तु आपको यह जान लेना चाहिए कि ऑस्ट्रिया ने सरबिया में हुई हत्या को युद्ध का कारण बताया और उसने इसका बदला लेने का निर्णय लिया तो इसके त्रिपक्षीय सहयोगी राष्ट्र जर्मनी और इटली इसके पक्ष में आ गए तथा अन्य शक्तियां (ब्रिटेन, फ्रांस और रूस) विरोधी पक्ष में आ गईं।

जर्मनी ने फ्रांस की ओर सेनाएं भेजीं तथा ऐसा प्रतीत हुआ कि उसे सफलता प्राप्त हो रही है, तब रूस ने पूर्व से जर्मनी तथा ऑस्ट्रिया पर आक्रमण किया। इस तरह यह युद्ध काफी जटिल हो गया। जमीन पर, खाइयों में युद्ध लगातार चार वर्षों तक चला, क्योंकि दोनों ही पक्ष बराबर थे। खाइयां खोदने के लिए उपनिवेशों के श्रमिकों का उपयोग किया गया। तत्पश्चात यह युद्ध एशिया और अफ्रीका के क्षेत्रों में फैल गया।

इस युद्ध में प्रौद्योगिकी के उपयोग का अर्थ था, सभी राष्ट्रों के अधिक से अधिक लोगों का हताहत होना। उदाहरण के लिए, सोमी के युद्ध के पहले दिन 60,000 ब्रिटिश सैनिक मारे गए थे अथवा घायल हुए थे।

इस युद्ध की प्रक्रिया के दौरान इटली ने पक्ष बदल लिया। अप्रैल 1917 में अमरीका ने भी जर्मनी से युद्ध की घोषणा कर दी। इस स्थिति में रूस साम्राज्य का क्रांतिकारी आंदोलन निर्णायक घटक था।

अक्तूबर, 1917 में रूसी क्रांति सफल हुई और जब वहाँ कम्युनिस्ट सत्ता में आए तो रूस युद्ध से अलग हो गया। उन्होंने मार्च 1918 में जर्मनी के साथ शांति संधि पर हस्ताक्षर किए। यह संधि रूस के लिए बहुत अप्रिय थी, परन्तु रूस में लेनिन के नेतृत्व वाली नई सरकार इससे सहमत थी, क्योंकि वे शुरू से ही युद्ध का विरोध कर रहे थे।

ये जटिल मामले न सिर्फ जर्मनी, बल्कि ब्रिटेन और फ्रांस के लिए भी थे, नया रूस बड़ा दुश्मन प्रतीत होता था, क्योंकि वे मूल रूप से साम्यवाद के विरोधी थे।

अतः 1918 के प्रारंभ से युद्ध की नियति बदली और जर्मन सेनाओं ने बदला लेना शुरू किया, तो ब्रिटेन तथा फ्रांस शांति के लिए सहमत हो गए। जर्मनी के कामगारों ने उसी प्रकार क्रांति की धमकी दी, जिस प्रकार से रुस के कामगारों ने दी थी। नवम्बर, 1918

आपकी टिप्पणियाँ

में युद्ध विराम लागू हुआ और तत्पश्चात सभी शक्तियों ने मिलकर रूस में क्रांति को असफल बनाने के लिए अपनी ताकत लगा दी। इस बारे में आप अगले भाग में कुछ और जान सकेंगे।

### पाठगत प्रश्न 23.1

1. प्रथम विश्व युद्ध में कौन–कौन से नए हथियार उपयोग में लाए गए थे?

2. 1914 तक किए गए दो मुख्य अंतर्राष्ट्रीय सहयोगों के नाम बताइए।

3. प्रथम विश्व युद्ध से कितने लोग प्रभावित हुए थे?

4. प्रथम विश्व युद्ध में भारतीय सैनिकों ने किसकी ओर से युद्ध किया था।

## 23.4 रूसी क्रांति, 1917

इस युद्ध के समाप्त होने से पहले 1917 में रूसी क्रांति आई थी। यह बोल्शेविक क्रांति के रूप में भी जानी जाती है, क्योंकि राजनीतिक समूह के रूप में बोल्शेविक ने इस क्रांति को सफल बनाने और इसकी नीतियों को भी निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

यह इतिहास में पहली समाजवादी क्रांति थी और यह साम्यवादी आदर्शों से प्रेरित थी। पिछले पाठों में आप यह पढ़ चुके हैं कि साम्यवाद कैसे पूंजीवाद की तुलना में अधिक समानता और सामाजिक न्याय प्रदान करता है। यह क्रांति कामगारों–श्रमिक वर्ग और किसानों के आंदोलनों के परिणामस्वरूप आई।

1917 तक रूसी साम्राज्य लंबे युद्ध के परिणामों और देश के भीतर चल रहे राजनीतिक तथा सामाजिक आंदोलनों के दबाव में था। फरवरी 1917 तक रूस बहु–राष्ट्रवादी साम्राज्य था जिस पर तानाशाह द्वारा शासन किया जाता था, जो जार के रूप में जाना जाता था। इसका राज्य क्षेत्र विशाल था। इसमें मध्य एशिया का बड़ा भाग और पूर्वी यूरोप के भाग सम्मिलित थे। संस्थानों के कोई प्रतिनिधि नहीं थे, यहां कोई भी राजनीतिक अथवा व्यापारिक संगठन बनाने का अधिकार नहीं था। यहां चुनाव नहीं होते थे। कड़ी सेंसरशिप थी और लोगों को मनमाने तरीके से बंदी बना लिया जाता था। यहां कोई धार्मिक सहिष्णुता नहीं थी, इस साम्राज्य में दूसरे देशों के लोगों और अल्पसंख्यकों को रूस के नागरिकों के बराबर अधिकार प्राप्त नहीं थे क्योंकि जार, निकोलस द्वितीय रूसी रोमनोव वंश का था। जार ने यूरोप के सभी प्रजातांत्रिक आंदोलनों के विरुद्ध अपनी सैन्य और कूटनीतिक ताकत का उपयोग किया। इसके लिए यह यूरोप के सिपाही के रूप में जाना जाता है। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में पश्चिमी यूरोप की तुलना में ये परिस्थितियां काफी कष्टकर तथा बहुत भिन्न थीं।

## 23.5 प्राचीन और नवीन

यद्यपि राजनीतिक प्रणाली निरंकुश बनी हुई थी तथापि अर्थव्यवस्था और समाज में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे, जिनसे नई महत्त्वाकांक्षाएं सृजित हुईं। नए विचार विकसित हुए तथा समाज के कई वर्ग जार के अत्याचारी शासन से असंतुष्ट थे। चूंकि उनके पास कोई संसदीय प्रणाली अथवा चुनाव नहीं थे जिनके माध्यम से वे जार की नीतियों के प्रति अपना विरोध व्यक्त कर सकते, इसलिए उन्हें क्रांति का मार्ग अपनाना पड़ा। समाज को प्रभावित करने वाली नीतियां बनाने के लिए उन्हें तानाशाही प्रणाली समाप्त करनी पड़ी। यूरोप के अन्य देशों और रूसी साम्राज्य में यह बहुत बड़ा अंतर था।

## 23.6 कृषि तथा असंतुष्ट किसान

किसान भी बहुत अधिक असंतुष्ट थे। पश्चिमी और मध्य यूरोप की तरह रूसी साम्राज्य में भी कृषक–दास स्वतंत्र थे हालांकि ऐसा बहुत बाद में 1861 के अंत में जाकर हुआ। इस भू–सुधार के बावजूद भू–अभिजात वर्ग मजबूत बना हुआ था और उसने किसानों का दमन करना जारी रखा था। साथ ही कृषकों के पास पर्याप्त भूमि भी नहीं थी। जनसंख्या का 80 प्रतिशत किसान थे, परन्तु उनके पास मुश्किल से 50 प्रतिशत भूमि थी। इस प्रकार भूमि की मांग जार के विरुद्ध क्रोध का मुख्य कारण थी क्योंकि उसने अपर्याप्त भू–सुधार द्वारा उन्हें निराश किया।

साथ ही मुक्त किसानों को भूमि और स्वतंत्रता के लिए भारी खामियाजा भुगतना पड़ा, क्योंकि जार बड़े जमींदारों को जरूरत से ज्यादा मुआवजा देकर उनसे सद्भाव और सहयोग बनाए रखना चाहता था। किसानों को भारी कीमत चुकानी पड़ी, जिससे वे हमेशा के लिए कर्जदार हो गए और उन्हें जमींदारों के लिए कम मजदूरी पर काम करने के लिए मजबूर होना पड़ा। किसानों पर करों का भी बहुत भार था।

कृषि हमेशा पिछड़ी रही, क्योंकि किसानों के पास इतना धन नहीं था कि वे अपनी भूमि सुधारने के लिए निवेश कर सकें और जमींदार सोचते थे कि मशीनें खरीदने के लिए क्यों पैसा खर्च किया जाए क्योंकि कम मजदूरी पर कृषक–श्रमिक मिल जाते थे।

किसानों के हित के सभी मामलों में अभिजात वर्ग ने जमींदारों का पक्ष लिया तथा किसानों के विद्रोहों को दबाने के लिए सेना भेजी। चूंकि कृषि रूसी अर्थव्यवस्था का मुख्य क्षेत्र थी और किसानों की जनसंख्या भी अधिक थी इसलिए कृषि का पिछड़ापन और किसानों का असंतोष इस क्रांति के मुख्य घटक बन गए। 19वीं शताब्दी के दौरान किसानों के विद्रोह जारी थे और 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में ये सामान्य क्रांतिकारी आंदोलन के हिस्से बन गए।

## 23.7 औद्योगिकीकरण और श्रमिकों का असंतोष

रूसी साम्राज्य में श्रमिकों का आंदोलन यूरोप के अन्य भागों की तुलना में सशक्त तथा ज्यादा राजनीतिक था। यह यहाँ के औद्योगिकीकरण के स्वरूप और राजनीतिक परिस्थितियों से संबंध रखता था। पश्चिमी यूरोप की तुलना में रूस में औद्योगिकीकरण विलंब से आया था, लेकिन यह काफी तीव्र था। इसका अर्थ था कि यहाँ औद्योगिकीकरण की प्रारंभिक अवस्थाओं में विशाल श्रमिकों वाली कई बड़ी–बड़ी फैक्टरियां थीं। श्रमिक वर्ग के आंदोलन पश्चिमी यूरोप के देशों की तुलना में यहां तीव्र गति से विकसित हुए और

आपकी टिप्पणियाँ

यहां पूंजीवादी कमजोर हो गए। वे श्रमिक वर्ग के आंदोलन के समक्ष अपनी शक्ति को संचित नहीं कर पाए थे। 19वीं शताब्दी के अंतिम दशक में अनेक हड़तालें हुई तथा 1905 तक श्रमिकों ने क्रांतिकारी आंदोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

रूसी साम्राज्य में श्रमिकों का आंदोलन अन्य देशों की तुलना में कहीं अधिक उग्रवादी तथा राजनीतिक था। यह दोनों तरह से अभिजात वर्ग के विरुद्ध था, जो उन्हें संगठन बनाने की अनुमति नहीं देता था और उनके नियोक्ताओं का पक्ष लेता था और श्रमिकों का आंदोलन उन नियोक्ताओं के खिलाफ था, जो फैक्टरियों के स्वामी थे और उनकी न्यूनतम मजदूरी तथा खराब कार्य की परिस्थितियों के लिए जिम्मेवार थे। उनका आंदोलन अन्य राष्ट्रों की तुलना में साम्यवाद की ओर अधिक उन्मुख था।

20वीं शताब्दी के प्रथम दशक तक महिलाओं की श्रमिक वर्ग और श्रमिक वर्ग के संगठनों में भागीदारी अच्छी–खासी थी। जिसके परिणामस्वरूप उनसे संबंधित मामले श्रमिकों के अधिकारों और महिलाओं की समानता विषयक चर्चाओं में प्रतिबिंबित होना शुरू हो गए थे। श्रमिक महिलाएं बड़ी संख्या में श्रमिक वर्ग के आंदोलनों में भाग लेने लगी थीं।

## 23.8 राष्ट्रीयताओं के बीच असंतोष

रूसी रोमेनोव राजवंश और अन्य राष्ट्रीय प्रदेशों में लगभग औपनिवेशिक संबंध थे इसलिए रूसी प्रदेशों में उद्योगों के विकास हेतु कच्चे माल के स्रोत के रूप में इन क्षेत्रों का उपयोग किया जाता था। आपको स्मरण होगा कि ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत भारत के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ था। रूसी अभिजात वर्ग को समाप्त करने में काकेशियंस, पॉलिश, कजाख, लाटविएस, ऐस्टोनियंस जैसे राष्ट्रों और अन्य राष्ट्रों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

## 23.9 नेतृत्व तथा दूरदृष्टि

क्रांतिकारी आंदोलन को सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि समर्पित नेतृत्व होना चाहिए, निश्चित आदर्शों द्वारा इसका मार्गदर्शन किया जाना चाहिए और परिवर्तन का एक कार्यक्रम होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, लोग विध्वंसकारी नहीं होने चाहिए, उनके पास ऐसा विचार होना चाहिए कि वे क्या निर्माण करना चाहते हैं। वे ऐसे संगठनों का गठन करने में समर्थ होने चाहिए जो उनके आंदोलनों को आगे बढ़ा सकें।

20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कई राजनीतिक समूह सक्रिय थे, परन्तु वे गैर कानूनी थे और वे गुप्त रूप से कार्य करते थे, जार के सिपाही उनकी खोज में लगे रहते थे और पकड़े जाने पर उन्हें कड़ी यातना और दंड दिया जाता था। तथापि उन्होंने राजनीतिक शिक्षा, राजनीतिक प्रचार–प्रसार और आंदोलनों के माध्यम से लोगों विशेष रूप से श्रमिकों और किसानों में चेतना का निर्माण करने में नेतृत्वपूर्ण और महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस आधार पर समाज के सभी वर्गों श्रमिकों, किसानों और सैनिकों, विद्यार्थियों, और अध्यापकों, सभी प्रकार के कर्मचारियों और महिलाओं के लाखों संगठनों का गठन किया गया। इनमें से कई संगठनों के राजनीतिक पार्टियों से घनिष्ठ संबंध थे और ये राजनीतिक चर्चाओं और विचारों के लिए प्रतिक्रियाशील थे।

सन 1917 में महिला संगठनों ने श्रमिक संगठनों के समान कामकाजी महिलाओं के हितों को प्रतिबिंबित करना प्रारंभ कर दिया था, तथापि महिलाओं के इस तरह से ध्यान आकृष्ट करने हेतु लगातार संघर्ष करना पड़ा। हालांकि जन आंदोलनों में महिलाओं की अत्यधिक भागीदारी होती थीं, तथापि अभी तक बहुत कम महिलाएं नेतृत्व करने की स्थिति में थीं।

महत्त्वपूर्ण राजनीतिक समूह जनवादी (19वीं शताब्दी के अंत में) और साम्यवादी क्रांतिकारी, विभिन्न प्रकार के उदारवादी तथा सामाजिक लोकतंत्रवादी (मार्क्सवादी) थे। सामाजिक लोकतंत्रवादियों की दो पार्टियां थीं – होल्शेविक (अर्थात रूस में बहुमत वाली) और मेंशेविक (अर्थात अल्पसंख्यक)। आपस में मतभेदों के परिणामस्वरूप अलग होने के बाद इनके ये नाम पड़े। इन समूहों में क्रांति लाने और रूसी समाज तथा राजनीतिक प्रणाली में परिवर्तन लाने के संबंध में विभिन्न विचारधाराएं थीं।

लेनिन 1917 की रूसी क्रांति का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण नेता था। दूसरा त्रोत्स्की था। दोनों ही बोल्शेविक थे। तथापि यह कहना उचित होगा कि यहां भी हजारों पुरुष और महिलाएं महत्त्वपूर्ण नेता थे जैसा कि हमारे स्वतंत्रता आंदोलन में थे। उनके प्रयासों वीरता और बलिदानों के बिना क्रांति सफल नहीं हो सकती थी।

## 23.10 क्रांति के चरण

19वीं शताब्दी में रूसी क्रांतिकारी आंदोलन का उस समय विकास हुआ जब अभिजात वर्ग के कुछ सदस्यों ने यह महसूस करना शुरू कर दिया था कि जार की राजनीतिक प्रणाली अत्यधिक कष्टकर थी और रूसी समाज भी अन्यायपूर्ण था। उन्होंने विशेष रूप से कृषकों की हालत के बारे में सोचा। रूस कैसे प्रगति कर सकता था, जबकि उसके ज्यादातर लोगों की हालत इतनी खराब हो? अभिजात वर्ग के इन सदस्यों और नए उभरे मध्यमवर्ग ने बुद्धिजीवी वर्ग का गठन किया जो रूसी समाज तथा राजनीतिक प्रणाली की आलोचना करता था तथा इसके रूपांतरण के लिए काम करता था। इन्होंने गुप्त समाजों तथा छोटे राजनीतिक समूहों का निर्माण किया। ये कड़ी सेंसरशिप और राजनीतिक गतिविधि पर प्रतिबंध होने के कारण अपने विचारों का प्रचार–प्रसार करने के लिए खुले तौर पर आंदोलन अथवा काम नहीं कर सकते थे, इसलिए ये समर्पित क्रांतिकारी बन गए। इन्होंने संविधान और चुनावों की मांग की। कई महिलाएं सक्रिय क्रांतिकारी थी। जब वे पकड़ी जाती थीं तो उन्हें क्रूरता से दंड दिए जाते थे। इसके बावजूद भी आंदोलन आगे बढ़ रहा था।

जैसे ही श्रमिक और किसान अपनी जिंदगी के अन्यायों के लिए लड़ने हेतु आश्वस्त हो गए, उन्होंने अभिजात वर्ग के विरुद्ध भी संघर्ष करना शुरू कर दिया। जब इनका संपर्क क्रांतिकारियों से हुआ, तो दोनों आंदोलन और तीव्र हो गए। 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में रूसी क्रांतिकारी आंदोलन व्यापक आधार वाला आंदोलन हो गया था, तथा 'क्रांति' एक नारा बन गई।

एकतंत्र पर पहला मुख्य जन आक्रमण 1905 में हुआ। यह महत्त्वपूर्ण क्रांतिकारी विद्रोह असफल रहा और इन आंदोलनों को दबा दिया गया। परन्तु क्योंकि लोग इस अनुभव से बहुत सारी महत्त्वपूर्ण सीख ले चुके थे, इसलिए बाद में लेनिन ने 1917 की क्रांति के लिए इसे 'पूर्वाभ्यास' का नाम दिया था। मुख्य माँगों में प्रजातांत्रिक गणराज्य, पूर्ण मताधिकार,

आपकी टिप्पणियाँ

किसानों हेतु भूमि, श्रमिकों के लिए अधिक मजदूरी और कम कार्य–समय सम्मिलित थे। महिला की समानता, विभिन्न नागरिकताओं हेतु स्वनिर्धारण तथा मृत्युदंड समाप्त करने संबंधी अन्य माँगे थीं। पहली बार वहाँ आम हड़ताल हुई। सेना और नौसेना की टुकड़ियों ने भी विद्रोह कर दिया। सोवियत के रूप में प्रसिद्ध श्रमिक वर्ग के क्रांतिकारी संगठन का गठन किया गया। इसने क्रांति में अग्रणी भूमिका निभाई।

इसके बाद कई वर्षों तक दमन चलता रहा, परन्तु प्रथम विश्व युद्ध के बाद यह क्रांतिकारी आंदोलन पुनः सक्रिय हो गया और इसमें वे लोग पुनः सम्मिलित हो गए जिनमें से ज्यादातर लोगों ने युद्ध के प्रभाव को सीधे तौर पर महसूस करना और जार की नीतियों की प्रकृति को समझना प्रारंभ कर दिया था। कठपुतली के समान मंत्रिमंडल कार्य नहीं करता था तथा कमजोर संसद (दुमा) जन आकांक्षाओं को पूरा नहीं कर सकती थी।

1917 तक रूसी साम्राज्य के ज्यादातर लोगों ने निरंकुश वर्ग को हटाने तथा मुद्दों को अपने हाथों में लेने का निर्णय लिया। इस वातावरण में ब्रेड की कमी के कारण फरवरी क्रांति शुरू हुई और महिलाओं ने प्रदर्शन किया जिसमें उन्होंने उनका दमन करने वाले जार के बजाय अपने भाइयों और बहिनों की सहायता करने के लिए सैनिकों का आह्वान किया। इस युद्ध से ऊबे हुए सैनिकों ने भी विद्रोह करने वाले लोगों पर गोलियां नहीं चलाई।

कुछ दिनों बाद मांग आई 'एकतंत्र मुर्दाबाद'। राजधानी शहर सेंट पीटर्सबर्ग की गलियों में लाल झंडों का प्रभुत्व कायम हो गया तथा साम्राज्य का सारा क्षेत्र क्रांति के नारों से गूंजने लगा। एकतंत्र को समाप्त कर उसके स्थान पर अस्थायी सरकार बनाई गई। श्रमिकों और किसानों ने इस परिवर्तन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा बुर्जुआ वर्ग ने इसका समर्थन किया। यहां तक कि सैनिकों ने भी क्रांतिकारी ताकतों का पक्ष लिया। सेंट पीटर्सबर्ग का नाम बदलकर पेट्रोग्रेड कर दिया गया।

इस अस्थायी सरकार ने राजनीतिक स्वतंत्रता हेतु शर्ते बनाईं जैसे संगठनों का गठन करने का अधिकार तथा वाक् स्वतंत्रता, परन्तु इसने लोगों को प्रभावित करने वाली नीतियों में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया। यह ऐसा नहीं कर सकती थी क्योंकि इस सरकार में जमींदार और पूंजीपति के हितों को प्रस्तुत करने वाली पार्टियों का प्रभुत्व था अतः बोल्शेविक पार्टी के साथ श्रमिकों, सैनिकों और किसानों ने अपने आंदोलनों को जारी रखा जो 1917 की अक्तूबर बोल्शेविक क्रांति की पराकाष्ठा पर पहुँचा।

1917 में लोगों की आकांक्षाओं के अनुसार बोल्शेविक ही एकमात्र राजनीतिक समूह था। उन्होंने युद्ध को तत्काल समाप्त करने का आह्वान किया; उन्होंने किसानों के लिए जमीन, उद्योगों पर श्रमिकों के नियंत्रण तथा स्वाधीनता हेतु नागरिकता के अधिकार की मांग की। संपूर्ण राष्ट्र के श्रमिकों, किसानों और सैनिकों के सभी जन संगठनों में शांति! रोटी! भूमि! प्रजातंत्र! नारे बन गए तथा बोल्शेविकों को इन संगठनों में बहुमत में होने के कारण उन्हें इनका नेतृत्व करने के लिए चुना गया'

अक्तूबर 1917 की क्रांति का जनाधार था और अस्थायी सरकार को समाप्त करने के लिए यह कोई सामान्य सैन्य तख्ता पलट नहीं था। आपको स्मरण होना चाहिए कि हालांकि यह अक्तूबर क्रांति के नाम से प्रसिद्ध है किंतु यह क्रांति 7 नवंबर, 1917 को हुई और इसे 7 नवम्बर को मनाया गया क्योंकि इस क्रांति के बाद रूस ने अंतर्राष्ट्रीय

कैलेंडर अपनाया। इससे पहले रूस अपने स्वयं के कैलेंडर का उपयोग कर रहा था जो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उपयोग में लाए जा रहे कैलेंडर से 10 दिन पीछे था।

## 23.11 इस क्रांति की नीतियाँ और प्रभाव

क्रांतिकारी रूस ने न सिर्फ जार की रूस संबंधी नीतियों को बदल दिया बल्कि इसने और भी कई कार्य किए जो यूरोप के पूँजीवादी राष्ट्रों में मौजूद चीजों से भिन्न और अधिक थे। इसकी नीतियों ने रूस में साम्यवाद की नींव डाली।

इस बात को अच्छी तरह से जानते हुए कि लोग युद्ध से थक चुके थे और वे शांति चाहते थे तथा यह युद्ध किसी भी राष्ट्र के लोगों के हित में नहीं था, उसका सबसे पहला कार्य इस युद्ध से हटना था।

बोल्शेविकों ने उत्पादन साधनों, अर्थात भूमि, फैक्टरियों, और बैंकों में निजी सम्पत्ति समाप्त कर दी, इन सबको राष्ट्रीयकृत कर दिया गया तथा अब ये राज्य के स्वामित्व में थीं, न कि निजी स्वामित्व में। इसका अर्थ हुआ कि वे दूसरों की मेहनत का शोषण करने के आदी नहीं हो सकते तथा निजी लाभ प्राप्त नहीं कर सकते। निर्णय लेने वाली प्रक्रियाओं में श्रमिक संगठनों का बोलबाला होता था।

नवम्बर 1917 की भूमि डिक्री के माध्यम से जमींदारी समाप्त कर दी गई थी और पैतृक उपयोग के लिए भूमि किसानों को सौंप दी गई। किसान इस भूमि को बेच नहीं सकते थे अथवा गिरवी नहीं रख सकते थे अथवा दूसरों की मेहनत का शोषण करने के लिए इसका उपयोग नहीं कर सकते थे परन्तु वे अपनी भूमि के स्वामी थे और इस भूमि से अपनी मजदूरी और उत्पादन का पूरा लाभ उठा सकते थे। वे किसी भी तरह से पूर्ववर्ती जमींदारों पर निर्भर नहीं थे। ग्रामीण अर्थव्यवस्था और समाज पर से जमींदारो की शक्तियां समाप्त कर दी गई थीं।

इन उपायों का अर्थ था कि रूस के लोग देश के संसाधनों और अर्थव्यवस्था से समान रूप से लाभान्वित थे। सभी भागों और वर्गों के लोगों के लाभ के लिए केन्द्रीय रूप से योजना बनाना भी अब संभव हो गया था। केन्द्रीयकृत योजना बनाने की इस प्रणाली को महत्त्वपूर्ण समझा गया तथा भारत सहित कई राष्ट्रों द्वारा इसे अपनाया गया।

नए संविधान में निःशुल्क चिकित्सा सुविधा, सभी को निःशुल्क तथा समान शिक्षा, बेरोजगारी भत्ता, संस्कृति और सांस्कृतिक प्रगति के लिए समान पहुंच की गारंटी दी गई थी। यह सब कुछ तत्काल उपलब्ध नहीं था, परन्तु सबके लिए इसका अधिकार बनाकर नए शासन ने अपनी नीति और वचनबद्धता के दिशा–निर्देश स्पष्ट रूप से दर्शाए। वेतन तथा राज्य द्वारा उपलब्ध कराई गई सुविधाओं की पात्रता दोनों के अनुसार अन्य देशों की तुलना में मध्य वर्ग के काम करने वाले लोगों और खेतों अथवा फैक्टरियों में काम करने वाले लोगों में कोई ज्यादा अंतर नहीं था। जीवन स्तर इस बात पर निर्भर नहीं था कि किसी व्यक्ति को व्यक्तिगत रूप से कितना भुगतान करना पड़ सकता है, क्योंकि बहुत सारी चीजों के लिए भुगतान करना ही नहीं पड़ता।

महिलाओं को समान नहीं समझा जाता था इसलिए सामाजिक और राजनीतिक जीवन में उनकी समान भागीदारी संभव बनाने के लिए मातृत्व छुट्टी, सरकारी कैंटीनों, कार्य स्थलों आदि में निःशुल्क पालना घर खोलने संबंधी उपाय किए गए।

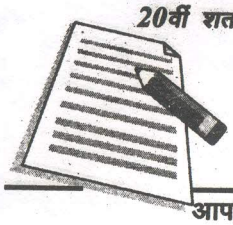

आपकी टिप्पणियाँ

वे अपनी स्थिति को 'श्रमिक वर्ग की तानाशाही' समझते थे, क्योंकि काम करने वाले साधारण लोग और उनका कल्याण राजनीतिक तथा नीतियों पर आधारित था।

नई शासन प्रणाली ने औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध स्वतंत्रता संघर्षों को नैतिक तथा भौतिक सहायता प्रदान की तथा सभी राष्ट्रों को अपने भविष्य का निर्धारण करने के अधिकार को मान्यता प्रदान की। इस कारण से सभी एशियाई देशों में रूसी क्रांति की प्रशंसा की गई तथा संपूर्ण विश्व में लोग इससे प्रेरित हुए। चीन और भारत रूसी क्रांति से अत्यधिक प्रभावित हुए। इससे साम्यवादी विचारधाराओं का प्रचार हुआ था।

भारत के राष्ट्रीय नेताओं ने राजनीतिक संघर्षों में किसानों और श्रमिकों के हस्तक्षेप के महत्त्व को जाना। भारत के लोगों ने अनुभव किया कि रूस में 'किसान मजदूर राज' की स्थापना की गई है। अतः 1920 में श्रमिकों और किसान पार्टियों, ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस का गठन हुआ तथा भारत में श्रमिकों और किसानों को संगठित करने के प्रयासों में वृद्धि हुई।

तथापि साम्राज्यवादी राष्ट्रों ने इस क्रांति का विरोध किया और उन्होंने नई बोल्शेविक शासन प्रणाली को पराजित करने के लिए अपनी सेनाएं भेजी। वे सफल नहीं हुए तथा नई क्रांतिकारी शासन प्रणाली मुख्य रूप से लोगों की सहायता और क्रांतिकारियों के आत्मबलिदानों के कारण बची रही। रूसी क्रांति और प्रथम विश्व युद्धकी समाप्ति के बाद रूस और यूरोप में क्या हुआ यह एक अलग कहानी है, जिसके बारे में आप अगले पाठ में पढ़ेंगे।

## पाठगत प्रश्न 23.2

1. इस क्रांति से पहले रूस में कौन–सी राजनीतिक प्रणाली थी?

2. 1917 की रूस की क्रांति के दूसरे किस नाम से रूप में जाना जाता है?

3. जार के समकालीन रूस के महत्त्वपूर्ण राजनीतिक समूहों के नाम लिखिए?

4. निजी सम्पत्ति की समाप्ति का क्या अर्थ है?

## आपने क्या सीखा

प्रथम विश्व युद्ध इतिहास के पिछले युद्धों से बिलकुल भिन्न था, क्योंकि इसकी हिंसा और पीड़ा से सारा विश्व प्रभावित हुआ था। युद्ध में नई प्रौद्योगिकियों का उपयोग किया गया था, जिन्हें पहले नहीं देखा गया था और इसका जीवन के सभी पहलुओं पर प्रभाव पड़ा।

इस युद्ध के कारण तात्कालिक तथा दीर्घावधि के थे। उपनिवेशों हेतु होड़, विश्व के संसाधनों पर नियंत्रण करना इसके मुख्य कारण थे। यह युद्ध 1914 से 1918 तक चलता रहा तथा जर्मनी और सहयोगी राष्ट्रों की पराजय के बाद समाप्त हुआ। इसके समाप्त होने से पहले 1917 में रूस की क्रांति हो चुकी थी। रूस की क्रांति युद्ध के दबाव और रूसी समाज में चल रहे संघर्षों के कारण आई। यह इतिहास में पहली साम्यवादी क्रांति थी।

इसके तीन चरण थे : 1905 की क्रांति जो असफल रही; फरवरी 1917 की क्रांति के परिणामस्वरूप अभिजात वर्ग की समाप्ति; और अक्तूबर 1917 की क्रांति जिसका नेतृत्व बोल्शेविकों ने किया। इसने साम्यवादी राष्ट्र की स्थापना की।

इस क्रांति ने सामाजिक न्याय पर आधारित नई सामाजिक और राजनीतिक प्रणाली बनाई। अपनी राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने वाले राष्ट्रों सहित शेष विश्व पर इसका अत्यधिक प्रभाव पड़ा।

## पाठांत प्रश्न

1. जार कालीन रूस की राजनीतिक प्रणाली का उल्लेख कीजिए? किसान अभिजात वर्ग से असंतुष्ट क्यों थे?
2. विभिन्न राष्ट्रों ने विद्रोह क्यों किया?
3. 1905 की क्रांति क्यों महत्त्वपूर्ण थी?
4. रूस में फरवरी 1917 में क्या हुआ?
5. बोल्शेविकों द्वारा लाए गए मुख्य परिवर्तन के बारे में लिखिए। क्या आप समझते हैं कि ये रूस के लोगों के हित में थे?
6. भारत पर इस क्रांति के प्रभाव के बारे मे लिखिए?

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

**23.1**

1. हवाई जहाज, टैंक और पनडुब्बियां
2. त्रिपक्षीय संधि, त्रिपक्षीय सहयोग
3. 10 लाख मरे, 20 लाख घायल हुए, लाखों शरणार्थी हो गए
4. ब्रिटेन

**23.2**

1. एकतंत्र

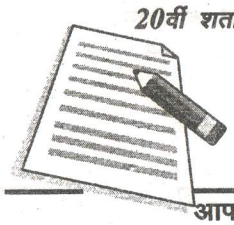

आपकी टिप्पणियाँ

2. बोल्शेविक क्रांति
3. सामाजिक लोकतंत्रवादी, उदारवादी, समाजवादी क्रांतिकारी
4. उत्पादन के साधनों पर राज्य का स्वामित्व था।

**पाठान्त प्रश्नों हेतु संकेत**

1. 23.4 अनुच्छेद 2 देखें
2. 23.8 देखें
3. 23.10 अनुच्छेद 3 देखें
4. 23.10 अनुच्छेद 5 तथा 6 देखें
5. 23.11 अनुच्छेद 1–7 देखें
6. 23.11 अनुच्छेद 9 तथा 10 देखें

**शब्दावली**

1. **निरंकुशता** - एकतंत्र ऐसी राजनीतिक प्रणाली जिसमें राजा शासन करता है, जिसके पास सभी शक्तियां होती हैं और जिसमें ऐसा कोई प्रभावशाली प्रतिनिधि संस्थान नहीं होता जो राजनीतिक शक्ति में भागीदारी कर सके।
2. **सामाजिक लोकतंत्र** - जिनका ऐसा मानना था कि मात्र राजनीतिक और विधि समानता ही पर्याप्त नहीं है, परन्तु आर्थिक और सामाजिक समानता भी होनी चाहिए। अतः वे साम्यवाद में विश्वास रखते थे।
3. **पूंजीवाद** - निजी सम्पत्ति और बाजार के अधिकारों पर आधारित प्रणाली है और इसमे निजी लाभ भी होता है। इसमें सम्पत्ति का स्वामी इस पर काम करने वाले श्रमिक के शोषण से अपना लाभ प्राप्त करता है।
4. **साम्यवाद** - ऐसी प्रणाली, जिसमें उत्पादन के साधनों पर राष्ट्र का स्वामित्व होता है ताकि श्रम करने वाले श्रमिक का कुछ लोगों के निजी लाभ के लिए शोषण न किया जा सके और इसमें ऐसी राजनीतिक प्रणाली होती है, जिसमें श्रमिक के हित का पहले ध्यान रखा जाता है।

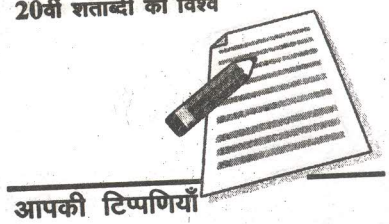



# 24

# अंतर-युद्ध अवधि और द्वितीय विश्व युद्ध

बीसवीं शताब्दी का प्रथम पूर्वार्द्ध इतिहास में विश्व युद्धों के युग के रूप में जाना जाता है। प्रथम विश्वयुद्ध को कई लोगों द्वारा 'सभी युद्धों को समाप्त करने वाला युद्ध' समझा गया। तथापि अगले बीस वर्षों में हुए परिवर्तनों से विश्व एक और युद्ध की ओर धकेला गया, जो अधिक विध्वंसकारी, अधिक व्यापक तथा बहुत बड़े पैमाने पर था। इस युद्ध के प्रारंभ होने के कारणों को समझने के लिए हमें अंतर–युद्ध अवधि का विस्तार से अध्ययन करने की आवश्यकता है।

प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति से यूरोप के देशों में प्रतिद्वंद्विता समाप्त नहीं हुई थी। यहाँ तक कि शांति संधियाँ भी शांति सुनिश्चित कराने में असफल रहीं। ये संधियाँ पराजित राष्ट्रों के प्रति कठोर थीं और इस प्रकार इन्होंने भावी संघर्षों के बीज बोए। इसी तरह संधियाँ कुछ मित्र राष्ट्रों की राज्यों संबंधी आकांक्षाओं को पूरा करने में असमर्थ रहीं। कई राष्ट्रों में शक्तिशाली तानाशाहों ने सत्ता पर कब्जा कर लिया और उग्र राष्ट्रीयता का संदेश फैलाया। सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह था कि युद्ध के मूल कारण साम्राज्यवाद को समाप्त नहीं किया गया था।

रूसी क्रांति और सोवियत संघ के आविर्भाव से विश्व दो समूहों में विभाजित हो गया–पहले समूह में इस क्रांति का समर्थन करने वाले थे और दूसरे समूह में इसके प्रभावों से डरने वाले सम्मिलित थे। पश्चिमी यूरोप के ज्यादातर राष्ट्र दूसरे समूह से संबंध रखते थे। वे समाजवाद को अपनी सामाजिक एवं आर्थिक प्रणालियों के लिए धमकी मानते थे। सोवियत रूस भी साम्राज्यवाद विरोधी था और यह एशिया तथा अफ्रीका के औपनिवेशिक देशों में स्वतंत्रता संघर्षों को समर्थन देता था। इस पाठ में आप यह जान पाएँगे कि इन सबने मिलकर किस प्रकार से दूसरे विश्व युद्ध की परिस्थितियाँ तैयार कीं।

## उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- इन शांति–संधियों और यूरोप के बदले हुए मानचित्र का विश्लेषण कर सकेंगें;
- सर्वसत्तात्मक शासन प्रणालियों–इटली, जर्मनी और जापान के उदय का पता लगा सकेंगें;
- संयुक्त राज्य अमरीका, सोवियत समाजवादी संघ गणराज्य पर अत्यधिक दबाव के प्रभावों की व्याख्या कर सकेंगे,
- आक्रमण और तुष्टीकरण में सह–संबंध स्थापित कर सकेंगे, तथा

आपकी टिप्पणियाँ

- युद्ध प्रक्रिया का उल्लेख कर सकेंगे।

## 24.1 शांति संधियाँ

प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति पेरिस में हुए सम्मेलन में शांति संधियों पर हस्ताक्षर करने के साथ हुई। इस सम्मेलन में उपस्थित महत्त्वपूर्ण नेताओं में अमरीका के राष्ट्रपति वुड्रो विलसन, ब्रिटेन के प्रधानमंत्री लॉयड जॉर्ज और फ्रांस के प्रधानमंत्री जॉर्ज क्लेमन्सू सम्मिलित थे।

### राष्ट्रसंघ

इस शांति सम्मेलन का सबसे पहला काम 'अंतर्राष्ट्रीय सहयोग, शांति और सुरक्षा' को बढ़ावा देने के लिए राष्ट्र संघ नामक विश्व संगठन बनाने संबंधी निर्णय था। इस संघ के प्रतिज्ञापत्र (औपचारिक समझौते) को अप्रैल, 1919 में अनुमोदन प्रदान किया गया।

इस समझौते में सभी सदस्यों को शांति के हित में युद्ध सामग्री में कमी लाना आवश्यक था। यदि कोई सदस्य राष्ट्र युद्ध का सहारा लेगा तो उस राष्ट्र के विरुद्ध सामूहिक रूप से कार्रवाई की जाएगी। आक्रमण करने वाले राष्ट्र के साथ व्यापार संबंध भी समाप्त कर दिए जाएंगे तथापि यह राष्ट्र संघ कभी प्रभावी संगठन नहीं हो सका। दो राष्ट्रों–सोवियत संघ एवं जर्मनी को कई वर्षों तक इसका सदस्य बनने की अनुमति नहीं दी गई। संघ के निर्माण में अग्रणी भूमिका निभाने के बावजूद अमरीका ने इसमें सम्मिलित न होने का निर्णय लिया। अतः 1930 में जब आक्रमण शुरू हुआ तो संघ इसे रोकने में असफल रहा।

### वर्साय की संधि

शांति संधियाँ राष्ट्रपति विल्सन के शांति प्रस्तावों अथवा चौदह सूत्रों, जिनमें शांति, स्वतंत्रता, प्रजातंत्र, स्वाधीनता, स्वसंकल्प इत्यादि (अपनी स्वयं की सरकार में अपनी बात स्थापित करने का अधिकार) स्थापित करने संबंधी वायदे पर आधारित होती थीं। परन्तु जर्मन के साथ वर्साय की संधि पर हस्ताक्षर करते समय मित्र राष्ट्रों ने इन सिद्धांतों को अनदेखा कर दिया।

### इस संधि के अनुसार

1. जर्मन को आक्रामक बताया गया तथा युद्ध के दौरान मित्र राष्ट्रों को हुए नुकसान की जिम्मेवारी स्वीकार करने के लिए विवश किया गया।
2. जर्मन ने इन मित्र राष्ट्रों की क्षतिपूर्ति के लिए इन्हें 6,600 मिलियन डॉलर का भुगतान किया।
3. सार घाटी में जर्मन की कोयला खान क्षेत्रों को 15 वर्ष की अवधि के लिए संघ के नियंत्रण में रखा गया, जबकि उक्त अवधि के लिए इन खानों को फ्रांस में हस्तांतरित कर दिया गया था।
4. नए बनाए गए पोलैंड राष्ट्र (मानचित्र–1 देखें) का कॉरिडोर उपलब्ध कराया गया था, जो इसे बाल्टिक महासागर तक जाने का मार्ग देता है। यह कॉरिडोर पूर्वी प्रूशिया को शेष जर्मनी से अलग करता है। इस कॉरिडोर में आने वाले डेंजिंग बंदरगाह को स्वतंत्र शहर बना दिया गया था।
5. जर्मन की सेना की संख्या को 100,000 तक सीमित कर दिया गया तथा वायु सेना अथवा जल सेना में से कोई एक रखने की अनुमति दी गई।
6. जर्मन के अधिकार वाले उपनिवेशों को विजयी राष्ट्रों ने बांट लिया। यूरोप के मानचित्र का अध्ययन करने के बाद हम जर्मन द्वारा गंवाए गए राष्ट्रों के बारे में और अधिक पढ़ेंगे।

जर्मन को आक्रमण की धमकी के तहत इस संधि पर हस्ताक्षर करने पड़े। वास्तव में, इस सम्मेलन में भाग लेने के लिए किसी भी जर्मन प्रतिनिधि को आमंत्रित नहीं किया गया था। इसलिए जर्मन ने इसे 'तानाशाही शांति' का नाम दिया।

*मानचित्र 24.1 प्रथम विश्व युद्ध के परिणामस्वरुप प्रादेशिक परिवर्तन*

आपकी टिप्पणियाँ

*मानचित्र 24.2 प्रथम विश्व युद्ध के बाद प्रादेशिक व्यवस्था*

इस प्रकार द्वितीय विश्वयुद्ध के कुछ बीज वर्साय में ही बो दिए गए थे। यूरोप का युद्ध संबंधी व्यय के मानचित्र का अध्ययन हमें दर्शाता है कि यूरोप के लगभग सभी देश परिवर्तित सीमाओं सहित युद्ध से उभरे थे। जर्मनी ने अल्सेस लोरेन फ्रांस के हवाले कर दिया। जिस पर इसने 1871 में कब्जा किया था। उत्तर में इसने बेल्जियम और डेनमार्क के कुछ क्षेत्रों को त्याग दिया था। पोलैंड को दिए गए क्षेत्र का पहले ही उल्लेख किया जा चुका है। यूरोप में नुकसान होने के अतिरिक्त जर्मनी को अपने अफ्रीका के उपनिवेशों और चीन में प्राप्त विशेषाधिकारों को भी छोड़ना पड़ा। अतः युद्ध के बाद जर्मन अत्यधिक असंतुष्ट थे।

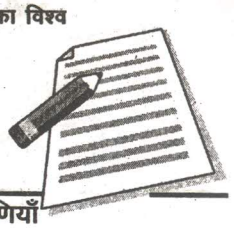

आपकी टिप्पणियाँ

इटली ने ऑस्ट्रिया, तुर्की साम्राज्य और अफ्रीका में अपनी राजक्षेत्रीय आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए मित्र राष्ट्रों की ओर से युद्ध किया था। परन्तु इटली को शांति समझौते से जो कुछ प्राप्त हुआ वह ऑस्ट्रिया का एक छोटा भाग था।

रूस के लोग सभी मित्र राष्ट्रों के युद्ध में मरने वाले लोगों से ज्यादा मारे गए। जर्मनी के साथ संधि पर हस्ताक्षर करने के बाद मार्च, 1918 में यह युद्ध से अलग हो गया। इस संधि से इसने पोलैंड, फिनलैंड और इस्टोनिया, लाटविया, लिथुवानिया के बाल्टिक राज्यों की स्वतंत्रता को स्वीकार कर लिया। इससे गृहयुद्ध, सैन्य हस्तक्षेप और आर्थिक विफलता की समस्याएं बढ़ गईं। पॉलैंड जो 1815 में मानचित्र से लुप्त हो गया था, तीनों साम्राज्यों–ऑस्ट्रिया, पुरुसिया और रूस के सम्मेलन के बाद अब पुनः दिखाई देने लगा, जब इन तीनों साम्राज्यों का एक साथ पतन हुआ। तथापि नए पड़ोसी राष्ट्रों के साथ पुरानी शत्रुता को इतनी आसानी से समाप्त नहीं किया जा सकता।

एक अलग संधि द्वारा, ऑस्ट्रिया को कम करके एक छोटा राष्ट्र बना दिया गया था और इसने अपना शाही गौरव खो दिया था। ऑस्ट्रिया ने नए गठित राष्ट्रों हंगरी, पॉलैंड, चेकोस्लोवाकिया और युगोस्लाविया की स्वतंत्रता को मान्यता प्रदान की। आपको स्मरण होगा कि इटली को भी ऑस्ट्रिया के बदले कुछ क्षेत्र प्राप्त हुआ था। नए गठित सभी राष्ट्रों को सीमा विवाद, राजनैतिक विद्रोहों और आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

> ब्रिटेन को अधिदेशों के रूप में फिलिस्तीन और इराक दिए गए थे तथा फ्रांस को सीरिया दिया गया। वे तब तक उनका प्रशासन चलाएंगे जब तक कि लोग स्वयं शासन करना न सीख जाएँ। परन्तु इन अधिदेशों पर उपनिवेशों के रूप में शासन किया गया।

तुर्की के साथ संधि के परिणामस्वरूप तुर्की साम्राज्य का पूर्ण रूप से विघटन हो गया था। तुर्की ने उत्तरी अफ्रीका में अपने अरब के आधिपत्य, दक्षिण–पूर्व एशिया और यूरोप में अपने लगभग सभी शासन क्षेत्रों को गंवा दिया था। इनमें से कुछ क्षेत्रों का शासन अधिदेशों के रूप में ब्रिटिश और फ्रांस के अधीन आ गया। रूस और ग्रीस को भी कुछ क्षेत्र प्राप्त हुए। इस प्रकार तुर्की को खंडित कर एक छोटा राष्ट्र बना दिया गया। तुर्की ने मुस्तफा कोमल के नेतृत्व में इस संधि के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। सुल्तान को गद्दी से हटा दिया गया और 1923 में तुर्की में गणराज्य की स्थापना की गई तथा मुस्तफा कोमल इसके पहले राष्ट्रपति बने। इन्होंने देश को आधुनिक बनाने की प्रक्रिया प्रारंभ की। लोग इन्हें 'अतातुर्क' अथवा तुर्कों का पिता कहने लगे।

आपने विभिन्न यूरोपीय देशों में आए परिवर्तनों के बारे में अभी पढ़ा होगा। इन परिवर्तनों को समझने से हमें पता चलता है कि ज्यादातर राष्ट्र इन शांति संधियों से असंतुष्ट थे। क्या विश्व का एक और पुनर्विभाजन अनिवार्य था? क्या एक और युद्ध ही इसका समाधान था? इस अध्याय में आपको इन उत्तरों को खोजने में सहायता मिलेगी।

## पाठगत प्रश्न 24.1

**क. निम्नांकित को मेल कीजिए**

1. वर्साय की संधि — बाल्टिक महासागर हेतु मार्ग

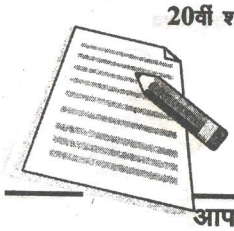

आपकी टिप्पणियाँ

| | | |
|---|---|---|
| 2. | रूसी क्रांति | प्रतिज्ञापत्र |
| 3. | राष्ट्र संघ | अधिदेशात्मक शांति |
| 4. | इराक एवं फिलिस्तीन | अधिदेश |
| 5. | पॉलिश कॉरिडोर | मित्र राष्ट्रों का हस्तक्षेप |

**ख. निम्नांकित वाक्यों को पूरा करो**

1. राष्ट्र संघ _____ हेतु सृजित किया गया था।
2. विलसन के चौदह सूत्रों में _____ लाने का वायदा किया गया था।
3. रूस _____ के बाद युद्ध से अलग हो गया था।
4. युद्ध के बाद स्वतंत्रता हासिल करने वाले बाल्टिक राष्ट्रों में _____ सम्मिलित थे।
5. पोलैंड का गठन _____ और _____ के पतन के बाद हुआ।

## 24.2 एकदलीय शासन प्रणालियों का उदय

यूरोप के लगभग सभी राष्ट्रों के लिए युद्ध के तत्काल बाद का समय समस्याओं से भरा हुआ था। इनमें अर्थव्यवस्था का पुनर्गठन करना, युद्ध से बचे हुए लोगों का पुनर्स्थापन करना और बढ़ती बेरोजगारी सम्मिलित थी। कई राष्ट्रों के श्रमिक वर्गों ने सोवियत नमूने पर समाजवादी क्रांतियां लाने की कोशिश की, लेकिन निर्दयता से उनका दमन किया गया। उनके स्थान पर हंगरी, पोलैंड, इटली, पुर्तगाल, जर्मन और स्पेन में शक्तिशाली, प्रजातंत्र विरोधी आंदोलनों का उदय हुआ, जिन्हें सामान्य तौर पर 'फासिस्ट' का नाम दिया गया।

### इटली में फासिस्टवाद का आविर्भाव

'फासिस्ट' शब्द इटली मूल का है और इसका पहली बार उपयोग इटली में बेनितो मुसोलिनी द्वारा प्रारंभ किए गए आंदोलन के लिए किया गया था। फासिस्टवादियों ने अपने चिह्न के रूप में कुल्हाड़ी हत्था अथवा छड़ों का गट्ठा अपनाया था, जो राष्ट्र शक्ति को प्रस्तुत करता था। इन आंदोलनों की मुख्य विशेषताएं प्रजातंत्र और समाजवाद का विरोध करना और तानाशाही शासन, उग्र राष्ट्रवाद और सैन्यवाद की स्थापना थीं।

मुसोलिनी ने प्राचीन रोमन साम्राज्य के गौरव के बारे में भावपूर्ण भाषण दिए तथा लोगों से इटली के सम्मान को पुनर्स्थापित करने का आह्वान किया। इसके भाषण सुनने के बाद कई भूतपूर्व सैनिक इसके सैन्य दल में सम्मिलित हो गए, जो एक निजी सेना थी, जिसे 'ब्लेकशर्टस' के नाम से जाना जाता था। मुसोलिनी इन दलों का उपयोग हड़तालें समाप्त करने और समाजवादियों एवं साम्यवादियों में आतंक फैलाने के लिए करता था। इटली के शासक वर्ग भी कोई कार्रवाई करना नहीं चाहते थे, क्योंकि वे भी समाजवादी क्रांति को समाप्त करना चाहते थे।

1921 में, मुसोलिनी ने राष्ट्रीय फासिस्ट पार्टी गठित की। अगले वर्ष अक्तूबर में इसने अपनी ब्लैकशर्ट सेना के 30,000 जवानों को रोम में मार्च के लिए भेजा। सरकार ने कोई लड़ाई किए बिना समर्पण कर दिया तथा राजा ने मुसोलिनी को नई सरकार बनाने के लिए कहा। 1928 तक मुसोलिनी ने सभी संसदीय विरोधियों को समाप्त कर दिया तथा एक तानाशाह के रूप में शासन करना शुरू कर दिया। सभी गैर–फासिस्टवादी पार्टियों पर प्रतिबंध लगा दिया गया। वह जेल में यातनाएं देता और सुनियोजित ढंग से हत्याएं

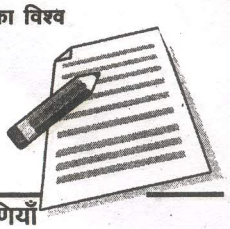



करता ताकि समाजवादियों और साम्यवादियों का दमन किया जा सके। उसने फासिस्ट ग्रांड काउंसिल की स्थापना की तथा इसके II–ड्यूस की पदवी हासिल की। उसने युद्ध और विस्तार की नीति का समर्थन करके इटली को महाशक्ति बनाने का प्रयास किया।

**हिटलर और नाजी जर्मनी**

आपको जर्मनी की अपमानजनक पराजय और इसके राजतंत्र के पतन के बारे में पहले से ही पता है। 1919 में नए संविधान के अंतर्गत गणराज्य सरकार की स्थापना की गई, जिसमें राष्ट्रपति, चांसलर और चुनी गई संसद का प्रावधान किया गया था। इस विश्वयुद्ध में, एडोल्फ हिटलर जर्मन सेना में क्रॉस का विजेता था। जर्मनी की हार से निराश होकर

> इटली में फासिस्टवाद द्वारा सत्ता हथियाने के बाद कोर्पोरेल एडोल्फ हिटलर ने जर्मनी में 1923 में ऐसा ही प्रयास किया था। यह प्रयास असफल रहा तथा हिटलर को जेल हो गई। जब हिटलर जेल में था तो उसने अपनी पुस्तक **मैन केम्फ** (मेरा संघर्ष) लिखी, जिसमें उसने आधुनिक काल की अत्यधिक बर्बर तानाशाही सृजित करने के संबंध में अपनी योजनाओं का खुलासा किया था।

उसने राजनीति में भाग लेने का निर्णय किया। 1921 में हिटलर के शक्तिशाली भाषणों और उसके संगठनात्मक कौशलों ने उसे नेशनल सोशलिस्ट जर्मन वर्कर्स पार्टी संक्षिप्त में नाजी पार्टी का अध्यक्ष बना दिया। फासिस्टवाद की तरह इसकी भी 'स्टॉर्म ट्रुपर्स' अथवा 'ब्राउनशर्ट' नाम की अपने सेना थी। 1930 तक ब्राउनशर्टस में लोगों की संख्या लगभग 100,000 तक हो गई थी।

नाजी नीतियों का उद्देश्य वर्साय के अपमान का प्रतिकार करना और जर्मनी को शक्तिशाली बनाना तथा विश्व को भयभीत करना था।

नाजी फॉसिस्टवादियों के समान प्रजातंत्र, नागरिक स्वतंत्रताओं तथा समाजवाद के विरोधी थे। वे किसी भी विरोध को समाप्त करने के लिए निर्दयता से बल का उपयोग करते थे।

हिटलर ने युद्ध में जर्मनी की पराजय के लिए यहूदियों को दोषी ठहराया इसलिए यहूदी जाति का विध्वंस करना नाजीवाद की मुख्य विशेषता बन गई। वह जर्मन जाति की शुद्धता और श्रेष्ठता में विश्वास रखता था और उन्हें आर्यों का शुद्ध वंशज कहता था–तथा विशाल जर्मनी का सृजन करने के लिए सभी जर्मन वासियों में एकता बनाए रखना चाहता था। लोगों का बहुत बड़ा वर्ग नाजी राजनीति से प्रभावित था। उन्होंने जर्मन के लोगों से राष्ट्रीय गौरव की अपील की तथा नाजी राजनीति के लिए सहायता प्राप्त की।

> 1936 में बर्लिन में ओलंपिक खेल हुए थे। हिटलर आर्य जाति की श्रेष्ठता के अपने सिद्धांत को सिद्ध करने के लिए इन खेलों का उपयोग करना चाहता था, परन्तु उसका प्रयास विफल रहा, क्योंकि इन खेलों का अत्यधिक लोकप्रिय नायक अफ्रीका–अमेरीकन स्प्रिंटन–जेस्सी ओवेम्स था।

1930 के आर्थिक विकास ने सत्ता में आने के लिए हिटलर की सहायता की। कड़ी मंदी

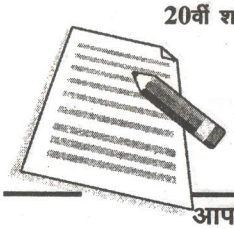

आपकी टिप्पणियाँ

ने अमरीका एवं यूरोप पर आघात किया। जिसके परिणामस्वरूप जर्मनी में 8 मिलियन कामगार बेरोजगार हो गए। नाजी पार्टी ने अपना प्रभाव जमाना शुरू किया। साम्यवादी और समाजवादी नाजियों के विरुद्ध संगठित होने में असफल रहे। परिणामस्वरूप 1928 में संसद की केवल 12 सीटें जीतने वाली नाजी पार्टी 1932 में अकेली सबसे बड़ी पार्टी बन गई। राष्ट्रपति हिंडेनबर्ग ने हिटलर को चांसलर नियुक्त किया तथा उसे नई सरकार बनाने के लिए कहा। सत्ता में आने के तत्काल बाद हिटलर ने आतंक के आधिपत्य को प्रवर्तित कर दिया। सभी प्रजातांत्रिक सिद्धांतों को रद्द कर दिया गया। फरवरी 1933 में नाजियों ने संसद भवन पर आग लगा दी और इसका दोष समाजवादियों और साम्यवादियों पर लगा दिया। 60,000 से अधिक व्यक्तियों को जेल में अथवा नजरबंदी शिविरों में डाल दिया गया। 1933 के मध्य तक आते–आते नाजी पार्टी को छोड़कर सभी राजनीतिक पार्टियों पर प्रतिबंध लगा दिया गया। 2 अगस्त 1934 को अंको हिंडेनबर्ग की मृत्यु के बाद हिटलर जर्मनी का राष्ट्रपति बन गया। यहूदियों के संपूर्ण विध्वंस हेतु संगठित अभियान चलाया गया। इसके साथ–साथ सैन्यीकरण का कार्यक्रम भी प्रारंभ किया गया। नाजीवाद की विजय ने विश्वयुद्ध को और नजदीक ला खड़ा किया।

> हिटलर इतना अधिक विदेशी था कि उसने उसको सत्ता में आने में सहायता देने वाले स्टोर्म टूपर्स के सैकड़ो लोगों की एक रात में ही हत्या करने के आदेश दिए। 30 जून, 1934 का दिन 'नाइट ऑफ लोंग नाइव्स' के रूप में जाना जाता है।

### जापान में सैन्य फासिस्टवाद

जापान एशिया का एकमात्र ऐसा देश था जो उपनिवेशवाद से बचा हुआ था। उन्नीसवीं शताब्दी की समाप्ति पर जापान की विस्तारवादी नीति के कारण चीन से उसका युद्ध हुआ। चीन की हार होने से जापान इस देश में अपने पांव जमाने में समर्थ हो गया। जापान ने युद्ध में रूस को हराकर चीन में रूस के अधिकार वाले क्षेत्र मैनचुरिया पर कब्जा कर लिया। यह पहली घटना थी कि एशिया के किसी देश ने यूरोप के शक्तिशाली राष्ट्र को युद्ध में पराजित किया था। बाद में जापान ने कोरिया को भी जीत लिया।

प्रथम विश्व युद्ध के प्रादुर्भाव से इसे चीन में जर्मनी के कब्जे वाले क्षेत्रों और प्रशांत में जर्मनी के कब्जे वाले द्वीपों को अधिग्रहण करने का अवसर मिला। युद्ध के बाद संघ ने इसे द्वीपों का अधिदेश दिया। इस समय तक, जापान की सेना विश्व में सर्वोच्च सेना बन गई थी। इसने देश के भीतर प्रजातंत्र को समाप्त कर दिया और उग राष्ट्रवाद और विस्तारवाद का समर्थन किया। पचास वर्षों से कम की अवधि में जापान शांतिप्रिय राष्ट्र से आक्रामक सैन्य शक्ति में परिवर्तित हो गया। इसे जर्मनी और इटली की फासिस्ट सरकारों से घनिष्ठ संबंध स्थापित करने पड़े थे।

## पाठगत प्रश्न 24.2

**(क) निम्नलिखित में से सही और गलत बताएँ :**

1. 1920 में कई राष्ट्रों में समाजवादी क्रांतियां सफल हुईं।

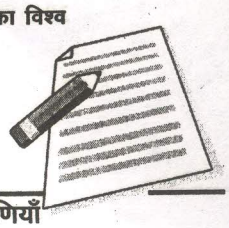

आपकी टिप्पणियाँ

2. 'फासिस्टवाद' शब्द का उपयोग प्राजातांत्रिक आंदोलनों का उल्लेख करने के लिए किया जाता है।

_____

3. हिटलर ने आधुनिक काल की अत्यधिक बर्बर शासन प्रणाली स्थापित की।

_____

4. यूरोप की सरकारों ने समाजवाद के उदय का समर्थन किया।

_____

5. जापान ने चीन के प्रति शांतिपूर्ण नीति अपनाई।

_____

**(ख) रिक्त स्थानों को भरो :-**

1. मुसोलिनी के सैन्य दलों को _____ कहा जाता था।
2. जेल में हिटलर ने _____ लिखी थी।
3. फासिस्टवादियों की तरह नाजी भी _____ और _____ के विरोधी थे।
4. _____को _____ आयोजित करके मुसोलिनी सत्ता में आया था।
5. युद्ध में रूस को पराजित करके जापान ने _____ में _____ पर कब्जा कर लिया।

## 24.3 तीव्र मंदी और इसके प्रभाव

प्रथम विश्व युद्ध के बाद एक महत्त्वपूर्ण प्रभाव यह पड़ा कि यूरोप की सर्वोच्चता में कमी आई और संयुक्त राज्य अमरीका का महत्त्व बढ़ा। यद्यपि युद्ध ने यूरोप के राष्ट्रों की अर्थव्यवस्था को क्षति पहुंचाई तथापि अमरीका की अर्थव्यवस्था अधिक मजबूत हुई। अमरीका की जमीन पर कोई युद्ध नहीं लड़ा गया और युद्ध के दौरान औद्योगिक विकास जारी रहा क्योंकि यह मित्र राष्ट्रों को हथियार और अन्य सामग्री की आपूर्ति करता था। तथापि, एक दशक बाद देश में गंभीर आर्थिक समस्या उठ खड़ी हुई। जो बाद में शेष यूरोप में भी फैल गई।

आप यह जानते हैं कि अमरीका ने उत्पादन की पूंजीवादी प्रणाली अपनाई थीं जिसमें उद्योग स्वामियों द्वारा अधिकतम लाभ कमाया जाता था। तथापि ज्यादातर श्रमिक गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन करते थे। अतः उद्योगों द्वारा बनाई जा रही वस्तुओं को खरीदने के लिए बहुत कम लोगों के पास साधन थे। इसलिए 'अति उत्पादन' और 'क्रय शक्ति का कुवितरण' तीव्र मंदी के दो मुख्य कारण थे, जिन्होंने अक्टूबर 1929 में संयुक्त राज्य अमरीका पर आघात किया और तत्पश्चात संपूर्ण विश्व पर आघात किया।

शेयरों की कीमतों में गिरावट आने से यह संकट आया जिससे अमरीकन स्टॉक बाजार में भारी गिरावट आई। एक दिन में ही न्यूयॉर्क स्टॉक एक्सचेंज में लगभग 16 मिलियन शेयरों की खरीद–फरोख्त की गई।

अगले चार वर्षों के दौरान लगभग 9000 बैंकों ने काम करना बंद कर दिया तथा लाखों लोगों के जीवन भर की बचत चली गई।

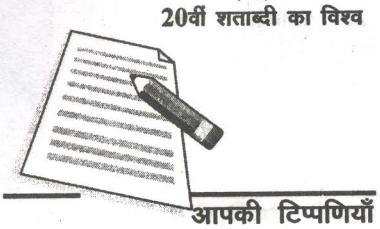

आपकी टिप्पणियाँ

वस्तुओं की खरीद न होने के कारण हजारों फैक्टरियों बंद हो गईं, जिसके परिणामस्वरूप बेरोजगारी, गरीबी और भूखमरी फैल गई।

सोवियत संघ को छोड़कर शेष यूरोप के राष्ट्र भी इसे झेल रहे थे। क्योंकि वे अमरीका की अर्थव्यवस्था, विशेष रूप से अमरीकन बैंक पर निर्भर हो गए थे। इन राष्ट्रों में इस संकट के प्रभाव समान थे। विश्व में बेरोजगारों की संख्या 50 मिलियन से अधिक हो गई थी जिसमें से अकेले अमरीका में बेरोजगारों की संख्या 15 मिलियन थी।

आर्थिक संकट ने इन देशों की राजनैतिक परिस्थितियों पर भी प्रभाव डाला। अमरीका में डेमोक्रेटिक पार्टी सत्ता में आई तथा फ्रेंकलिन डी रूजवेल्ट राष्ट्रपति बने। उसने न्यू डील नामक आर्थिक सुधार और सामाजिक कल्याण का कार्यक्रम प्रारंभ किया। ब्रिटेन और फ्रांस में श्रमिकों के समर्थन वाली सरकारें सत्ता में आई। यद्यपि फासिस्ट आंदोलन ब्रिटेन तथा फ्रांस में आए तथापि वे सफल नहीं हुए।

जैसा कि आप ऊपर पढ़ चुके है जर्मनी तथा इटली में युद्ध के बाद अंसतोष और मंदी के कारण फासिस्ट पार्टियों की जीत हुई।

1930 के दौरान अमरीका, ब्रिटेन और फ्रांस की विदेशी नीतियां समान थीं। इन्होंने फासिस्टवाद के विरुद्ध कोई कठोर कदम नहीं उठाया था। उनकी मुख्य चिंता समाजवादी विचारधाराओं और श्रमिकों के आंदोलनों को पनपने से रोकने की थी। अतः जब फासिस्ट का आक्रमण शुरू हुआ तो उन्होंने इसे रोकने के लिए कुछ नहीं किया। इसके बजाय उन्होंने से इस आशा से फासिस्टवाद को संतुष्ट करना पसंद किया कि यह साम्यवाद को समाप्त करेगा।

### यू एस एस आर में विकास

युद्ध में रूस की भागीदारी तथा रूसी क्रांति के बारे में हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं। इसके बाद गृह युद्ध और मित्र राष्ट्रों का सैन्य हस्तक्षेप हुआ। इन सबके परिणामस्वरूप रूस की अर्थव्यवस्था चरमरा गई। यहाँ खाद्यान्नों की अत्यधिक कमी हो गई तथा औद्योगिक उत्पादन में अत्यधिक गिरावट आ गई। अकाल पड़ने से स्थिति और खराब हो गई थी।

लेनिन को कड़े उपाय करने के लिए मजबूर किया गया। सोवियत सरकार ने धनी किसानों (कुलाकों) से जबरन अतिरिक्त अनाज छीना ताकि शेष लोगों को खाना उपलब्ध कराया जा सके। बाजारों में कुछ भी बेचा अथवा खरीदा नहीं जा सकता था। मजदूरों को मजदूरी के बदले औद्योगिक उत्पाद बांटे जाते थे। लोगों को प्रोत्साहित किया जाता था तथा उन्हें विशेष प्रयोजन के बजाय अपने साथियों के लाभ के लिए काम करने हेतु मजबूर किया जाता था। 1918–1921 तक चली समस्याओं से ग्रस्त स्थिति को 'युद्ध साम्यवाद' कहा जाता था।

किसान और इसकी उक्त पार्टी के कुछ सदस्य मुख्य रूप से इस प्रणाली के घोर विरोधी थे जिससे लेनिन को इसके स्थान पर 1921 में नई आर्थिक नीति लागू करनी पड़ी। युद्ध साम्यवाद के कड़े उपायों को वापस लिया गया। अब किसान को अपने उत्पाद का दसवां हिस्सा कर के रूप में देना पड़ता था और उसे शेष उत्पाद को खुले बाजारों में बेचने की अनुमति दे दी गई थी! हालांकि ज्यादातर उद्योग राज्य के नियंत्रण में थे फिर भी लघु उद्योगों को उनके स्वामियों को वापस लौटा दिया गया था। मजदूरी का भुगतान नकद करना पुनः प्रारंभ किया गया।

नया संविधान 1924 में लागू किया गया था जिसके तहत रूस सोवियत संघ समाजवादी गणराज्य बन गया। परन्तु 1924 में लेनिन की मृत्यु के बाद पार्टी के भीतर सत्ता के लिए घोर संघर्ष उत्पन्न हो गया। अपनाई जाने वाली नीतियों पर वरिष्ठ नेताओं में गंभीर मतभेद पैदा हो गए। अंत में स्टालिन की विजय हुई तथा वह साम्यवादी पार्टी के महासचिव बना और शीघ्र ही उसने अत्यधिक शक्तियां हासिल कर लीं।

कुछ वर्षों के भीतर यू एस एस आर ने पंचवर्षीय योजनाओं की श्रृंखलाओं के माध्यम से औद्योगिकीकरण के सशक्त कार्यक्रम प्रारंभ किए। प्रथम योजना 1929 में प्रारंभ की गई थी। इस योजना का एक लक्ष्य कृषि में परिवर्तन लाना था। क्रांति के बाद, कृषि योग्य खेती का किसानों में पुनः वितरण किया गया जिसके परिणामस्वरूप भूमि के लाखों छोटे तथ कम उपजाऊ टुकड़े हो गए। उत्पादन को बढ़ाने के लिए सरकार ने छोटे खेतों के सामूहिकीकरण के विचार को बढ़ावा दिया। किसानों को प्रोत्साहित किया गया तथा उन पर खेतों के निजी स्वामित्व को छोड़ने के लिए दबाव भी डाला गया। खेतों को इकट्ठा किया गया और उन्हें समाकलित खेतों के सदस्य तथा संयुक्त स्वामी बनना पड़ा। सामूहिकीकरण का विरोध करने वाले कुलाकों से कड़ाई से निपटा गया। यह अनुमान लगाया जाता है कि इस अवधि के दौरान हजारों लोग मारे गए थे।

इस योजना का मुख्य प्रयास औद्योगिकीकरण हेतु था। इसमें अत्यधिक सफलता मिली और शीघ्र ही सोवियत रूस विश्व में एक मुख्य, औद्योगिक शक्ति के रूप में उभरा। यह याद रखना महत्त्वपूर्ण है कि इस समय पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाएं अत्यधिक आर्थिक संकट का सामना कर रहीं थीं। सोवियत संघ सफल समाजवादी अर्थव्यवस्था का उदाहरण बन गया तथा स्वतंत्र होने के बाद कई उपनिवेशों ने इसको अपनाया। तथापि यूरोप के ज्यादातर राष्ट्रों और अमरीका ने 1933 तक सोवियत रूस को मान्यता प्रदान नहीं की थी। यह 1934 में ही राष्ट्र संघ का सदस्य बना। इसके बावजूद सोवियत संघ से शत्रुता बनी हुई थी। 1930 में जब फासिस्ट का आक्रमण शुरू हुआ तो सोवियत संघ ही एकमात्र मुख्य शक्ति थी, जिसने सक्रिय रूप से उनका विरोध किया।

## पाठगत प्रश्न 24.3

**क. निम्नलिखित के जोड़े बनाएं :**

| | |
|---|---|
| 1. नया सौदा | यू एस एस आर |
| 2. धनी किसान | सहकारी खेती |
| 3. नई आर्थिक नीति | यू एस ए |
| 4. सामूहिकीकरण | कुलाको |
| 5. अति उत्पादन | तीव्र मंदी |

**ख. निम्नलिखित में से सही अथवा गलत बताएं**

1. यूरोप के ज्यादातर राष्ट्र अमरीकी अर्थव्यवस्था पर आश्रित थे।
2. पूंजीवादी प्रणाली में, श्रमिकों को कम मजदूरी दी जाती थी।

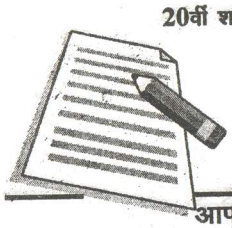

आपकी टिप्पणियाँ

3. लोग लेनिन की युद्ध साम्यवाद की नीति से खुश थे।
4. रूस ने तीव्र औद्योगिकीकरण हेतु पंचवर्षीय योजनाएं प्रारंभ कीं।
5. स्वतंत्र होने के बाद अनेक उपनिवेशों ने रूस की समाजवादी अर्थव्यवस्था के उदाहरण को अपनाया।

## 24.4 आक्रमण एवं तुष्टिकरण

सन् 1930 इटली, जर्मनी और जापान के अनेक आक्रमणों का साक्षी है। इस खंड में हम देखेंगे कि पश्चिम की ज्यादातर शक्तियां इन कार्यों की मूक दर्शक बनी रहीं, परन्तु इनमें से कुछ ने तो इसका समर्थन भी किया, जिसके द्वारा फासिस्टों को युद्ध की स्थिति तैयार करने में सहायता मिली।

> तुष्टिकरण कमजोर राष्ट्रों की कीमत पर आक्रामकों को छूट देने की नीति है।

### जापान के मैनचुरिया पर आक्रमण

आक्रमण का पहला मुख्य कार्य 1931 में जापान के मैनचुरिया पर धावा बोलना था। जापानी रेलवे लाइन पर विस्फोट से मुसीबत प्रारंभ हुई थी तथा जापानी सेना के अधिकारियों ने इसे मैनचुरिया पर कब्जा करने का बहाना बना लिया। चीन ने राष्ट्र संघ से अपील की परन्तु कोई कार्रवाई नहीं की गई। जापान ने राष्ट्र संघ छोड़ दिया और इसने 1937 में चीन पर एक और आक्रमण किया।

### इटली का इथियोपिया पर कब्जा

1936 में इटली ने इथियोपिया पर धावा बोला और संघ से इसकी अपील की गई। लीग ने आक्रामक के रूप में इटली की निंदा की तथा इटली को हथियारों की बिक्री पर रोक लगा दी। तथापि 1936 तक इटली ने इथियोपिया पर जीत हासिल की तथा संघ एक बार फिर आक्रमण को रोकने में असफल रहा।

### नाजी जर्मनी का विस्तार

हिटलर के सत्ता में आने संबंधी अपने अध्ययन में हमने देखा कि वह जर्मनी का चांसलर तथा राष्ट्रपति बन गया। तत्पश्चात् इसने वर्साय की संधि का उल्लंघन करते हुए जर्मनी में पुनः सैन्यीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ की।

जर्मन की सेनाओं ने रिनेलैंड में प्रवेश किया, जहाँ इस संधि द्वारा सैनिक शासन हटाया गया था। इसके अतिरिक्त इस संधि सीमा की 100,000 की तुलना में सैनिकों की संख्या 800,000 थी। फ्रांस और ब्रिटेन द्वारा बदले की कोई कार्रवाई करने के कारण हवाई सेना और जल सेना के निर्माण के लिए हिटलर के विश्वास को बल मिला। 1936 में हिटलर और मुसोलिनी ने रोम–बर्लिन एक्सिस पर हस्ताक्षर किए तथा 1937 में जापान के साथ उन्होंने कमिंटर्नरोधी समझौते पर हस्ताक्षर किए।

हिटलर की अगली योजना ऑस्ट्रिया को मिलाने की थी। ऑस्ट्रिया और जर्मनी का समायोजन अथवा एंसीड्लूज 1938 में पूरा हुआ। उसी वर्ष म्यूनिक के सम्मेलन में ब्रिटेन और फ्रांस ने म्युनिक समझौते पर हस्ताक्षर किए। इस समझौते के द्वारा वे चेकोस्लोवाकिया

में सुडेटेनलैंड में जर्मन के कब्जे से सहमत थे। इन वार्ताओं में चेकोस्लोवाकिया के लोगों की कोई भूमिका नहीं थी। जर्मनी सुडेटेनलैंड पर अपना कब्जा बनाए रखना चाहता था, क्योंकि इस क्षेत्र में जर्मन के लोग अधिक रहते थे तथा यह कोयला, रसायन एवं आयरन और स्टील उद्योगों का केंद्र था। कुछ माह बाद जर्मनी ने समग्र चेकोस्लोवाकिया पर कब्जा कर लिया। म्युनिक समझौता पश्चिमी शक्तियों के तुष्टिकरण का अंतिम कृत्य था।

दिनांक 5 अक्तूबर, 1938 के नेशनल हेराल्ड के एक लेख में पंडित नेहरू ने लिखा था कि म्युनिक समझौते पर हस्ताक्षर करने के लिए ब्रिटेन और फ्रांस को शर्म से सिर कटवा लेना चाहिए।

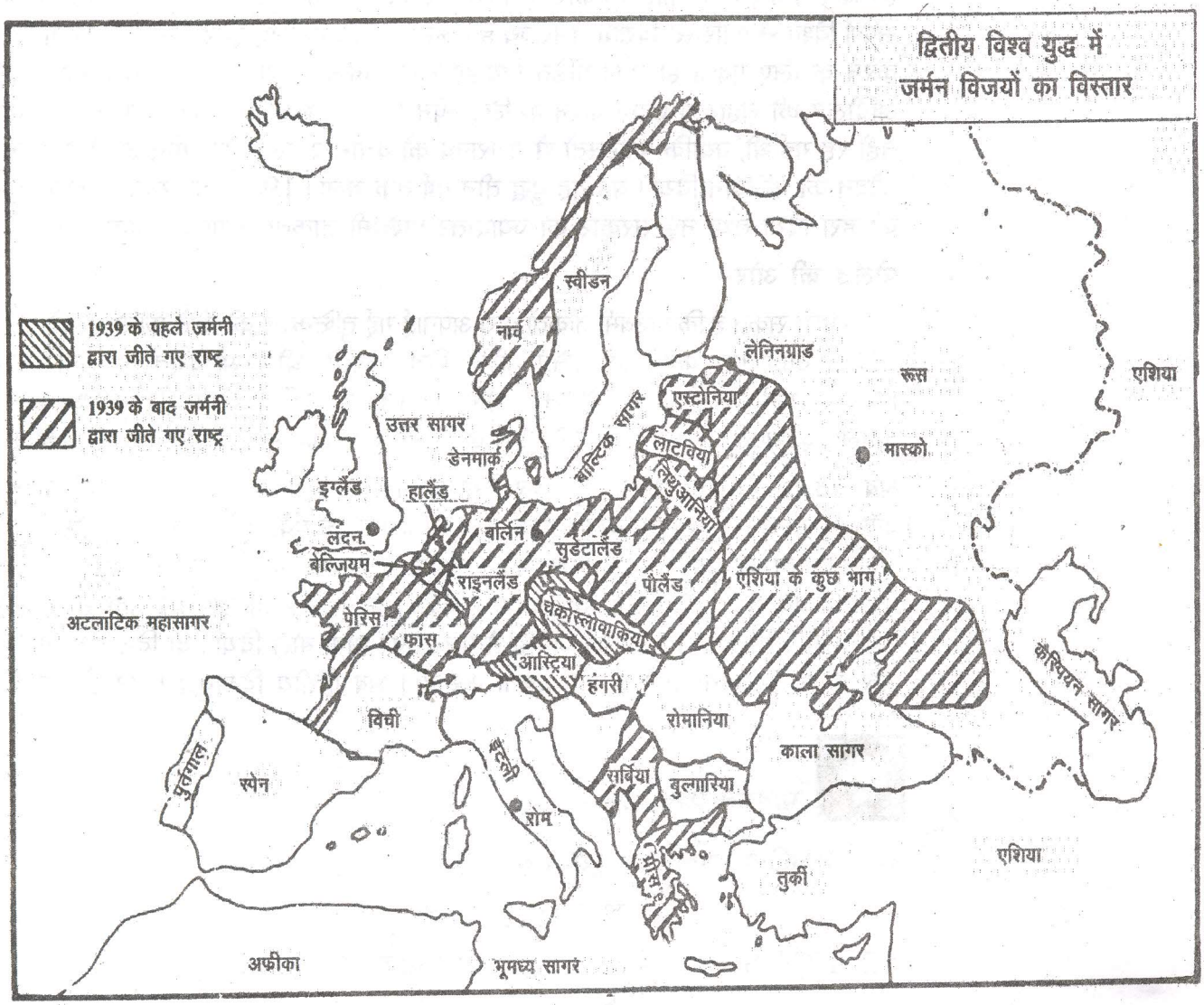


*मानचित्र 24.3-द्वितीय विश्व युद्ध में जर्मन विजयों का विस्तार*

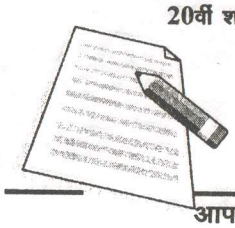

आपकी टिप्पणियाँ

## द्वितीय विश्वयुद्ध का पूर्वाभ्यास

जर्मनी–इटली के संयुक्त आक्रमण का प्रथम उदाहरण स्पेन के गृहयुद्ध (1936–39) के दौरान देखा गया था। संपूर्ण विश्व पर गंभीर परिणाम पड़े तथा इसे द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्वाभ्यास के रूप में समझा गया है।

1936 में समाजवादियों, साम्यवादियों एवं फासिस्ट–विरोधी अन्य पार्टियों वाली लोकप्रिय फ्रंट सरकार स्पेन में सत्ता में आई। जनरल फ्रेंकों की अध्यक्षता में उन्होंने प्रजातांत्रिक गणराज्य गठित किया, सेना के एक भाग ने इस सरकार को उखाड़ फेंकने की योजना बनाई। जर्मनी और इटली ने फ्रैंकों के लोगों को सैन्य सहायता दी थी तथा जर्मनी के हवाई जहाजों ने स्पेन के नगरों और गांवों पर हवाई छापे मारे। उन्होंने देश के कई भागों पर कब्जा कर लिया तथा अधीनता स्वीकार करने पर लोगों को आतंकित किया।

गणराज्य सरकार ने सहायता के लिए गुहार लगाई परन्तु ब्रिटेन, फ्रांस और अमरीका ने हस्तक्षेप न करने की नीति स्वीकार की। सिर्फ सोवियत संघ ने गणराज्य की सहायता की। संपूर्ण विश्व से फासिस्ट विरोधी गणराज्य हेतु लड़ाई करने के लिए इंटरनेशनल ब्रिगेड गठित करने के लिए एकत्र हो गए। पंडित जवाहर लाल नेहरू गणराज्य को भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की सहायता प्रदान करने के लिए स्पेन गए। स्पेन का गृह युद्ध स्पेन की समस्या नहीं रह गई थी, क्योंकि फासिस्टों से गणराज्य को बचाने के लिए गैर–स्पेन लोगों ने अपने जीवन का बलिदान दिया। यह गृह युद्ध तीन वर्ष तक चला। 1939 तक स्पेन ने फासिस्टों को हरा दिया तथा नई सरकार को ज्यादातर पश्चिमी ताकतों ने मान्यता प्रदान की।

## पोलैंड की ओर

आप समझ सकते हैं कि पश्चिमी ताकतों द्वारा अपनाई गई तुष्टिकरण की नीति फासिस्टों को और अधिक आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित करती थी। सोवियत ने फासिस्ट विरोधी सहयोग की मांग की थी, लेकिन पश्चिमी ताकत सहमत नहीं हुईं। अपने हित की रक्षा करने के लिए यूएसएसआर ने अगस्त 1939 में जर्मनी के साथ आक्रमण समझौते हस्ताक्षर किए।

अब हिटलर ने अपना ध्यान पोलैंड पर लगा लिया। वह डैनजिंग मुक्त शहर और पॉलिश कॉरिडर दोनों लेना चाहता था। आपको याद होगा यह जो पूर्वी प्रूसिया को शेष–जर्मनी से अलग करता था। ब्रिटिश और फ्रांस की सरकारों ने घोषणा की कि यदि ने जर्मनी पोलैंड पर धावा किया तो वे जर्मनी पर आक्रमण करेंगे। परन्तु अब हिटलर को नहीं रोका जा सकता था। सितंबर, 1939 को जर्मनी ने पोलैंड पर धावा बोल दिया। दो दिन बाद ब्रिटेन और फ्रांस ने जर्मनी से युद्ध की घोषणा कर दी। अब द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारंभ हो गया।

## पाठगत प्रश्न 24.4

**क. निम्नांकित वाक्यों को पूरा करो**

1. संघ _____ को रोकने में विफल रहा।
2. 1931 में जापान ने _____ पर धावा बोला।
3. इटली ने _____ पर कब्जा करके संघ की अवहेलना की।
4. जर्मनी की सेनाओं ने _____ के विसैन्यीकरण क्षेत्र में प्रवेश किया।

5. म्युनिक समझौते में जर्मनी को _____ पर कब्जा करने की अनुमति थी।
6. एंस्कल्स _____ और _____ के संयोजन से संबंधित है।
7. स्पेन की लोकप्रिय फ्रंट सरकार में _____ सम्मिलित थे।
8. _____ पर आक्रमण करने से द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारंभ हुआ।
9. कॉमिंटर्नविरोधी समझौता पर _____ के बीच हस्ताक्षर हुए।
10. तुष्टिकरण की नीति _____ को बढ़ावा देती थी।

## 24.5 युद्ध के दौरान विश्व

अभी हमने पढ़ा है कि पोलैंड के आक्रमण को द्वितीय विश्वयुद्ध की शुरुआत माना जाता था। जर्मन की सेना ने पश्चिम से पोलैंड की सीमा में प्रवेश किया तथा तीन सप्ताह में पोलैंड पर जीत हासिल कर ली। युद्ध की घोषणा किए जाने के बावजूद, पोलैंड को कोई सहायता नहीं मिली। सोवियत रेड आर्मी ने उन क्षेत्रों को वापस हासिल करने के

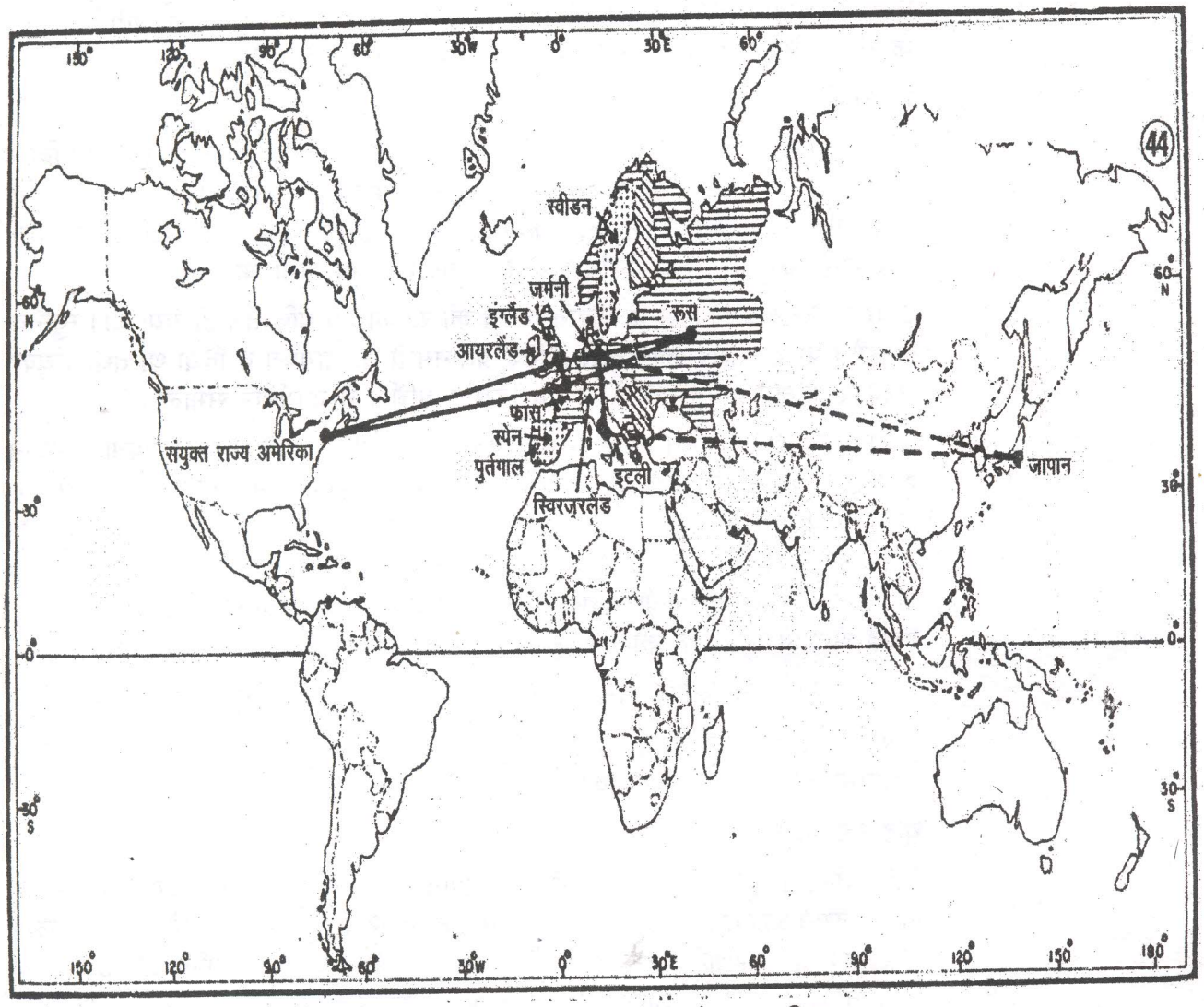


*मानचित्र 24.4 युद्ध के समय विश्व*

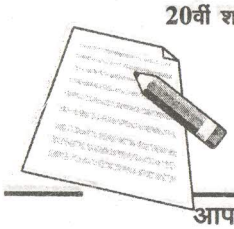

आपकी टिप्पणियाँ

अवसर का फायदा उठाया, जो पहले रूसी साम्राज्य के हिस्से थे। 1940 तक रूस ने बाल्टिक राज्यों ऐस्टोनिया, लाटविया और लिथुवानिया पर कब्जा कर लिया तथा फिनलैंड से जबरन संधि कर ली। क्योंकि पहले छह माह तक वास्तव में बहुत कम युद्ध हुआ। अतः इस अवधि को 'फोनी युद्ध अवधि' के रूप में जाना जाता है

9 अप्रैल, 1940 को जर्मनी सेनाओं ने नोर्वे और डेनमार्क पर आक्रमण किया तथा उन पर जीत हासिल की। अगला आक्रमण तटस्थ देशों बेल्जियम, हॉलैंड तथा लक्समबर्ग पर था। इसके बाद फ्रांस पर धावा बोला गया। जर्मनी सेनाओं ने 14 जून, 1940 को लड़ाई किए बिना राजधानी शहर पेरिस पर अधिकार कर लिया। फ्रांस की सरकार ने आत्मसमर्पण कर दिया और जर्मनी ने उत्तरी फ्रांस के आधे भाग पर कब्जा कर लिया। आधा भाग फ्रांस के अधीन बना रहा और इसे विशी फ्रांस कहा जाता था। वे नाजियों से मिल गए। हिटलर द्वारा यूरोप के देशों पर त्वरित रूप से कब्जा करने को 'लाइटनिंग युद्ध' कहा जाता है।

यद्यपि लगभग 350000 ब्रिटिश, फ्रांस और बेल्जियम सेनाओं ने आत्मसमर्पण नहीं किया था तथापि वे फ्रांस के उत्तरी तट पर डनकिर्क पहुंचे जहां से उन्होंने ब्रिटेन की ओर प्रस्थान किया। उनमें फ्रांस की सेना का कर्नल चार्ल्स था, जिसने नाजी जर्मनी से युद्ध करने के लिए ब्रिटेन में 'स्वतंत्र फ्रांस' आंदोलन प्रारंभ किया था।

### ब्रिटेन हेतु युद्ध

पश्चिमी यूरोप पर विजय अभियान लगभग पूरा हो जाने पर हिटलर ने अपना ध्यान ब्रिटेन पर केंद्रित कर लिया। ब्रिटेन पर आक्रमण अथवा 'ऑपरेशन–सी–लॉयन' तभी संभव था जब जर्मन की सेना इंगलिश चैनल को पार कर ले। इसका अर्थ था कि शाही हवाई सेना और शाही जल सेना को कार्रवाई के लिए तुरंत रवाना होना था।

ऊपर उल्लिखित विकास के दौरान ब्रिटेन की सरकार में परिवर्तन हो गया था। म्युनिक समझौते पर हस्ताक्षर करने वाले ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने त्यागपत्र दे दिया था तथा संयुक्त सरकार के नए प्रधानमंत्री के रूप में विंस्टन चर्चिल ने कार्यभार संभाला।

अगस्त 1940 में, जर्मन हवाई सेना (लुफ्तवैफे) ने ब्रिटिश आसमान पर अपना अभियान शुरू कर दिया तथा ब्रिटिश बंदरगाहों और शहरों पर हवाई हमले किए। जर्मनी ने रात को बड़े–बड़े शहरों विशेष रूप से लंदन पर रात को हमले करना शुरू कर दिया था। अगर एक और लुफ्तवैफे के बीच हुए हवाई युद्धों को 'डॉग फाउट्स' के रूप में जाना जाता था। चर्चिल के प्रभावी भाषणों ने लोगों के मनोबल को ऊंचा बनाए रखा तथा ब्रिटिश हवाई सेना ने लुफ्तवैफे को भारी नुकसान पहुंचाया।

नवंबर 1940 तक 'ऑपरेशन–सी–लॉयन' अनिश्चित काल के लिए समाप्त हो गया था।

आरएएफ की भूमिका की प्रशंसा करते हुए चर्चिल ने कहा था, 'कभी किसी ने इतने कम में इतना अधिक करके नहीं दिखाया।'

### युद्ध का विस्तार

27 सितंबर, 1940 को जर्मनी, इटली और जापान ने बर्लिन में त्रिपक्षीय समझौते पर हस्ताक्षर किए, जिसमें आक्रमण होने पर प्रत्येक देश ने एक–दूसरे को पूर्ण समर्थन देने का वादा किया गया था। तीन महाशक्तियां यूरोप की नई व्यवस्था की स्थापना में जर्मनी और इटली की अध्यक्षता तथा एशिया में जापान की इसी तरह की अध्यक्षता के लिए सहमत थीं। कुछ अन्य राष्ट्र जैसे हंगरी, रूमानिया और बुल्गारिया भी इस समझौते मेंसम्मिलित हो गए थे।

इस दौरान युद्ध यूरोप और अफ्रीका के अन्य भागों में फैल गया था। इटली ने ग्रीस पर आक्रमण कर दिया परन्तु उसे कड़े मुकाबले का सामना करना पड़ा। तथापि जर्मनी सेनाएं ग्रीस, यूगोस्लाविया और उत्तरी अफ्रीका के भागों पर कब्जा करने में सफल रहीं। इटली और ब्रिटेन की सेनाओं ने अफ्रीका के अनेक क्षेत्रों के लिए युद्ध किया तथा यह युद्ध अगले दो वर्षों तक जारी रहा।

### जर्मनी सोवियत संघ के विरुद्ध

हिटलर के सोवियत संघ पर आक्रमण करने के निर्णयं से युद्ध में एक नया अध्याय और जुड़ गया। आक्रमण नही करने के समझौते को भुला दिया गया तथा युद्ध की औपचारिक घोषणा किए बिना 22 जून, 1941 को 'ऑपरेशन बारबेरोसा' प्रारंभ किया गया। जर्मनी की सेना तीन भागों–लेनिनग्रेड, मॉस्को और कीब की ओर तेजी से बढ़ी तथा सोवियत सेना घबरा कर पीछे हट गई। सोवियत संघ द्वारा सहायता के लिए की गई सकारात्मक पहल के अच्छे परिणाम निकले और इस बार ब्रिटेन तथा अमरीका ने सहायता दी।

हिटलर को सर्दी शुरू होने से पहले युद्ध के समाप्त होने की उम्मीद थी। अक्तूबर के प्रारंभ तक मॉस्को को घेर लिया गया। परन्तु तब तक सर्दी आरंभ हो चुकी थी। एक माह के भीतर तापमान–40 डिग्री सेल्सियस चला गया। जर्मन के सैनिक और उनके उपकरण इतनी ठंड में ठीक से काम नहीं कर पाए। दिसंबर में रूस ने प्रति आक्रमण प्रारंभ किया और जर्मनी सेनाओं को वापस जाना पड़ा। मॉस्को की धमकी समाप्त हो गई थी। 'ऑपरेशन बारबेरोसा' असफल रहा, परन्तु जर्मन ने रूस की एक और सर्दी के कष्ट उठाने और सोवियत रेड आर्मी के साहसिक मुकाबले के बाद ही पूर्ण हार स्वीकार की।

### वैश्विक युद्ध

युद्ध प्रारंभ हो गया था इसलिए अमरीका ने ब्रिटेन के प्रति सहानुभूति दिखाई, उसे पहले नकद बिक्री आधार पर तथा तत्पश्चात् 'उधार–पट्टा' प्रणाली पर हथियार खरीदने की अनुमति दी गई थी। दूसरे प्रकार की सहायता नवंबर, 1941 में सोवियत संघ को भी दी गई थी। तथापि अमरीका ने प्रत्यक्ष युद्ध करने का विरोध किया था।

तथापि 7 सितंबर, 1941 में जापान ने हवैई में पर्ल हॉर्बर में अमरीका के नेवल बेस पर अचानक आक्रमण प्रारंभ कर दिया। इसके परिणामस्वरूप अमरीकी प्रशांत बेड़ा ध्वस्त हो गया तथा 2000 से अधिक सैनिकों की मृत्यु हुई। 8 दिसंबर को अमरीका ने जापान से युद्ध की घोषणा की और कुछ दिन बाद ही जर्मनी और इटली से भी युद्ध की घोषणा की। वास्तव में यह युद्ध वैश्विक हो गया।

पर्ल हर्बर के बाद जापानी 1942 के मध्य में थाइलैंड, मलाया, सिंगापुर, हांगकांग, फिलिपिंस तथा बर्मा पर कब्जा करता हुआ सुदूर पूर्व में तेजी से आगे बढ़ा। फासिस्ट राष्ट्रअपनी शक्ति के चरम पर थे।

### स्टेलिनग्रेड का युद्ध

1942 की गर्मियों के दौरान, हिटलर की सेना ने सोवियत संघ में अपने आक्रमण जारी रखे। हिटलर की जीत की दुबारा आशा थी परन्तु जर्मनी सेना को स्टेलिनग्रेड में रोका गया। नवंबर तक जर्मन की सेनाएं स्टेलिनग्रेड के आस–पास थीं परन्तु सोवियत सेनाओं ने उन्हें घेर लिया। जर्मनी सेना की सभी आपूर्ति रोक दी गई थी। इस युद्ध में जर्मनी और इसके मित्र राष्ट्रों ने लगभग 250000 जानें गंवाई, जिसे इस युद्ध का मोड़ समझा गया। अत्यधिक लोगों की मृत्यु होने और घायल होने से सोवियत संघ को भी भारी नुकसान हुआ।

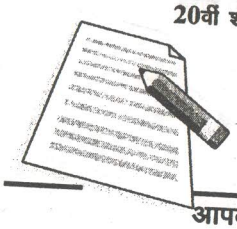

आपकी टिप्पणियाँ

## अंत की शुरुआत

इसी बीच उत्तरी अफ्रीका में यह युद्ध जनरल मोंटगोमरी के अंतर्गत पश्चिमी आठ सेनाओं तथा इटली की सेनाओं की सहायता के लिए हिटलर द्वारा भेजे गए जनरल रोमेल के अधीन जर्मनी अफ्रीका कॉर्प्स के बीच संघर्ष में बदल गया। अगस्त 1942 में रोमेल मिस्र की ओर बढ़ना शुरू हुआ। यह निर्णायक युद्ध अक्तूबर 1943 में मिस्र के उत्तरी तट पर ई1 अलेमैन में लड़ा गया था, जिससे रोमेल की हार हुई।

1943 की गर्मियों तक मित्र राष्ट्रों ने उत्तरी अफ्रीका पर कब्जा कर लिया। जुलाई में उन्होंने सिसिली पर आक्रमण किया। मुसोलिनी की सरकार को हटा दिया गया तथा इटली ने बिना शर्त के आत्मसमर्पण किया। जर्मनी सेनाओं ने तत्काल उत्तरी इटली में कूच किया और मुसोलिनी को आजाद किया, जिससे जर्मनी के संरक्षण में अपनी सरकार स्थापित की।

पूर्वी सीमा पर सोवियत रेड आर्मी ने हिटलर की सेना को उसी रास्ते पर पीछे हटने के लिए मजबूर किया, जिस पर वे पिछले ढाई वर्ष से बड़े विश्वास से डेरा डाले हुए थे।

पूर्वी यूरोप के ज्यादातर राष्ट्र–पोलैंड, रूमानिया, बुल्गारिया, चेकोस्लोवाकिया तथा हंगरी–स्वतंत्र हो चुके थे। फासिस्टों को ग्रीस, युगोस्लाकिया और अल्बानिया से खदेड़ा जा चुका था।

जून 1944 में, मित्र राष्ट्रों ने पश्चिमी यूरोप में द्वितीय मोरचा प्रारंभ कर दिया। 6 जून के दिन मित्र राष्ट्रों की सेनाओं की पहली टुकड़ी फ्रांस के उत्तरी तट में नॉर्मैंडी के तटों पर उतरी। सेनाओं को यहाँ उतारने की योजना अत्यधिक गोपनीय रूप से बनाई गई थी तथा उन्होंने अचानक जर्मनी पर कब्जा कर लिया। जनरल इसेनहोवर के नियंत्रण में उन्होंने जर्मनी की सुरक्षा पंक्ति में सेंध लगाई तथा सितंबर तक ब्रूसेल्स, पेरिस और लक्समबर्ग को स्वतंत्र करवाया।

## फासिस्ट शक्तियों द्वारा आत्मसमर्पण

1945 की वसंत ऋतु तक युद्ध की समाप्ति महसूस होने लगी थी। मित्र राष्ट्रों की सेनाओं ने इटली के कई शहरों को कब्जे में ले लिया था। अप्रैल में फासिस्ट के कब्जे वाले क्षेत्रों में विद्रोह हुआ। 28 अप्रैल को मुसोलिनी को बंदी बनाया गया और फांसी दी गई, इस प्रकार इटली में फासिस्टवाद का अंत हुआ।

अब जर्मनी का पतन निश्चित था। मित्र राष्ट्रों की सेना ने जर्मनी में तीन दिशाओं–दक्षिण, उत्तर–पश्चिम तथा पूर्व से प्रवेश किया और जैसे ही सोवियत सेना बर्लिन पहुंची, हिटलर ने आत्महत्या कर ली। 7 मई को जर्मनी ने बिना शर्त के आत्मसमर्पण कर दिया।

## जापान का पतन

जर्मनी के आत्मसमर्पण के बावजूद भी एशिया और प्रशांत में युद्ध जारी रहा। प्रशांत और सुदूर पूर्व में अमरीका और ब्रिटेन की विजय के बावजूद जापान अभी भी डरा हुआ था। 6 अगस्त, 1945 को अमरीका ने जापान के शहर हिरोशिमा पर पहला परमाणु बम गिराया। पचास हजार लोग मारे गए तथा शहर का बड़ा भाग धराशायी हो गया। दो दिन बाद, दूसरे बम ने नागाशाकी शहर को ध्वस्त कर दिया तथा जापान को मजबूरन आत्मसमर्पण करना पड़ा।

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति हुई। 50 से ज्यादा राष्ट्र इस युद्ध में सम्मिलित थे। एक और अंतर्राष्ट्रीय संगठन–संयुक्त राष्ट्र संगठन–की स्थापना की गई ताकि विश्व में शांति कायम की जा सके। परन्तु दो महाशक्तियां–संयुक्त राज्य अमरीका तथा सोवियत

समाजवादी संघ गणराज्य–संसार को दो शक्तियों में बांटने की कोशिश करेंगे। इससे शीतयुद्ध की स्थिति उत्पन्न होगी। इस संबंध में हम अगले अध्याय में पढ़ेंगे।

## पाठगत प्रश्न 24.5

**क. निम्नलिखित का मेल कीजिए**

| | |
|---|---|
| 1. मुक्त फ्रांस आंदोलन | ऑपरेशन बारबेरोसा |
| 2. ब्रिटेन का युद्ध | विंस्टन चर्चिल |
| 3. यूएसएसआर का आक्रमण | ऑपरेशन सी–लॉयन |
| 4. ब्रिटिश प्रधानमंत्री | नॉर्मेन्डी |
| 5. द्वितीय मोरचा | स्पिटफॉयर और हरिकेन |
| 6. ब्रिटिश हवाई जहाज | चार्ल्स डि गौले |

**ख. निम्नांकित वाक्यों को पूरा करो**

1. द्वितीय विश्व युद्ध _____ से शुरू हुआ था।
2. ऑपरेशन सी–लॉयन तभी संभव था यदि _____।
3. पर्ल हार्बर पर आक्रमण से _____ हुआ।
4. ऑपरेशन बारबेरोसा विफल रहा, क्योंकि _____ ।
5. स्टेलिनग्रेड का युद्ध _____ समझा जाता था।
6. एशिया और प्रशांत में युद्ध _____ से समाप्त हुआ।

## आपने क्या सीखा

1. शांति संधियों पर हस्ताक्षर करने के साथ ही प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति हुई तथा राष्ट्र संघ का सृजन किया गया ताकि वह विश्व को युद्ध से सुरक्षित रख सके।
2. इन संधियों ने यूरोप का मानचित्र बदल दिया। बड़े साम्राज्यों जैसे रूस, प्रूशिया और ऑस्ट्रिया–हंगरी के टुकड़े हो गए तथा इनके स्थान पर अनेक छोटे–छोटे राष्ट्र–राज्यविकसित हुए।
3. रूसी क्रांति की सफलता से समाजवादी विचारधाराएं फैलीं तथा यूरोप के लगभग सभी राष्ट्रों में समाजवादी पार्टियों का उदय हुआ।
4. युद्धोत्तर काल यूरोप के ज्यादातर राष्ट्रों के लिए आर्थिक संकट से भरा था तथा इनकी सरकारों ने अपने देशों में इस प्रकार की क्रांति को आने से रोकने के लिए कदम उठाए।
5. इटली और जर्मनी में शासित पार्टियों ने फासिस्ट आंदोलनों को प्रोत्साहन दिया, जिसके परिणामस्वरूप इटली में मुसोलिनी और जर्मनी में हिटलर जैसे ताकतवर तानाशाहों का आविर्भाव हुआ। इन फासिस्ट नेताओं ने समाजवादियों और साम्यवादियों का निर्दयता से दमन किया। ये विस्तार–वाद और युद्ध में विश्वास रखते थे।

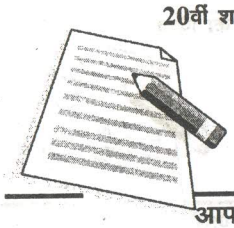

आपकी टिप्पणियाँ

जापान ने जर्मनी और इटली से सहयोग किया तथा तीनों महाशक्तियों ने 1937 में कोमिंटर्न विरोधी समझौते पर हस्ताक्षर किए।

6. जब फासिस्ट आक्रमण शुरू हुआ तो पश्चिमी शक्तियों ने तुष्टिकरण की नीति अपनाई। इनका मानना था कि सोवियत रूस पर आक्रमण से नियंत्रण किया जा सकेगा। परन्तु हिटलर की योजनाएं थीं और शीघ्र ही यह युद्ध यूरोप में फैल गया।
7. द्वितीय विश्व युद्ध (1939–1945) अत्यधिक विनाशकारी था और यह जापान के हिरोशिमा और नागाशाकी शहरों पर परमाणु बम गिराने के साथ समाप्त हुआ।

## पाठांत प्रश्न

1. वर्साय की संधि के क्या प्रावधान थे? क्या इन्होंने दूसरे युद्ध के बीज बोए?
2. इटली में मुसोलिनी के सत्ता में आने का उल्लेख करें? उसने विरोधियों के साथ कैसा व्यवहार किया?
3. नाजी नीतियों के क्या उद्देश्य थे? इन उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए हिटलर ने क्या–क्या प्रयास किए? क्या उसकी पद्धतियाँ उचित थी?
4. पश्चिमी ताकतों ने 1930 के दौरान तुष्टिकरण की नीति क्यों अपनाई? फासिस्टों पर इसका क्या प्रभाव पड़ा?

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

**24.1 क**

1. अधिदेशात्मक शांति
2. मित्र राष्ट्रों का हस्तक्षेप
3. प्रतिज्ञापत्र
4. अधिदेश
5. बाल्टिक महासागर हेतु मार्ग

**24.1 ख**

1. अंतर्राष्ट्रीय सहयोग, शांति और सुरक्षा को बढ़ावा
2. शांति, स्वतंत्रता, प्रजातंत्र और स्वाधीनता का युग
3. जर्मनी के साथ संधि पर हस्ताक्षर
4. इस्टोनिया, लाटविया तथा लिथुवानिया
5. ऑस्ट्रिया, प्रूसिया और रूस

**24.2 क**

1. गलत

2. गलत
3. सही
4. गलत
5. गलत

**24.2 ख**

1. ब्लैक शर्ट्स
2. मैन कैम्फ (मेरा संघर्ष)
3. प्रजातंत्र, समाजवाद
4. मार्च, रोम
5. मनचुरिया, चीन

**24.3 क**

1. अमरीका
2. कुलाक
3. यूएसएसआर
4. सहकारी खेत
5. तीव्र मंदी

**24.3 ख**

1. सही
2. सही
3. गलत
4. सही
5. सही

**24.4**

1. आक्रमण
2. मैनचुरिया
3. इथियोपिया
4. रिनेलैंड
5. सुडेटेनलैंड
6. ऑस्ट्रिया, जर्मनी
7. साम्यवादी और फासिस्ट विरोधी
8. पोलैंड

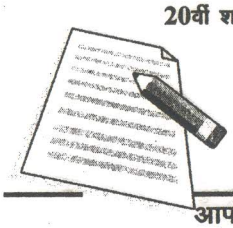

आपकी टिप्पणियाँ

9. जर्मनी, इटली और जापान
10. फासिस्टवादी

**24.5 क**

1. चार्ल्स डि गोले
2. ऑपरेशन सी–लॉयन
3. ऑपरेशन बारबेरोसा
4. किंस्टन चर्चिल
5. नोर्मैंडी
6. स्पिट फायर्स एवं हरिकेंस

**24.5 ख**

1. पोलैंड पर आक्रमण
2. जर्मनी सेना इंगलिश चैनल पार करती
3. युद्ध में अमरीका का प्रवेश
4. जर्मनी सेनाएं रूस की ठंड बरदाश्त नहीं कर सकीं
5. युद्ध का दिशा–परिवर्तन
6. हिरोशिमा और नागाशाकी पर परमाणु बम गिराया जाना।

**पाठांत प्रश्नों हेतु संकेत**

1. 24.1 पैरा 2–3
2. 24.2 पैरा 3–4
3. 24.2 पैरा 7–9
4. 24.4 पैरा–1

**शब्दावली**

**समामेलन** : दूसरे के राज्य को अपने राज्य क्षेत्र में मिलाना

**कमिनटर्न** : रूसी कम्युनिस्ट पार्टी वाले राष्ट्रों द्वारा स्थापित कम्युनिस्ट इंटरनेशनल। संपूर्ण विश्व में क्रांतियां लाने के उद्देश्य से विश्व की संपूर्ण कम्युनिस्ट पार्टियां इसकी सदस्य थीं।

**भावपूर्ण भाषण** : धाराप्रवाह, ओजस्वी, प्रभावशाली और आकर्षक ढंग से बोलना।

**विध्वंस** : द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान और बाद में नाजियों द्वारा 6 मिलियन से अधिक यूरोप के यहूदियों को व्यवस्थित ढंग से मारा गया।

**साम्राज्यवाद** : उपनिवेशों अथवा पराधीन राष्ट्रों के अधिग्रहण करने और प्रशासन चलाने की नीति उदाहरणार्थ भारत, ब्रिटेन साम्राज्यवाद का उपनिवेश था।

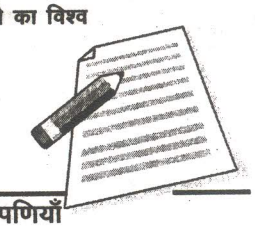

आपकी टिप्पणियाँ

**अतिराष्ट्रीयता** : अतिशय अथवा अत्यधिक देशभक्ति राष्ट्र के प्रति अत्यधिक वफादारी।

**समाजवाद** : राजनैतिक और आर्थिक प्रणाली जिसमें उत्पादन के साधनों पर राज्य का नियंत्रण होता है और सम्पत्ति का उचित वितरण होता है।

**सर्वसत्तात्मक** : सरकार की ऐसी प्रणाली जिसमें एक पार्टी की तानाशाही होती है और राज्य सर्व शक्तिमान होता है तथा व्यक्ति राज्य के अधीन रहता है।

**समय रेखा (1919-1945)**

| | | |
|---|---|---|
| 28 अप्रैल, 1919 | : | राष्ट्र संघ की स्थापना |
| 28 जून, 1919, | : | वर्साय की संधि पर हस्ताक्षर |
| 29 जुलाई, 1921 | : | हिटलर नाजी पार्टी के नेता बने |
| 28–29 अक्तूबर, 1922 | : | रोम पर चढ़ाई, मुसोलिनी ने सरकार बनाई |
| 29 अक्तूबर, 1929 | : | अमरीका में शेयर बाजार में गिरावट आई |
| 30 जनवरी, 1933 | : | हिटलर की जर्मनी के चांसलर के रूप में नियुक्ति |
| 2 अगस्त, 1934 | : | हिटलर राष्ट्रपति भी बने |
| 7 मार्च, 1936 | : | जर्मनी सेनाओं ने रिनेलैंड पर कब्जा किया |
| 9 मई, 1936 | : | मुसोलिनी की इटली सेनाओं ने इथियोपिया पर कब्जा किया |
| 18 जुलाई, 1936 | : | स्पेन में गृह युद्ध प्रारंभ |
| 12 मार्च, 1938 | : | एंस्क्लूस–नाजियों ने ऑस्ट्रिया पर कब्जा किया |
| 30 सितंबर, 1938 | : | म्युनिक समझौते पर हस्ताक्षसर |
| 23 अगस्त, 1939 | : | नाजी–सोवियत समझौते पर हस्ताक्षर |
| 3 सितंबर, 1939 | : | ब्रिटेन और फ्रांस ने जर्मनी से युद्ध की घोषणा की |
| अप्रैल–मई, 1940 | : | नाजियों ने नॉर्वे, डेनमार्क, बेल्जियम, हॉलैंड, लक्सम्बर्ग और फ्रांस पर आक्रमण किया। |
| 10 जुलाई, 1940 | : | ब्रिटेन का युद्ध प्रारंभ |
| 13 सितम्बर, 1940 | : | इटली ने मिस्र पर आक्रमण किया |
| 12 अक्तूबर, 1940 | : | ऑपरेशन सी–लायन समाप्त |
| 22 जून, 1941 | : | ऑपरेशन बारबेरोसा प्रारंभ |
| 5 दिसंबर, 1941 | : | मॉस्को पर जर्मन का आक्रमण रोक दिया गया। |

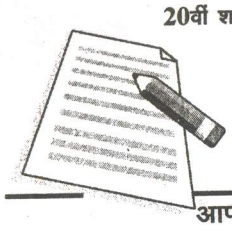

आपकी टिप्पणियाँ

25

# शीतयुद्ध युग और इसकी राजनीति

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद, इस युद्ध के मित्र राष्ट्र संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत रूस के बीच शीत युद्ध प्रारंभ हो गया। युद्ध के दौरान ये दोनों राष्ट्रों जर्मनी एवं इटली की फासीवादी तानाशाही और जापान के साम्राज्य को हराने के लिए ब्रिटेन और फ्रांस के साथ एक ही ओर से लड़ रहे थे। दोनों देशों ने 1941 में पांच वर्षीय अनाक्रमण–संधि पर हस्ताक्षर भी किए थे। यहाँ तक कि फरवरी 1945 में हुए याल्टा सम्मेलन तक दोनों देशों के बीच कुछ सौहार्द कायम था। लेकिन जल्दी ही परिस्थिति पूर्णतः बदल गई और संयुक्त राज्य अमेरिका तथा सोवियत संघ दोनों एक–दूसरे के सामने 'युद्ध जैसी स्थिति' में खड़े हो गए, जिसे सामान्यतः शीतयुद्ध कहा जाता है।

## उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- शीतयुद्ध का अर्थ बता सकेंगे;
- शीतयुद्ध के लिए जिम्मेदार कारकों का वर्णन कर सकेंगे;
- संघर्ष के विभिन्न मुद्दों का उल्लेख कर सकेंगे; और
- शीतयुद्ध की नए शीतयुद्ध से तुलना कर सकेंगे।

## 25.1 शीतयुद्ध का अर्थ

शीतयुद्ध को नई महाशक्तियों के बीच 'शांतिकाल में बिना हथियारों के चलने वाले युद्ध' के रूप में वर्णित किया जाता है। यह महाशक्तियों के बीच 'कूटनीतिक युद्ध' या हथियारबंद लड़ाई नहीं, बल्कि यह वैचारिक घृणा और राजनीतिक अविश्वास पर आधारित था। फ्लेमिंग के अनुसार 'शीतयुद्ध एक ऐसा युद्ध है, जो युद्ध–क्षेत्र में नहीं लड़ा जाता, अपितु लोगों के दिमाग में चलता है, इसमें एक व्यक्ति दूसरे के दिमाग को नियंत्रित करने की कोशिश करता है। शीतयुद्ध खुले युद्ध से बहुत भिन्न होता था, क्योंकि खुले युद्ध में शत्रुओं को पूर्ण जानकारी होती है और युद्ध खुले मैदान में लड़ा जाता है। शीतयुद्ध में कभी युद्ध की घोषणा नहीं की गई और देशों के बीच कूटनीतिक संबंध कायम रखे गए। शीतयुद्ध में सैनिक टकराव और जीवन–हानि भी हुई, लेकिन वह एक

मनोवैज्ञानिक युद्ध भी था, जिसका उद्देश्य दुश्मन के प्रभाव क्षेत्र को कम करना और अपने समर्थकों की संख्या बढ़ाना था।

शीतयुद्ध संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ के बीच द्विध्रुवीय टकराव था, लेकिन उसमें मित्र राष्ट्र और दोनों महाशक्तियों के सहयोगी और अधीनस्थ राष्ट्र भी शामिल थे। शीतयुद्ध को दो विचारधाराओं और दो अलग–अलग ढंग से संगठित अर्थव्यवस्था प्रणालियों एवं सामाजिक साम्यवाद और उदार प्रजातंत्र तथा समाजवादी नियंत्रित अर्थव्यवस्था तथा पूंजीवाद के बीच विरोध के रूप में भी समझा गया है। यद्यपि इतिहास में अनेक द्विध्रुवीय विरोध देखने को मिलते हैं, लेकिन यह पहला अवसर था, जब दो भिन्न–भिन्न स्वरूपों वाले सामाजिक संगठन विश्व के वैकल्पिक दृष्टिकोण लागू करने की होड़ में लगे थे।

बीसवीं सदी के प्रारंभ से ही संयुक्त राज्य अमेरिका एवं सोवियत संघ दोनों ही महाशक्तियां बनने की ओर अग्रसर थे। महामंदी के तुरंत बाद 1932 में विनिर्माण में जुटे विभिन्न देशों के अंश का तुलनात्मक अध्ययन दर्शाता है कि अमेरिका लगभग 32 प्रतिशत अंश के साथ निर्विवाद नेता था और रूस 11.5 प्रतिशत अंश के साथ दूसरे स्थान पर। लेकिन अन्य अग्रणी देश ब्रिटेन 10.9 प्रतिशत, जर्मनी 10.6 प्रतिशत, फ्रांस 16.9 भी ज्यादा पीछे नहीं थे। किंतु द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जर्मनी और जापान की सैन्य शक्ति पराजित हो गई और ब्रिटेन तथा फ्रांस बुरी तरह पस्त हो गए। अब दो देश ही ऐसे बचे जो महाशक्ति बनकर उभरे–अमेरिका और रूस। युद्ध के दौरान भारी क्षति होने के बावजूद सोवियत संघ ने अपनी साम्यवादी अर्थव्यवस्था के कारण तेजी से प्रगति की। इन दोनों राष्ट्रों की तेजी से हो रही उन्नति के परिणामस्वरूप दोनों के बीच प्रतिद्वंद्विता बढ़ गई, जिससे शीतयुद्ध प्रारंभ हो गया।

सोवियत संघ ने कॉमिनफॉर्म (कम्युनिस्ट सूचना ब्यूरो), रेडियो मॉस्को की स्थापना की और कुछ अन्य देशों में भी कुछ कम्युनिस्ट दलों का समर्थन किया। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने 'वॉयस ऑफ अमेरिका' नामक रेडियो न्यूज कार्यक्रम प्रारंभ किया और अन्य देशों में कम्युनिस्ट–विरोधी राजनीतिक दलों एवं आंदोलनों का समर्थन किया।

इन दोनों देशों के बीच के विरोध ने इनके द्वारा अपनाई गई विचारधाराओं के बीच विरोध का रूप ले लिया। इनमें से एक विचारधारा थी राजनीतिक एवं आर्थिक उदारवाद, जिसे अमेरिका ने अपनाया और दूसरी थी मार्क्सवाद–लेनिनवाद, जिसे रूस ने अपनाया।

## पाठगत प्रश्न 25.1

1. शीतयुद्ध में किन दो विचारधाराओं में टकराव था?

2. अमेरिका तथा रूस द्वारा कौन–कौन सी समाचार सेवाओं की स्थापना की गई?
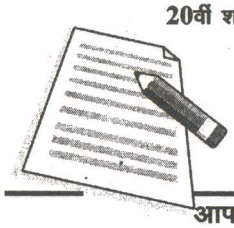
आपकी टिप्पणियाँ

## 25.2 शीतयुद्ध के लिए जिम्मेदार प्रमुख कारक

दूसरे विश्व युद्ध के बाद अमेरिका और रूस दोनों नई महाशक्तियों अपनी–अपनी स्थिति एवं विचारधारा का वर्चस्व स्थापित करना चाहती थीं और यही संघर्ष अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का केंद्र–बिंदु बन गया। विरोधी धड़े बनने लगे, जिससे इन महाशक्तियों के बीच प्रतिद्वंद्विता और बढ़ने लगी। अधिकांश पश्चिमी देश अमेरिका के समर्थन में खड़े हो गए और साम्यवाद का खुलकर विरोध करने लगे। परमाणु हथियार बनाने के बाद अमेरिका को महाशक्ति का दर्जा प्राप्त हो गया। रूस बहुत जल्दी ही अमेरिका की स्थिति को चुनौती देनेवाला प्रतिद्वंद्वी बनकर उभरा और 1949 में उसने भी परमाणु हथियार बनाकर अमेरिका के वर्चस्व को समाप्त कर दिया।

सोवियत संघ एवं पश्चिमी देशों के बीच लंबे समय तक संदेह और अविश्वास का दौर चलता रहा। सोवियत संघ यह कभी नहीं भूल सका कि पश्चिमी देशों (ब्रिटेन, फ्रांस एवं अमेरिका) ने बोल्शेविक क्रांति को विफल करने की कोशिश की थी और (जापान के साथ) गृहयुद्ध में हस्तक्षेप किया था। पश्चिमी देश भी यह नहीं भूल पाए कि सोवियत संघ का घोषित उद्देश्य समूचे विश्व से पूंजीवाद को उखाड़ फेंकना था। दूसरे विश्व युद्ध के दौरान आपसी संदेह और बढ़ गया। 1941 में जब जर्मनी ने सोवियत संघ पर आक्रमण किया तो पश्चिमी गणतंत्रों ने जर्मन के खिलाफ दूसरा मोर्चा खोलने में देर लगाई। ब्रिटेन एवं अमेरिका ने ऐसा करने का वायदा किया था, लेकिन इसमें हुए विलंब ने रूस का यह संदेह पक्का कर दिया कि पश्चिमी देश जर्मनी एवं रूस के बीच लंबी अवधि तक लड़ाई जारी रहने देना चाहते हैं ताकि दोनों का सफाया हो सके।

युद्ध के दौरान, दोनों पक्ष धुरी शक्तियों (जर्मनी, इटली और कुछ अन्य छोटे–छोटे राष्ट्र) से मुक्त हुए देशों में विरोधी तत्वों को प्रोत्साहित करने लगे। जब इटली से फासीवाद तानाशाह मुसोलिनी को सत्ता से हटा दिया गया, तब पश्चिमी शक्तियों ने इटली को समर्थन दिया और इसे पुनर्निर्माण के लिए सहायता (सैकड़ों मिलियन अमेरिकी डॉलर की सहायता राशि) दी। चूंकि रूस से बाहर इटली में सबसे अधिक साम्यवादी दल थे, अतः अमेरिका ने इसे पूंजीवादी खेमे अथवा देशों के धड़े को मजबूत करने के प्रयास के रूप में देखा। ऐसी ही समस्याएँ ग्रीस और पोलैंड में भी थीं। अमेरिका ने ग्रीस में साम्यवादी शक्तियों को हराने में मदद की। 1945 के बाद, दोनों महाशक्तियों ने आपसी संदेह को कम करने के लिए कुछ कदम उठाए। अमेरिका में केवल जर्मनी के पश्चिमी क्षेत्रों और ऑस्ट्रिया पर कब्जा रखने और पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया एवं अन्य पूर्वी यूरोपीय क्षेत्रों से बाहर रहने पर सहमत हो गया, जिन्हें सोवियत लाल सेना में स्वतंत्र कराया था। सोवियत संघ ने कोमिनफॉर्म (कम्युनिस्ट सूचना ब्यूरो) भंग कर दी और पूंजीवादी शक्तियों को ग्रीस पर नियंत्रण करने दिया। सोवियत संघ 1952 में फिनलैंड से हट गया और 1955 तक ऑस्ट्रिया से अपनी पूरी सेना वापस बुला ली। यूरोप एवं अन्य क्षेत्रों के भविष्य को लेकर अमेरिका तथा रूस के बीच मतभेद बने रहे। सोवियत संघ नाजी जर्मनी से स्वतंत्र कराए गए पूर्वी यूरोपियन देशों में मित्र सरकारें स्थापित करवाना चाहता था। यहाँ मित्र सरकारों से सोवियत संघ का अर्थ था साम्यवादी सरकारें, जो अमेरिका और ब्रिटेन को मंजूर नहीं थीं। सोवियत संघ ने टर्की में भी अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयास किया और ईरान से अपनी फौज वापस बुलाने में देरी की, जो पश्चिमी देशों को नागवार गुजरा।

शीतयुद्ध के लिए दोनों ही पक्ष जिम्मेवार थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान दोनों पक्षों के बीच अस्थायी युद्ध विराम युद्ध के पूर्व और पश्चात् उनके बीच के तनावपूर्ण संबंधों में एक पैबंद मात्र था।

### पाठगत प्रश्न 25.2

1. कौन से देश धुरी शक्तियों के अंग थे?

2. कौन से देश मित्र शक्तियों के अंग थे?

3. यूरोप के कौन से क्षेत्र अमेरिका तथा रूस से प्रभावित थे?

## 25.3 शीतयुद्ध के विभिन्न चरण

चूंकि शीतयुद्ध की कभी घोषणा नहीं की गई थी और यह अघोषित युद्ध भी दीर्घकालिक किस्म का था, अतः इसके प्रारंभ होने की सही तारीख बता पाना बहुत कठिन है। प्रारंभिक चरण (1945–47) जिसे अस्थिविकास चरण कहा जाता है, के बाद शीतयुद्ध में तेजी आई, जिसके केंद्र में था युद्ध के बाद यूरोप की व्यवस्था का निर्माण। शीतयुद्ध के प्रारंभ ने विभिन्न शक्तियों द्वारा याल्टा और पोट्सडम में युद्धकालीन सम्मेलनों में स्वीकृत सिद्धांतों का सतत सम्मान करने में विफलता प्रतिबिंबित की।

**प्रथम चरण**

प्रारंभिक चरण में पोलैंड का हश्र एक नाजुक प्रश्न बन गया। पोलैंड में सभी देशों की विशेष रूचि थी। जब सितंबर 1939 में हिटलर की सेना ने पोलैंड की सीमा पार कर ली तो फ्रांस एवं ब्रिटेन ने जर्मनी के खिलाफ युद्ध घोषित कर दिया था। रूस के लिए पोलैंड एक ऐतिहासिक शत्रु था, तो दूसरी ओर पश्चिम की ओर से रूस पर चढ़ाई करने के लिए पोलैंड की भूमि परंपरागत प्रवेश–द्वार थी। जब 1944 में सोवियत संघ ने पोलैंड में प्रवेश किया, तब उन्होंने राष्ट्रीय स्वतंत्रता की समर्थक साम्यवादी राष्ट्रीय मुक्ति समिति समर्थक लुबलिन सरकार को औपचारिक रूप से सत्ता सौंप दी। पोलैंड के भविष्य पर स्टालिन, चर्चिल और रूजवैल्ट के याल्टा सम्मेलन में विस्तृत चर्चा हुई। पोलैंड की सटीक सीमा के संबंध में कोई समझौता नहीं हो सका। लेकिन पोलैंड अंततः सोवियत खेमे में आ गया। पोलैंड का सोवियतीकरण शीतयुद्ध के प्रारंभ सीमाचिह्न बन गया।

टकराव दूसरा मुख्य क्षेत्र था। बलकान ब्रिटेन एवं सोवियत संघ दोनों ने बलकान इलाके में अपने–अपने प्रभाव क्षेत्र बनाने का निश्चय किया। लेकिन ग्रीस को छोड़कर सभी देशों में साम्यवादी सरकार बना दी गई और एक बार जब साम्यवादी शासन लागू हो गया तो सोवियत संघ ने उन्हें खुला समर्थन देना प्रारंभ कर दिया। ग्रीस को छोड़कर, जो ब्रिटेन के नियंत्रण में आ गया, अन्य सभी पूर्वी यूरोपीय देशों पर सोवियत संघ का प्रभुत्व स्थापित

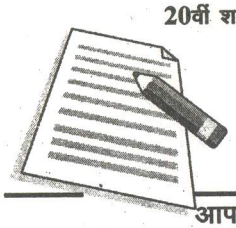

आपकी टिप्पणियाँ

हो गया। चर्चिल ने इस स्थिति का प्रतिपादन इस प्रकार किया कि यूरोप के ऊपर एक 'लोहे का आवरण' छा गया है। इससे पूर्व एवं पश्चिम के रिश्तों में भारी खटास आ गई, जिसमें अमेरिका एवं सोवियत संघ भी शामिल थे।

मित्र राष्ट्रों की सेनाओं के आगे बिना शर्त समर्पण के बाद जर्मनी को चार अधिग्रहण–क्षेत्रों में विभक्त कर दिया गया, जिनमें से प्रत्येक भाग पर सोवियत संघ, अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस का नियंत्रण था। जर्मनी की राजधानी बर्लिन सोवियत अधिग्रहण–क्षेत्र में थी, लेकिन जर्मनी की तर्ज पर अधिग्रहण क्षेत्रों में बर्लिन स्वयं पूरी बंटी थी। सैन्य कब्जा शांति समझौता संपन्न होने तक चलने वाली एक अस्थायी व्यवस्था थी। शांति–समझौता संपन्न हो गया। जर्मनी के साथ शांति–समझौता करने के लिए पोट्सडम सम्मेलन बुलाया गया। महत्त्वपूर्ण विषयों पर मित्र राष्ट्रों की राय स्पष्ट न थी, जैसे क्या जर्मनी को शस्त्र–विहीन कर दिया जाए, सेनाविहीन किया जाए या उसका विभाजन कर दिया जाए। जर्मनी के उद्योगों का किस सीमा तक पुनर्निर्माण किया जाए? सोवियत संघ एक कंगाल और कमजोर जर्मनी चाहता था ताकि जर्मनी द्वारा उसके हितों के लिए खतरा न बन सके। सोवियत संघ ने जर्मनी से क्षतिपूर्ति के रूप में 20 बिलियन अमेरिकी जर्मन की भी मांग की। लेकिन पश्चिमी मित्र राष्ट्र इस प्रस्ताव से सहमत नहीं हुए। बाद में ब्रिटिश, अमेरिकी और फ्रांसीसी अधिकार वाले क्षेत्रों का एकीकरण कर दिया गया और इस तरह जर्मन संघीय गणराज्य (पश्चिमी जर्मनी) अस्तित्व में आया। नए राज्य में चुनाव के बाद एक पश्चिम–समर्थक सरकार सत्ता में आई। उसे अमेरिका से भारी मात्र में वित्तीय सहायता प्राप्त होने लगी। जल्दी ही सोवियत संघ की मदद से दूसरा क्षेत्र भी राज्य बन गया, जो जर्मन प्रजातांत्रिक गणराज्य (पूर्वी जर्मनी) कहलाया।

पश्चिमी देश जर्मनी में मौद्रिक सुधार लाना चाहते थे, लेकिन सोवियत संघ ने अपना जवाब बर्लिन–नाकाबंदी के रूप में दिया। सोवियत संघ ने बर्लिन एवं पश्चिमी क्षेत्रों के बीच सभी प्रकार के यातायात पर प्रतिबंध लगा दिया, चाहे वह सड़क–मार्ग हो रेल मार्ग या फिर जलमार्ग। यह नाकाबंदी ब्रसेल्स संधि के विरोध में भी थी, जिसे ब्रिटेन, फ्रांस और बेल्जियम के बीच आपसी रक्षा संधि के रूप में प्रतिपादित किया गया था। इस संधि में हस्ताक्षरकर्ताओं को ये निर्देश दिए गए थे कि जर्मनी अथवा यूरोप के किसी अन्य हमला किए जाने की स्थिति में वे हर सदस्य राष्ट्र को सैन्य सहायता उपलब्ध कराएंगे। यद्यपि उसके मूल पाठ में सोवियत संघ के नाम का उल्लेख नहीं किया गया था, फिर भी उसका मुख्य लक्ष्य जर्मनी न होकर सोवियत संघ ही था।

जब मार्च 1946 तक सोवियत सेना ईरान से वापस नहीं हुई तो एक संकट पैदा हो गया। युद्ध के दौरान ईरान सोवियत संघ तक पश्चिमी सहायता पहुंचाने का एक आम मार्ग था। ईरान में तेल भी प्रचुर मात्रा में था। सोवियत संघ ने ईरान के तेल पर पैठ बनाने का विशेषाधिकार मांगा और सोवियत संघ के कब्जे वाले क्षेत्रों में ईरान की सेना को प्रवेश की अनुमति नहीं दी। तब अमेरिका ने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में सोवियत संघ की सेनाओं द्वारा ईरान छोड़ने के लिए दबाव बनाया।

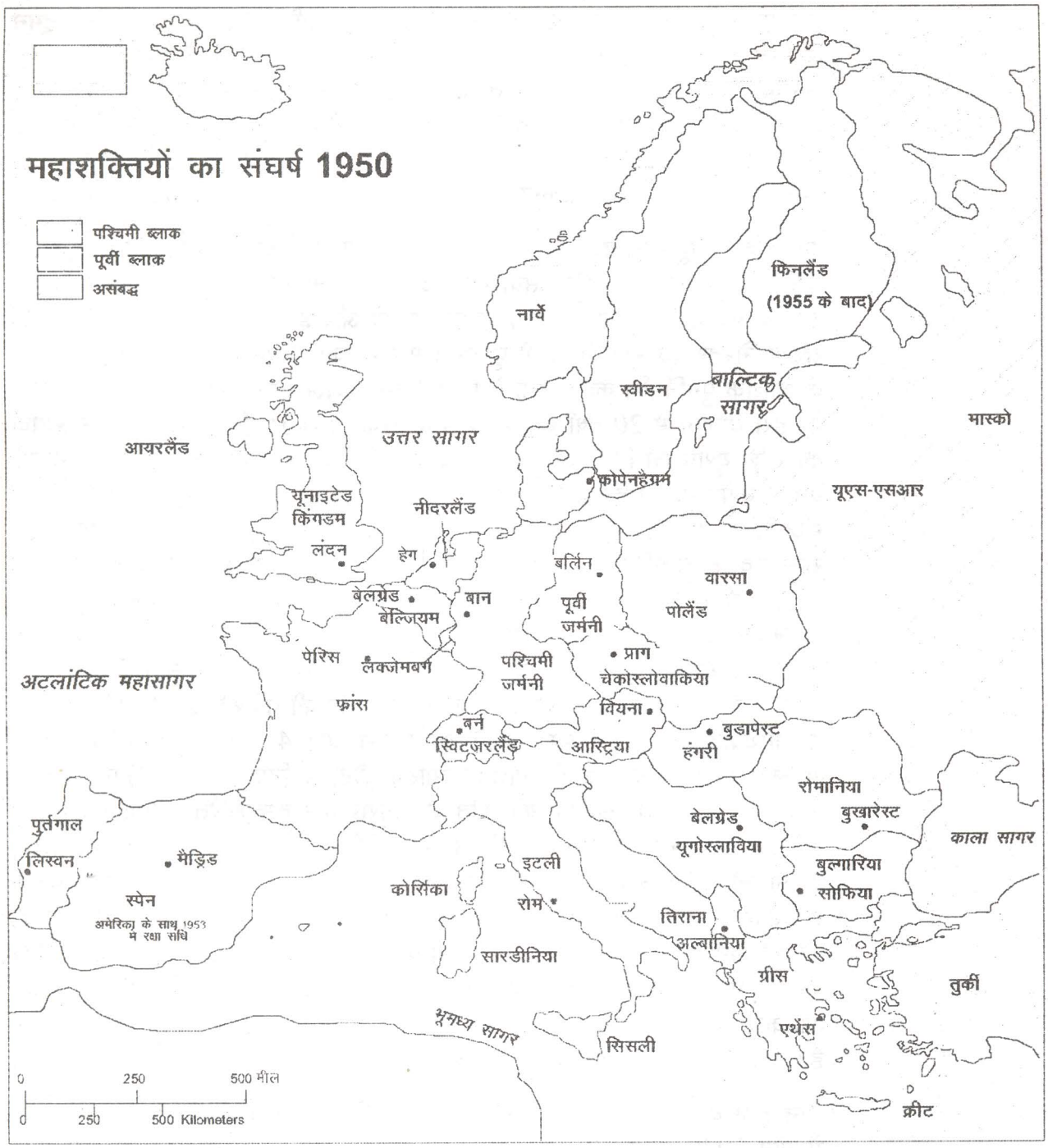


*मानचित्र 25.1 महाशक्तियों के मध्य टकराव – 1950*

## शीतयुद्ध का युग तथा इसकी राजनीति

टर्की में सोवियत संघ ने बोसपोरम जलडमरूमध्य के अंतर्राष्ट्रीयकरण की मांग की। पश्चिमी मित्र–राष्ट्रों ने इसका विरोध किया। ग्रीस में अमेरिका तथा सोवियत संघ ने विरोधी ताकतों को समर्थन दिया। ग्रीस की रूढ़िवादी ताकतों ने अमेरिका से मदद की भी मांग की थी।

इसी पृष्ठभूमि में अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रूमैन ने अपनी एक नीति प्रतिपादित की, जिसे **ट्रूमैन सिद्धांत** के नाम से जाना जाता है। ट्रूमैन का सिद्धांत 'अवरोध' पर आधारित था अर्थात् साम्यवाद को उन क्षेत्रों तक सीमित या अवरुद्ध करना, जिन्हें वह पहले ही जीत चुका है, और उसे और आगे न बढ़ने देना। इस प्रकार, अमेरिका की विदेश नीति अलगाववाद से बदलकर हस्तक्षेपवादी की हो गई। इस हस्तक्षेप का उद्देश्य था विश्व में कहीं पर भी साम्यवाद के विस्तार को रोकना।

कुछ पश्चिमी यूरोपीय देशों में भी साम्यवाद काफी तेजी से बढ़ा। यूरोप के युद्ध से जर्जर देशों को युद्ध के बाद अनेक सुधारों की आशा थी, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। यूरोप की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाएँ तथा उद्योग चरमरा रहे थे और इन देशों में साम्यवादी दलों की संख्या निरंतर बढ़ रही थी। इसी पृष्ठभूमि में अमेरिका के राज्य सचिव मार्शल ने यूरोप के आर्थिक पुनर्निर्माण की योजना पेश की, जिसे **मार्शल योजना** के नाम से जाना जाता है। इस योजना में 20 वर्षों की अवधि में अमेरिका द्वारा 10 बिलियन डॉलर से अधिक की राशि यूरोप को दिए जाने की बात कही गई थी। यह आशा की गई कि इतने बड़े धन से यूरोप युद्ध में हुई क्षति की भरपाई कर सकेगा और इस प्रकार अपनी भौतिक एवं राजनीतिक दशा सुधार पाएगा। यह भी माना गया कि स्थिर यूरोप ही आंतरिक एवं बाह्य साम्यवाद की चुनौतियों का सामना कर सकेगा। महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि सहायता का प्रस्ताव पूर्वी यूरोपियन देशों के सामने भी रखा गया था। ट्रूमैन सिद्धांत एवं मार्शल योजना के जवाब में सोवियत संघ ने अपनी ओर से कॉमिनफॉर्म (साम्यवादी सूचना ब्यूरो) को पुनर्जीवित कर दिया। उसकी स्थापना सोवियत प्रभाव क्षेत्र वाली सभी साम्यवादी सरकारों को मॉस्को की नीतियों के अनुरूप बनाए जाने के लिए की गई थी। इस प्रकार यह यूरोप में साम्यवाद को और मजबूत करने का प्रयास था। 4 अप्रैल, 1949 को उत्तरी अटलांटिक संधि संगठन अर्थात् नॉर्थ अटलांटिक ट्रीटी आर्गनाइजेशन (नाटो) पर हस्ताक्षर किए गए। यह संधि 'अवरोध' की नीति के अनुसरण में हस्ताक्षरित की गई। यह संधि अमेरिका और अन्य यूरोपीय देशों ब्रिटेन, फ्रांस, बेल्जियम, कनाडा, डेनमार्क, आइसलैंड, इटली, नीदरलैंड, लक्जेमबर्ग, नार्वे और पुर्तगाल के बीच हुई। यह संधि सोवियत ब्लॉक के खिलाफ एक सैन्य गठजोड़ था। नाटो संधि का अनुच्छेद–V केंद्रीय उपबंध है, जिसके अनुसार नाटो के किसी भी सदस्य पर हुए आक्रमण को अन्य सभी सदस्य देशों पर आक्रमण समझा जाएगा। फिर भी प्रत्येक सदस्य राष्ट्र को यह तय करने का अधिकार था कि वह अन्य सदस्य राष्ट्रों को किस प्रकार की सहायता प्रदान करना चाहता है। बाद में ग्रीस एवं जर्मनी भी नाटो के सदस्य बन गए।

चीन तथा कोरिया में 1945 के बाद हुई गतिविधियों से और सघन हो गया। शीतयुद्ध में चीन 1949 में माउत्से तुंग के नेतृत्व में साम्यवादियों को सत्ता मिल गई और चीनी लोकतांत्रिक गणतंत्र की स्थापना हुई। संयुक्त राज्य अमेरिका ने चीनी लोकतांत्रिक गणतंत्र को मान्यता देने से इंकार कर दिया। उसे संयुक्त राष्ट्र में प्रवेश भी नहीं दिया गया, केवल ताइवान (राष्ट्रवादी चीन) को ही मान्यता दी गई। अमेरिका ने चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ से बाहर रखने के लिए अपनी वीटो शक्ति का प्रयोग किया और रूस ने संयुक्त राष्ट्र संघ का कारगार ढंग से बहिष्कार कर दिया। फिर भी इसका मतलब यह नहीं निकाला जाना चाहिए कि सोवियत संघ एवं चीन के बीच मित्रता स्थापित हो गई। 1950 के बाद इनके संबंध बिगड़ने लगे।

द्वितीय विश्वयुद्ध में जापान की हार के बाद कोरिया, उत्तरी और दक्षिणी दो भागों में बंट गया। पोट्सडम सम्मेलन के अनुसार उत्तरी कोरिया सोवियत संघ के नियंत्रण में और दक्षिण कोरिया अमेरिका के नियंत्रण में आया। दक्षिणी कोरिया में एक कारगर तानाशाही व्यवस्था स्थापित हुई, जिसे अमेरिका का सीधा समर्थन हासिल था। उत्तरी कोरिया में सोवियत संघ समर्थक सरकार स्थापित हुई। न तो सोवियत संघ ने और न ही अमेरिका ने अपने विरोध वाली सरकार को मान्यता दी। 1950 में उत्तरी कोरिया ने दक्षिण कोरिया पर आक्रमण कर दिया। संयुक्त राष्ट्र संघ, ने जिसकी स्थायी सुरक्षा परिषद में पूंजीवादी राष्ट्रों का दबदबा था, उत्तरी कोरिया को आक्रमणकारी घोषित कर दिया और उत्तरी कोरिया के आक्रमण का जवाब देने के लिए एक संयुक्त कमान का गठन किया। अमेरिका के जनरल को इसका कमांडर बनाया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ की सेनाओं ने उत्तरी कोरिया की सेना को दक्षिण कोरिया से खदेड़ दिया और उत्तरी कोरिया की सीमा में काफी अंदर चीन की सीमा तक घुस गई। तब संयुक्त राष्ट्र संघ की सेनाओं को दक्षिण कोरिया में धकेलने के लिए चीन ने उत्तरी कोरिया का साथ देना शुरू कर दिया। अंततः 1953 में एक युद्ध–विराम पर हस्ताक्षर किए गए, जिससे एक खुले युद्ध का खतरा टल गया। कोरिया का संकट शीतयुद्ध का पहला सैन्य संघर्ष था। सोवियत संघ और अमेरिका तथा चीन एक दूसरे के साथ ज्यादा सीधी लड़ाई में शामिल नहीं हुए। (यद्यपि उत्तरी कोरिया के हवाई जहाजों को वास्तव में सोवियत संघ के पायलट उड़ा रहे थे) लेकिन वे एक–दूसरे पर आश्रित शक्तियों (कोरियाई गणतंत्र और कोरियाई प्रजातांत्रिक गणराज्य, जिनमें से असल में कोई भी प्रजातंत्र नहीं था) से लड़ रहे थे।

### पाठगत प्रश्न 25.3

1. याल्टा सम्मेलन में किस देश के भविष्य को लेकर चर्चा हुई?

   _____

2. 'लोहे का आवरण' नामक प्रसिद्ध शब्दावली किस नेता ने गढ़ी थी?

   _____

3. ट्रूमैन सिद्धांत का क्या उद्देश्य था?

   _____

4. नाटो का पूरा नाम क्या है?

   _____

## 25.4 शीतयुद्ध का दूसरा चरण : ट्रूमैन स्टालिन के बाद का युग

द्वितीय चरण में तनाव काफी कम हो गया था, लेकिन शीतयुद्ध का कोई अंत नहीं था। दोनों देशों के सर्वोच्च नेतृत्व में परिवर्तन हुआ। अमेरिका में सन् 1953 में ट्रूमैन के शासन का अंत हो गया और 1953 में ही सोवियत संघ में स्टालिन की मृत्यु हो गई। स्टालिन के बाद निकिता खुश्चेव ने बागडोर संभाली, जिसने स्टालिन की अनेक नीतियों में बदलाव कर दिया। नीति के मोर्चो पर खुश्चेव ने यूरोप में तनाव की नीति करने का पक्ष लिया

आपकी टिप्पणियाँ

और वहाँ की कुछ समस्याओं के लिए सोवियत संघ की जिम्मेवारी को स्वीकारा। दूसरी ओर उसने पोलैंड एवं हंगरी में सोवियत विरोधी नेताओं का सरेआम दमन किया और पोलैंड और हंगरी के राष्ट्रवाद की बात करने वाले उदारवादियों तथा कैथोलिकों की गतिविधियों को 'फासीवादी' कहकर उनकी निंदा की। सोवियत संघ के नेताओं ने इस दौरान अमेरिका में चल रहे जातीय संघर्ष पर भी तीखी टिप्पणियां की, जिसे वे पूंजीवादी असमानता के अपरिहार्य परिणाम बताते थे। बदले में अमेरिका एवं उसके मित्र राष्ट्रों ने पूर्वी यूरोपीय देशों में सोवियत संघ विरोधी भावनाएं भड़काने का प्रयास किया। सोवियत संघ में नेतृत्व परिवर्तन और ख्रुश्चेव द्वारा स्टालिनवाद की निंदा ने पोलैंड एवं हंगरी में विद्रोह को बढ़ावा दिया। सन् 1956 में पोलैंड के पोजनान शहर में विद्रोह हो गया, लेकिन उसे दबा दिया गया। पोलैंड का साम्यवादी दल दो धड़ों में बंट गया, जिनमें से एक स्टालिन के समर्थक थे तो दूसरे गोमुल्का के साथ थे। गोमुल्का के समर्थकों को सफलता मिली और पोलैंड की साम्यवादी पार्टी ने 'समाजवाद की तरफ एक राष्ट्रीय मार्ग' अपनाने का निर्णय लिया। इसका अर्थ था कि जब तक पोलैंड पूरे पूर्वी यूरोप में सोवियत संघ के नेतृत्व का सम्मान करता रहेगा, तब तक वह अपने मामलों (उदाहरण के लिए आर्थिक और सैनिक मामलों) पर ज्यादा नियंत्रण रख सकेगा। इस प्रकार यूगोस्लाविया के बाद पोलैंड राष्ट्रीय साम्यवाद के रास्ते पर चलने वाला दूसरा देश बन गया, जिसे अधिकतर सोवियत नेताओं ने सीमाओं के भीतर स्वीकृति प्रदान की।

1956 में हंगरी में लोग बगावत में खड़े हो गए। प्रारंभ में सोवियत संघ कुछ सुधार लाने के लिए सहमत हुआ, लेकिन जब हंगरी ने सोवियत सेना की पूर्ण वापसी की मांग करा दी और वारसा संधि (जिसे सोवियत संघ ने नाटो के जवाब में बनाया था) से पीछे हट गया तब इस 'नए कदम' से सोवियत संघ का नेतश्त्व नाराज हो गया। हंगरी द्वारा अंततः स्वयं को निरपेक्ष घोषित करने तथा वारसा संधि से अलग हो जाने के परिणामस्वरूप हंगरी के तत्कालीन शासक इम्रे नागी को मृत्युदंड दिया गया और सोवियत संघ ने हंगरी पर आक्रमण कर दिया। इस प्रकार सोवियत संघ ने यह स्पष्ट कर दिया कि वह पोलैंड में उदारीकृत साम्यवादी शासन अथवा बहुदलीय प्रजातंत्र स्वीकार करने को तैयार नहीं। अमेरिका ने इस संबंध में कुछ नहीं किया, क्योंकि उसकी किसी कार्रवाई से सोवियत संघ और अमेरिका के बीच सीधी लड़ाई शुरू हो जाती।

चीनी क्रांति के बाद जनरल चियांग काई–शेक अपने समर्थकों को ताइवान जलडमरूमध्य के पार ले गया और वहाँ चीनी गणराज्य की स्थापना की, जो 1971 तक संयुक्त राष्ट्र संघ में चीन का प्रतिनिधित्व करता रहा। 1950 से पहले अमेरिका की नीति यह थी कि साम्यवादी चीन (चीनी लोकतांत्रिक गणराज्य) के द्वारा ताइवान पर आक्रमण करने की स्थिति में वह हस्तक्षेप नहीं करेगा। लेकिन 1950 में कोरिया युद्ध के पश्चात् अमेरिका की नीति में बदलाव आया और 1953 के बाद अमेरिकी राष्ट्रपति आइजनहावर ने ताइवान में भारी अमेरिकी सैन्य सशस्त्रीकरण को अनुमति दे दी।

1954 में चीनी लोकतांत्रिक गणराज्य (चीन) ने यह घोषणा कर दी कि ताइवान को स्वतंत्र कराया जाना है और सैन्य कार्रवाई प्रारंभ कर दी। अमेरिका ने इस पर परमाणु हथियार प्रयोग करने की धमकी दे दी और चीन व अमेरिका के बीच युद्ध अवश्यम्भावी लगने लगा। साम्यवादी चीन ने इस मामले में थोड़ा पीछे हटने का रुख दिखाया और नाटो देशों ने यह घोषणा कर दी कि वे अमेरिका द्वारा परमणु हथियारों के प्रयोग का

समर्थन नहीं करेंगे। इस अवधि के दौरान चीनी लोकतांत्रिक राज्य के नेताओं का विश्वास था कि परमाणु हथियारों को ले जाने वाली लंबी दूरी की सुपुर्दगी–प्रणाली (आईसीबीएम) की दिशा में सोवियत संघ द्वारा की गई उन्नति ने यूरोप का शक्ति संतुलन पूर्वी खेमे के पक्ष में कर दिया है। चीनी लोकतांत्रिक राज्य के नेताओं को यह मालूम न था कि रूस के सैन्य पुनरुत्थान का उनके लिए क्या मतलब है। शायद इससे अमेरिका द्वारा चीन को धमकाने की संभावना कम होगी। जब 1957 में चीन ने किमोत्र पर बमवर्षा की, तब रूस ने ही चीन पर रुकने का दबाव डाला था। अंततः चीन एवं रूस के बीच सीधा युद्ध होने से तो बच गया, लेकिन रूस एवं अमेरिका पर चीनी साम्यवादी संदेह और बढ़ गया।

19वीं सदी के मध्य में ब्रिटिश एवं फ्रांस ने मिलकर स्वेज नहर का निर्माण किया था। स्वेज नहर कंपनी के पास 1869 से लेकर 99 वर्ष की अवधि तक इस नहर का संचालन करने और उससे लाभ कमाने का अधिकार था। 1956 में मिस्र द्वारा स्वेज नहर का राष्ट्रीयकरण करने अर्थात् उसे मिस्र का राष्ट्रीय क्षेत्र बनाने के निर्णय ने संकटों की एक शृंखला पैदा कर दी। ब्रिटेन, फ्रांस और इजराइल ने मिस्र के विरुद्ध सुनियोजित सैन्य कार्रवाई शुरू करने का निर्णय लिया। अमेरिका सैन्य शक्ति के प्रयोग के खिलाफ था। लेकिन इजरायल ने ब्रिटेन एवं फ्रांस के साथ मिलकर मिस्र पर आक्रमण कर दिया। इससे अमेरिका को अपने ही मित्र राष्ट्रों की निंदा करने के लिए बाध्य होना पड़ा और शीतयुद्ध प्रारंभ होने के बाद पहली बार अमेरिका और रूस इस विषय पर साथ हो गए। ब्रिटेन और फ्रांस को नहर के लिए संयुक्त राष्ट्र शांति सेना स्वीकार करनी पड़ी। फ्रांस जिसने अभी तक अमेरिकी सुरक्षा खेमे से अलग रहने का प्रयास किया था, का शाही पतन 'स्वेज संकट' के बाद तेजी से बढ़ने लगा। ब्रिटेन भी अब सामान्यतः एक दोयम दर्जे की शक्ति और अमेरिका के एक कनिष्ठ पार्टनर मात्र के रूप में जाना जाने लगा था।

क्यूबा में अनेक वर्षों तक संघर्ष करने के बाद सन् 1959 में फिदेल कास्त्रो सत्ता में आए। कुछ ही वर्षों में वह क्यूबा को सोवियत संघ के निकट ले आया। अमेरिका ने क्यूबा के साथ कूटनीतिक संबंध काट लिए, क्यूबाई चीनी खरीदने से इनकार कर दिया और अमेरिका में निर्वासन में रह रहे कास्त्रो–विरोधी क्यूबाइयों द्वारा 1961 में क्यूबा पर किए गए 'हमले' का समर्थन किया। निर्वासित क्यूबाइयों ने पिग्स की खाड़ी में उतरने का प्रयास किया। यह 'आक्रमण' पूर्णतः असफल साबित हुआ, क्योंकि निर्वासितों को क्यूबा की जनता से कोई सहायता नहीं मिली। सोवियत संघ ने तब क्यूबा में एक परमाणु बमवर्षक और जमीन से जमीन पर मार करने वाली मिसाइल तैनात करने का निर्णय किया। (इनमें से कुछ तो अमेरिका से महज 150 कि.मी. दूरी पर तैनात थीं) सोवियत संघ ने दर्जनों लंबी दूरी तक मार करने वाली मिसाइलें भी क्यूबा भेजीं। टर्की एवं सीधे रूस की सीमा से (1949 से अमेरिका ने नार्वे से लगते अन्य स्थानों पर बमवर्षक और मिसाइल बेस बना लिए थे।) अमेरिका ने बदले में क्यूबा की नाकेबंदी करने की घोषणा कर दी। दोनों महाशक्तियों के बीच युद्ध होने की प्रबल संभावना थी। प्रारंभ में सोवियत संघ ने नाकेबंदी की निंदा की, लेकिन बाद में मिसाइलों को वापस लेने के लिए इस शर्त पर सहमत हो गया कि अमेरिका क्यूबा पर हमला नहीं करेगा और टर्की से अपनी मध्यम दूरी तक मार करनेवाली मिसाइलों को हटा लेगा। अमेरिका ने पहली शर्त मंजूर कर ली और फिर टर्की से अपनी मिसाइलें भी इस बहाने से वापस हटा लीं कि वे अब पुरानी हो चुकी हैं। यह संभवतः पहला अवसर था जब शीतयुद्ध के दौरान दोनों महाशक्तियां परमाणु–युद्ध के कगार पर पहुंच गई थीं।

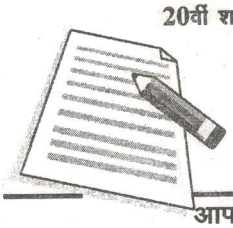

आपकी टिप्पणियाँ

सोवियत संघ ने वास्तविक रूप में पश्चिमी शक्तियों को छह माह के अंदर बर्लिन का पूर्ण निःशस्त्रीकरण करने का अल्टीमेटम दे दिया और कहा कि यदि अन्य देश भी ऐसा करते हैं तो वह भी अपनी सेना को वापस बुला लेगा। यदि यह करार छह माह के भीतर पूरा नहीं किया जाता है तो सोवियत संघ पूर्वी बर्लिन में अपने अधिग्रहण–अधिकार के जर्मन प्रजातांत्रिक गणराज्य (पूर्वी जर्मनी) को देगा। जब सोवियत संघ की सेना ने शहर को चारों ओर से घेर लिया, तब पश्चिमी बर्लिन वासी एवं विदेशी अधिग्रहणकर्ताओं को एक 'हवाई पुल' उपलब्ध कराया गया। सोवियत नेताओं ने शीघ्र ही महसूस किया कि वे पश्चिमी ताकतों को आसानी से बर्लिन शहर से बाहर नहीं निकाल सकेंगे, जिसे अपने कब्जे में करने के लिए दूसरे विश्व युद्ध के दौरान उन्हें 3 लाख सैनिकों की बलि चढ़ानी पड़ी थी। बर्लिन संकट में विजय पाना पश्चिमी ताक़तों के लिए आसान नहीं था।

1950 के दशक में बर्लिन के रास्ते से अनेक पेशेवर लोग जब पूर्वी जर्मनी से पश्चिमी जर्मनी की ओर पलायन करने लगे तो सोवियत संघ की चिंता बढ़ गई। जब उसने बर्लिन की स्थिति को लेकर पश्चिमी ताकतों पर दबाव बनाना शुरू किया तो उन्होंने अधिग्रहण की कुछ शर्तों में परिवर्तन कर दिया ताकि जर्मनी को लेकर किसी बड़े फसाद से बचा जा सके। 1955 के बाद पश्चिमी जर्मनी–जर्मन संघीय गणतंत्र का पुनः सैन्यीकरण किया जा रहा था और उसे अधिकतर पश्चिमी अधिग्रहण क्षेत्रों पर प्रभावी नियंत्रण दे दिया गया, जहां कुछ समय के लिए साम्यवादियों को निर्वासित कर दिया गया था। 1961 में सोवियत संघ ने पूर्वी जर्मनी से पश्चिमी जर्मनी की ओर पलायन करने वालों को रोकने के लिए एक कंक्रीट की दीवार बना दी। यह बर्लिन की दीवार तब तक शीतयुद्ध की राजनीति का प्रतीक बनी रही, जब तक इसे सन् 1989–90 में जर्मनवासियों ने नहीं तोड़ दिया। शीतयुद्ध के दूसरे चरण में दोनों महाशक्तियों के बीच तनाव कम होने लगा था, लेकिन कुछ अवसरों पर जैसे 1962 में क्यूबा को मिसाइल संकट में इन दोनों में तनाव काफी बढ़ जाता था। परमाणु–युद्ध की संभावना और उसके भयानक परिणाम दो ऐसे कारक थे, जिन्होंने दोनों महाशक्तियों को अपनी सोच बदलने के लिए बाध्य किया। दोनों ही देशों में सेना व्यय कम करने का दबाव बना।

दोनों महाशक्तियों के बीच संबंध सुधारने के लिए कुछ कदम उठाए जा चुके थे। 1963 में सोवियत संघ, अमेरिका और ब्रिटेन ने एक परमाणु परीक्षण प्रतिबंध संधि पर हस्ताक्षर किए थे और इस बात पर सहमति व्यक्त की थी कि अब परीक्षण जमीन के नीचे किए जाएँगे ताकि वातावरण को प्रदूषित होने से बचाया जा सके। उसी वर्ष (हाट लाइन) मॉस्को एवं वाशिंगटन के बीच (तथाकथित हॉटलाइन) एक टेलीफोन सेवा प्रारंभ की गई ताकि तत्काल संपर्क स्थापित करना सुनिश्चित किया जा सके।

### पाठगत प्रश्न 25.4

1. किस सोवियत नेता ने यूरोप को लेकर तनाव घटाने और साथ ही सोवियत विरोधी नेताओं और विचारों का दमन भी करने की नीति अपनाई?

2. पीआरसी का पूरा नाम क्या है?

3. बर्लिन की दीवार कब गिरी?

## 25.5 तनाव में कमी

अब सोवियत संघ एवं अमेरिका के संबंधों ने एक नए चरण में प्रवेश किया, जिसे **डेटांट** यानी तनाव में कमी कहा जाता है। 'डेटांट' शब्द का प्रयोग पश्चिम एवं पूर्व के बीच तनाव में शिथिलता लाने के लिए किया गया। डेटांट में चीन को भी ध्यान में रखना जरूरी था। अमेरिका तथा चीन के रिश्तों में कई वर्षों से खटास चली आ रही थी। चीन के साथ तनाव–शैथिल्य एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी। शीतयुद्ध इस अवधि के दौरान समाप्त नहीं हुआ, लेकिन आपसी समझ में काफी सुधार आया। अमेरिका के एक अधिकारी हेनरी किसिंजर ने डेटांट को विरोधी ताकतों के बीच सामंजस्य का तरीका बताया है। लियेनिड ब्रेझनेव जिसने क्यूबा के मिसाइल–संकट के बाद सोवियत नेता के रूप में खुश्चेव से सत्ता हासिल की, के अनुसार डेटांट मतभेद एवं विवादों को ताकत, धमकियों एवं सैन्य शक्ति के प्रदर्शन से नहीं अपितु शांतिपूर्वक ढंग से आमने–सामने बैठकर सुलझाने की इच्छा बताया है। इसका अर्थ एक–दूसरे पर कुछ भरोसा करना तथा दूसरे के जायज हितों के बारे में सोचना भी है।' अमेरिका के राष्ट्रपति निक्सन को डेटांट का जनक कहा जाता है। लेकिन यह चीन–अमेरिका संबंधों के बारे में अधिक उपयुक्त है। यद्यपि निक्सन ने 1940–60 में अपने कैरियर की शुरुआत एक कट्टर साम्यवाद–विरोधी के रूप में की थी, लेकिन जब वे 1968 में राष्ट्रपति बने तो उन्होंने अमेरिका–चीन संबंधों को सुधारने के प्रयास किए।

दोनों ने तनाव कम करने की दिशा में अनेक कदम उठाए। 1968 में यू.के., यू.एस.ए. एवं यू.एस.एस.आर. के बीच एक परमाणु अप्रसार संधि हुई। दोनों महाशक्तियों के बीच झगड़े की मुख्य वजह थे जर्मनी एवं बर्लिन। 1969 में पश्चिमी जर्मनी 'ओस्टथपोलिटिक' की नीति प्रारंभ की, जिसका अर्थ है, 'पूर्व के लिए नीति'। पश्चिमी जर्मनी से पूर्वी यूरोपीय देशों के साथ सामान्य संबंध बनाए। दोनों जर्मनियों ने एक–दूसरे को मान्यता प्रदान की और महाशक्तियों ने इन्हें दो स्वतंत्र एवं विधिसम्मत अलग राज्यों के रूप में मान्यता दे दी। दोनों जर्मनी से 1973 में संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य बन गए। 1972 में अमेरिका एवं सोवियत संघ ने सामरिक परिसीमन संधि (साल्ट I) पर हस्ताक्षर किए। इस संधि में शस्त्रों की संख्या में कोई कटौती नहीं की गई, लेकिन इससे हथियारों की होड़ धीमी हो गई। सोवियत संघ एवं अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति (क्रमशः ब्रेझनेव और निक्सन) तीन बार मिले। अमेरिका ने सोवियत संघ को गेहूं निर्यात करना भी शुरू कर दिया। जुलाई 1975 में 35 देश हेलसिंकी (फिनलैंड) सम्मेलन के लिए इकट्ठे हुए। इसके अंतिम निर्णय पर हस्ताक्षर किए जाने के कुछ समय के लिए शीतयुद्ध की समाप्ति के रूप में देखा गया। इसके अंतिम निर्णय में दस सिद्धांत थे, जिनमें से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण यह था कि सभी देश यूरोप की सीमा को स्वीकार करेंगे, जो द्वितीय विश्व–युद्ध के बाद खींची गई थी। इस प्रकार जर्मनी के विभाजन को

आपकी टिप्पणियाँ

स्वीकृति मिल गई। साम्यवादी देशों ने अपनी जनता को भाषण की स्वतंत्रता एवं देश छोड़ने की स्वतंत्रता सहित 'मानवाधिकार' देने का वचन दिया।

डेटांट की अवधि के दौरान अमेरिका तथा चीन के संबंधों में काफी सुधार आया। राष्ट्रपति निक्सन एवं राज्य सचिव हेनरी किसिंजर ने चीन के साथ तनाव कम करने की दिशा में विशेष प्रयास किए। 1971 में चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में शामिल कर लिया गया और ताइवान को निकाल दिया गया। 1978 में अमरिका ने राष्ट्रवादी चीन की मान्यता रद्द कर दी और 1979 में चीनी लोकतांत्रिक गणराज्य को मान्यता दे दी और दोनों ने एक–दूसरे के यहां राजदूत भेजे।

### पाठगत प्रश्न 25.5

1. डेटांट क्या था? इसका जनक कौन था?

   _____

2. एनपीटी क्या थी?

   _____

3. साल्ट–I क्या था?

   _____

4. ऑस्टोपोलिटिक की नीति क्या थी?

   _____

## 25.6 नया शीत युद्ध

हेलसिंकी सम्मेलन के बाद तनाव शैथिल्य यानी डेटांट की प्रक्रिया का वेग धीमा पड़ गया। अमेरिका एवं सोवियत संघ के संबंध इतने खराब हो गए कि 1980 तक ऐसा लगने लगा कि शीतयुद्ध फ़िर से शुरू हो गया है। इस नए तनाव का उल्लेख नए शीतयुद्ध के रूप में किया गया। नया शीतयुद्ध पहले के शीतयुद्ध से इस अर्थ में अलग था कि यह वैचारिक मतभेदों के बजाय शक्ति–संतुलन पर आधारित था। नए शीतयुद्ध के दौर में एक नया शक्ति खेमा चीनी लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में सामने आया, जो ऐसी शक्ति के रूप में उभरा, जिसे न तो हराया जा सकता था और न ही जिसकी अनदेखी की जा सकती थी। 1979 में अफगानिस्तान में सोवियत सेना का दखल एक महत्त्वपूर्ण बिंदु था। नए शीतयुद्ध के दौरान दोनों ही देश अपने–अपने प्रभाव को, खासकर यूरोप से बाहर, बढ़ाने में जुट गए। यूरोप से बाहर चल रहे संघर्षों को इतनी अधिक महत्ता मिलने लगी, जितनी कभी नहीं मिली थी। सोवियत संघ के लिए डेटांट का अर्थ केवल यूरोप में यथास्थिति मंजूर करना था। भारत–चीन, अफ्रीका, अफगानिस्तान आदि में दोनों देशों ने विरोधी समूहों को समर्थन देना शुरू कर दिया। सोवियत संघ ने अफगानिस्तान के राष्ट्रपति को बदलकर अपनी पसंद का राष्ट्रपति बैठा दिया। लगभग 1,00,000 सोवियत सैनिक अफगानिस्तान में तैनात कर दिए गए। अमेरिका ने अफगानिस्तान में सोवियत सैनिकों की उपस्थिति को ईरान के लिए खतरा माना और अपने युद्धपोत खाड़ी में भेज

दिए। दोनों देश विनाशकारी हथियार बनाने की होड़ में जुटे थे। अमेरिका के राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन ने स्ट्रेटेजिक डिफेंस इनीशियेटिव (एसडीआई) नामक एक नई हथियार–प्रणाली विकसित करने की योजना को मंजूरी दे दी, जो स्टार वार्स के रूप में भी जानी गई।

## 25.7 शीतयुद्ध का अंत

अनेक पूर्वी यूरोपियन देशों में साम्यवाद के समाप्त होने के साथ ही शीतयुद्ध का अंत हो गया। यह पतन बहुत तेजी से हुआ और अंततः साम्यवाद अपने जन्मस्थान सोवियत संघ से भी समाप्त हो गया। यह प्रक्रिया 1988 में पोलैंड में शुरू हुई, जब सॉलिडैरिटी ट्रेड यूनियन ने बड़ी–बड़ी सरकार–विरोधी हड़तालें प्रारंभ कर दीं, जिनसे सरकार को स्वतंत्र चुनाव करवाने पर मजबूर होना पड़ा, जिसमें साम्यवादियों की करारी हार हुई। यही स्थिति हंगरी, बुल्गेरिया, रोमानिया और चेकेस्लोवाकिया आदि में भी हुइ। पूर्वी जर्मनी में साम्यवादी नेता ऐरिक होनेफर ने प्रदर्शनकारियों को बल–प्रयोग करके खदेड़ना चाहा, लेकिन उसके साथियों ने ऐसा करने से इनकार कर दिया। 1989 के अंत तक पूर्वी जर्मनी में साम्यवादी सरकार को हटाना पड़ा और शीतयुद्ध की प्रतीक की दीवार को जनता ने जोश में आकर 1989 में तोड़ दिया। जिस प्रकार से बर्लिन की दीवार के बनने को शीतयुद्ध की शुरुआत के रूप में देखा जाता है, वैसे ही इसके टूटने को शीतयुद्ध की समाप्ति के रूप में देखा गया। 1990 में पूर्वी जर्मनी में पश्चिमी जर्मनी की मुद्रा को चलाया गया और अंततः दोनों जर्मनी पुनः एक हो गए। जर्मनी संघीय गणराज्य के चांसलर को एकीकृत देश की सरकार का मुखिया चुना गया और जिसने बाजार–आधारित अर्थव्यवस्था एवं पश्चिमी देशों जैसे प्रजातंत्र को अपनाया।

सोवियत संघ में भी साम्यवाद खत्म हो गया। मिसाइल गोर्वचेव ने अपनी ग्लासनॉस्त (खुलापन) एवं प्रेसट्रोइका (पुनर्निर्माण) जिसका अर्थ है आर्थिक एवं सामाजिक सुधार जैसी नीतियों से देश को पुनः मजबूत करने के अनेक प्रयास किए। लेकिन ये उपाय सफल नहीं हुए और 1991 तक सोवियत संघ अलग–अलग गणराज्यों में बंट गया और अब रूस का वह पुराना रूतबा नहीं रह गया। जो सोवियत संघ का हुआ करता था। शीतयुद्ध का अंत हो गया। अनेक राजनीतिक टिप्पणीकारों ने दलीलें दीं कि शीतयुद्ध के अंत के साथ ही विश्व की सभी समस्याएं समाप्त हो जाएंगी, लेकिन अब नई समस्याएं और संघर्ष के नए क्षेत्र उभर आए हैं।

### पाठगत प्रश्न 25.6

1. एसडीआई क्या थी?

   _____

2. ग्लॉसनॉस्त एवं पेरेस्ट्रोइका क्या थे?

   _____

3. शीतयुद्ध की समाप्ति का प्रतीक कौन–सा था?

   _____

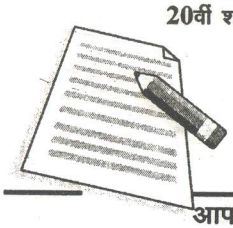

आपकी टिप्पणियाँ

## आपने क्या सीखा

द्वितीय विश्व युद्ध के फौरन बाद शीतयुद्ध प्रारंभ हो गया था, यद्यपि इसके संकेत युद्ध के दौरान ही मिलने लगे थे। शीतयुद्ध के प्रारंभिक दौर में, अमेरिका तथा रूस दोनों ने अपने प्रभाव और विचारधारा को बढ़ाने के प्रयास किए। इन दोनों के बीच संदेह एवं अविश्वास था। दूसरे चरण में दोनों देशों के बीच तनाव में कुछ कमी आई। यद्यपि संदेह एवं अविश्वास अभी भी बना हुआ था। डेटांट के तुरंत बाद नया शीतयुद्ध प्रारंभ हो गया। इस अवधि में एक नया शक्ति खेमा चीनी लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में उभर कर आया। पूर्वी यूरोपीय देशों तथा रूस में साम्यवाद की समाप्ति के बाद ही शीतयुद्ध समाप्त हुआ।

## पाठांत प्रश्न

1. शीतयुद्ध से आप क्या समझते हैं? यह खुले युद्ध से किस प्रकार अलग था?
2. शीतयुद्ध के लिए जिम्मेदार कुछ कारकों का उल्लेख कीजिए।
3. शीतयुद्ध के पहले चरण के दौरान पोलैंड के मुद्दे पर चर्चा करें।
4. बर्लिन नाकाबंदी का क्या अर्थ है?
5. शीतयुद्ध के दूसरे चरण के दौरान स्वेज नहर की संकट पर चर्चा करें।
6. शीतयुद्ध में डेटांट के चरण का वर्णन करें।
7. नया शीतयुद्ध क्या है? यह शीतयुद्ध से किस रूप में अलग था?

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

**25.1**

1. राजनीतिक एवं आर्थिक उदारीकरण और मार्क्सवाद–लेनिनवाद।
2. वॉइस ऑफ अमेरिका और रेडियो मॉस्को

**25.2**

1. 25.2 का तीसरा पैरा देखें।
2. 25.2 का तीसरा पैरा देखें।
3. 25.2 का अंतिम से पहला पैरा देखें। पूर्वी यूरोप सोवियत संघ द्वारा, पश्चिमी यूरोप अमेरिका द्वारा।

**25.3**

1. पोलैंड

2. चर्चिल
3. अवरोध नियंत्रण में करना
4. नार्थ एटलांटिक ट्रीटी आर्गेनाइजेशन

**25.4**

1. निकिता ख्रुश्चेव
2. लोकतांत्रिक पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना यानी चीनी लोकतांत्रिक गणराज्य।
3. 1989–90

**25.5**

1. 'डेटांट' पूर्व–पश्चिम संघर्ष में कमी के लिए प्रयुक्त शब्द है। अमेरिकी राष्ट्रपति निक्सन इसके जनक थे।
2. न्यूक्लियर नॉन–प्रोलिफरेशन ट्रीटी यानी परमाणु अप्रसार संधि।
3. स्ट्रेटेजिक आर्म्स लिमिटेशन ट्रीटी–I यानी रणनीतिक शस्त्र परिसीमित संधि– I
4. पश्चिमी जर्मनी की नीति, जिसका मतलब था 'पूर्व के लिए नीति'।

**25.6**

1. स्ट्रेटेजिक डिफेंस इनिशियेटिव यानी रणनीतिक रक्षा पहल
2. खुलापन एवं पुनर्निर्माण
3. बर्लिन की दीवार का गिरना।

**पाठांत प्रश्नों के उत्तर**

1. देखें 25.1
2. देखें 25.2
3. देखें 25.3 अनुच्छेद 2
4. देखें 25.3 अनुच्छेद 5
5. देखे 25.4 अनुच्छेद 6
6. देखें 25.5
7. देखें 25.6

**शब्दावली**

**कॉमिनफॉर्म** – साम्यवादी सूचना ब्यूरो। सोवियत संघ ने 1947 में इसकी स्थापना की। अंतर्राष्ट्रीय साम्यवादी एकता को बढ़ावा देना इसका उद्देश्य था।

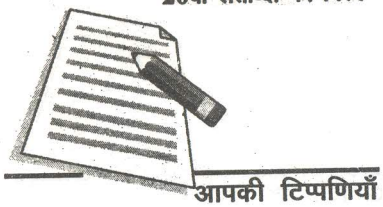

आपकी टिप्पणियाँ

**अस्थिविकास चरण** — 1945–47 के बीच शीतयुद्ध का प्रारंभिक चरण। इस चरण के बाद शीतयुद्ध सघन हो गया।

**लौह आवरण** – इस शब्द का निर्माण ब्रिटिश प्रधानमंत्री विस्टन चर्चिल द्वारा किया गया था। चर्चिल ने इसका प्रयोग बाल्कन राज्यों की स्थिति का विवरण देने के लिए किया था, जहाँ पर ग्रीस को छोड़कर सभी देश रूस के आधिपत्य मे आ गए थे।

**बर्लिन नाकाबंदी** – सोवियत संघ द्वारा बर्लिन पर लगाया गया प्रतिबंध, जिसके द्वारा उसने पश्चिमी क्षेत्रों से उसका संपर्क तोड़ दिया। पश्चिमी मित्र जर्मनी में मौद्रिक सुधार लाना चाहते थे।

**ब्रसेल्स संधि** – इस संधि के माध्यम से ब्रिटेन, फ्रांस और बेल्जियम ने जर्मनी के विरुद्ध एक साझा रक्षा समझौता किया था। लेकिन यह संधि मूलतः सोवियत संघ के विरुद्ध थी न कि जर्मनी के।

**ट्रूमैन सिद्धांत** – ट्रूमैन सिद्धांत एक अवरोध की नीति थी, जिसका उद्देश्य साम्यवाद को उन क्षेत्रों में सीमित या अवरुद्ध करना था, जहाँ उसने जड़ें जमा ली थीं।

**मार्शल योजना** – इस योजना में युद्ध की क्षति से उबरने के लिए अमेरिका द्वारा 20 वर्ष की अवधि में यूरोपीय देशों को 10 बिलियन डॉलर से अधिक धन देने का प्रावधान था।

**नाटो** – नार्थ अटलांटिक ट्रीटी आर्गेनाइजेशन, जिसका गठन अमेरिका तथा कुछ यूरोपीय देशों ने मिलकर किया था। यह सोवियत खेमे के खिलाफ सैन्य गठबंधन था।

**डेटांट** – पूर्व एवं पश्चिम के बीच तनाव कम होने के लिए प्रयुक्त शब्द। डेटांट की अवधि के दौरान दोनों महाशक्तियों के बीच संबंधों में पर्याप्त सुधार आया। इस दौरान चीन के साथ भी अमेरिका के संबंधों में सुधार आया।

**साल्ट–I** – स्ट्रेटेजिक आर्म्स लिमिटेशन ट्रीटी यानी रणनीतिक शस्त्र परिसीमित संधि, जो अमेरिका एवं सोवियत संघ के बीच पारित हुई। इससे शस्त्रों की दौड़ धीमी हो गई।

**एसडीआई** – स्ट्रेटेजिक डिफेंस इनिशियेटिव यानी रणनीतिक रक्षा पहल, जिसे स्टार बार के नाम से भी जाना जाता है। इससे विनाश के और नए हथियारों का विकास होने लगा।

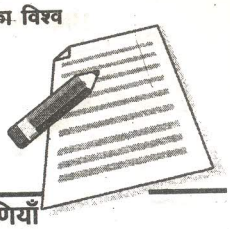

आपकी टिप्पणियाँ

**ग्लासनॉस्त** – इस नीति का मतलब था खुलापन। इसे सोवियत संघ के राष्ट्रपति मिसाइल गोर्वाचेव ने प्रारंभ किया था। इसका उद्देश्य था देश को रूपांतरित करना और पुनः मजबूत बनाना।

**पेरेस्ट्रोइका** – सोवियत संघ के राष्ट्रपति मिखाइल गोर्वाचेव द्वारा शुरू की गई नीति जिसका उद्देश्य था आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्रों का पुनर्गठन करना।

**ऑस्टपोलिटिक** – इस नीति की शुरुआत पश्चिमी जर्मनी की सरकार ने की, जिसका अर्थ था 'पूर्व के लिए नीति'। पश्चिमी जर्मनी ने पूर्वी यूरोपीय देशों के साथ सामान्य संबंध बहाल कर लिए और दोनों जर्मनियों ने एक दायरे को मान्यता दे दी और साथ ही महाशक्तियों ने भी इन्हें स्वतंत्र और वैध राष्ट्रों का दर्जा प्रदान कर दिया।

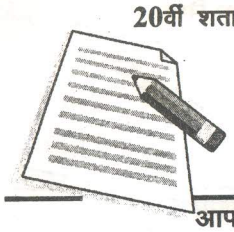



# 26

# राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन

बीसवीं सदी के दौरान औपनिवेशिक शासन के अधीन रहनेवाले लाखों लोग प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रुप से राष्ट्रीय स्वतंत्रता–संग्राम में संलग्न थे। 1945 से 1980 के बीच एशिया, अफ्रीका, ओशियाना (पश्चिमी प्रशांत महासागर में बसे द्वीप) और कैरिबियाई देशों के प्रायः समस्त भाग, जो यूरोपीय, जापानी और अमेरिकी शासन के अधीन थे, स्वतंत्र हो चुके थे और स्वयं को स्वतंत्र राष्ट्रों के रुप में संगठित कर चुके थे।

दूसरे विश्वयुद्ध (1939–1945) के दौरान, परिजित शक्तियों जर्मनी एवं जापान के साम्राज्यवादी और विस्तारवादी लक्ष्य विफल कर दिए गए। यहां तक कि ब्रिटेन, फ्रांस और नीदरलैंड जैसी विजयी औपनिवेशिक ताकतें भी अपनी साम्राज्यवादी प्रतिबद्धताएं पूरी करने में असमर्थ रहीं और उनके नेताओं पर 'विउपनिवेशीकरण' अर्थात् औपनिवेशिक शासन समाप्त करने का दबाव बढ़ने लगा। यह दबाव न केवल उनके अधीनस्थ उपनिवेशों की जनता एवं राष्ट्रीय नागरिकों की ओर से अपितु दो नई महाशक्तियों अमेरिका एवं सोवियत संघ की ओर से भी पड़ रहा था। 1945 के बाद अधिकांश पश्चिम अफ्रीका (अमेरिका का एशियाई उपनिवेश) और कुछ अन्य देशों ने बिना अधिक खून–खराबे के स्वतंत्रता प्राप्त कर ली। केवल अल्जीरिया, हिंदचीन, मलाया, अंगोला, मोजांबिक और अन्य देशों को राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए वर्षों के सशस्त्र संघर्ष के बाद आजादी प्राप्त हो सकी।

राजनीतिक स्वतंत्रता तुरंत वैसे लाभ लेकर नहीं आई, जिनका उपनिवेशों की जनता ने सपना देखा था। नए राष्ट्रों को आर्थिक विकास तथा आधुनिकीकरण संबंधी समस्याओं का सामना करना पड़ा, जिनका हल ढूंढना उनके लिए 'नव–उपनिवेशीकरण' से बचने की दृष्टि से जरुरी था। अधिकतर स्वतंत्र राष्ट्रों में जीवन का स्तर वैसा नहीं था जैसा कि पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमेरिका के 'विकसित' देशों में था और आज अनेक व्यक्तियों का भी यह मत है कि औपचारिक रुप से स्वतंत्र हुए देशों की दुनिया में आज भी औपनिवेशिक शासन के रुप या शोषण के पुराने प्रतिमान विद्यमान हैं।

## उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- कुछ राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलनों के बारे में जान पाएंगे;

- वि–उपनिवेशीकरण की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाली वैश्विक राजनीतिक ताकतों का विश्लेषण कर पाएंगे;
- उत्तर–उपनिवेशवादी दुनिया में पर–निर्भरता और असमानता के संबंध की चर्चा कर पाएंगे और
- राष्ट्रीय विकास संबंधी कुछ समस्याओं और उनके कुछ प्रस्तावित समाधानों के बारे में जान पाएँगे।

## 26.1 राष्ट्रीय स्वाधीनता और राष्ट्रीय विकास के मॉडल-वि-उपनिवेशीकरण का प्रारंभ

### मॉडल

बीसवीं सदी के राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलनों के नेताओं ने नागरिकता के इस आधुनिक विचार को प्रस्तुत करनेवाले राष्ट्रीय स्वाधीनता एवं विकास के पिछले उदाहरणों से प्रेरणा प्राप्त की कि एक राष्ट्र के सभी सदस्यों के समान अधिकार एवं दायित्व होने चाहिए।

अमेरिका के स्वाधीनता–संग्राम के बाद नए संयुक्त राज्य अमेरिका में स्थायी प्रजातांत्रिक शासन की नींव पड़ी और धीरे–धीरे अमेरिका राष्ट्र के सभी सदस्यों को पूर्ण नागरिकता के अधिकार दे दिए गए। साथ ही अमेरिका की सेना का आकार छोटा रहा और उसने अक्सर नागरिक संस्थाओं के काम–काज में दखल नहीं दिया। एशिया तथा अफ्रीका के उपनिवेशों की जनता के लिए यह बहुत आकर्षक था जिन्हें नियंत्रण में रखने के लिए सेना का नियमित रुप से इस्तेमाल किया जाता था।

सन् 1789 की फ्रांस की क्रांति किसी विदेशी ताकत के खिलाफ शुरु नहीं हुई थी, अपितु क्रांतिकारियों ने यूरोप के अन्य भागों में स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे के सार्वभौमिक सिद्धांत फैलाने के लिए अभियान किया था। फ्रांस की क्रांति ने यूरोप के लोगों और फ्रांस के उपनिवेशों की जनता को इन सिद्धांतों के नाम पर फ्रांसीसी शासन के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए प्रेरित किया। इन राष्ट्रवादी क्रांतिकारियों में से सभी प्रजातंत्र अथवा समानता में गहराई से विश्वास नही करते थे, लेकिन उनमें से ज्यादातर यह मानते थे कि विदेशी शासन के खिलाफ लड़ने के लिए 'जनता' को तैयार करना होगा।

कुछ अन्य कारणों से भी औपनिवेशिक शासन के अधीन जी रहे लोगों ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता एवं विकास के *'अमेरिकी'* मॉडल को सराहा। वर्ष 1865 से 1950 के बीच अमेरिकियों ने पूंजीवादी कृषि, भारी उद्योग और सामूहिक उपभोक्ता–व्यय पर आधारित विश्व की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था विकसित की। संसार भर में अनेक लोगों का यह मानना था कि संयुक्त राज्य अमेरिका वैश्विक पैमाने पर स्व–शासन के प्रति ईमानदारी से समर्पित है और वह संभवतः उपनिवेशों की जनता को उनके राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्रामों में प्रत्यक्ष रुप से सहायता प्रदान कर उपनिवेशवाद के खिलाफ एक ताकत की तरह कार्य करेगा।

1917–1921 की रुसी (बोल्शेविक) क्रांति का विश्व पर भारी वैश्विक प्रभाव पड़ा। बोल्शेविकों का तर्क था कि समूचे विश्व में विभिन्न 'राष्ट्रीयताओं' को स्वतंत्र रहने एवं अपना भविष्य तय करने का अधिकार है। रुसी क्रांति ने भी पूंजीवादी पश्चिमी देशों से भिन्न तीव्र सामाजिक तथा आर्थिक 'विकास' का एक वैकल्पिक प्रतिमान प्रस्तुत किया।

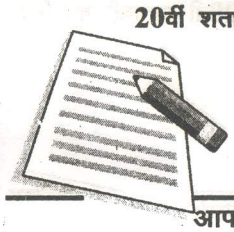

आपकी टिप्पणियाँ

1941 में अनेक रुसी नागरिकों का भौतिक जीवन–स्तर अपने दादा–दादियों की तुलना में उच्चतर था।

रुसी नेताओं ने राजनीतिक एवं आर्थिक रुप से शासित अनेक देशों एवं उपनिवेशों के नागरिकों को 'नैतिक' एवं भौतिक सहायता प्रदान की। मार्क्सवादी सिद्धांत ने सिखाया कि संसार भर के छोटे किसानों और प्रोलेतेरियनों के हित समान हैं और बुर्जुआओं तथा साम्राज्यवादियों को हटाने के लिए उन्हें सहयोग की आवश्यकता है। राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम का आयोजन सीखने के लिए कुछ उपनिवेशों के राष्ट्रवादियों ने सोवियत संघ का दौरा किया था, वहां जाकर अध्ययन किया। इनमें वियतनामी राष्ट्रवादी हो ची मिन्ह, चीनी राष्ट्रवादी चियांग काईशेक (1887–1975) और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेता जवाहर लाल नेहरु शामिल थे, जो प्रजातांत्रिक समाजवाद में यकीन रखते थे और जिनका विचार था कि सोवियत प्रभुत्व वाली अर्थव्यवस्था का अनुकरण कर सकता है।

**वि-उपनिवेशीकरण की शुरुआत**

ग्रेट ब्रिटेन एवं फ्रांस स्व–शासन और 'स्व–राज्य' के लिए बढ़ते प्रदर्शनों में से कुछ पर ध्यान देने के लिए बाध्य हुए। 1867 में ही ब्रिटेन ने ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और दक्षिण अफ्रीका को तथा कनाडा के कुछ भागों को, जहां के मूल निवासियों को भगाकर या मारकर 1600 ई.से बड़ी संख्या में यूरोप के लोग बस गए थे, कारगार स्व–राज्य प्रदान करना शुरु कर दिया। इन स्थानों के गोरे उपनिवेशियों को निर्वाचित विधानसभाओं और विधायिका एवं संसदों के माध्यम से 'घरेलू' मामलों में निर्णय लेने की स्वतंत्रता दे दी गई, किंतु अन्य उपनिवेशों तथा राष्ट्रों के साथ उनके सबंधों पर लंदन की राजशाही का ही नियंत्रण रहा। 1910 के बाद इन उपनिवेशी राष्ट्रों को स्वतंत्र उपनिवेश अथवा सहयोगी राष्ट्रों का ब्रिटिश राष्ट्रमंडल कहा जाने लगा। ब्रिटेन ने दक्षिण अफ्रीकी संघ को भी राष्ट्रमंडल का दर्जा प्रदान कर दिया (जहां काले अफ्रीकियों ने संख्या में यूरोपियनों को पीछे छोड़ दिया था, लेकिन उन्हें मतदान की अनुमति नहीं थी)।

ब्रिटिश और अन्य पश्चिमी देशों की भांति, अनेक फ्रांसीसियों का मानना था कि कुछ 'जातियाँ' एवं समाज, खासकर उनकी जाति और समाज उन्नत हैं, जबकि अन्य जातियाँ और समाज 'आदिम' हैं। उनका कहना था कि उन्नत समाजों का यह नैतिक दायित्व है कि वे ज्यादा पिछड़े समाजों का मार्गदर्शन करें या उन्हें शिक्षित करें। 1914 के बाद फ्रांसीसी उपनिवेशों में गैर–फ्रांसीसी लोगों को अपने समाज के शासन में मतदान द्वारा सहभागिता करने अथवा विधानसभाओं में सेवा करने की इजाजत दे दी गई।

ब्रिटिश, फ्रांसीसी और डच औपनिवेशक शासन इस बात को मानने लगे थे कि उपनिवेशों के लोग भावनात्मक कारणों (जैसे यूरोपीय संस्कृति के प्रति सराहना) से अथवा इस कारण से कि वे अपने मातृ–देश से जुड़े रहने से आर्थिक लाभ प्राप्त कर सकेंगे, इस आंशिक स्वतंत्रता को स्वीकार कर लेंगे। अनेक उपनिवेशों ने पूर्ण राष्ट्रीय स्वतंत्रता की ओर पहले कदम के रुप में यूरोपीय मार्गदर्शन के अंतर्गत ढीले–ढाले राज्य–संघ की योजना को स्वीकार कर लिया। किंतु कुछ उपनिवेशों में जैसे कि भारत में, राष्ट्रवादी पूर्ण स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करते रहे।

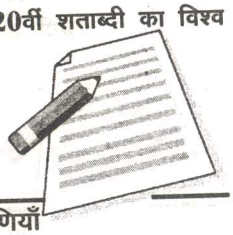



हमें यह भी जानना चाहिए कि 1945 के पहले औपनिवेशिक शासन में किए गए संशोधनों ने वास्तव में यूरोपीय उपनिवेशवादियों की स्थिति को कमजोर नहीं बनाया और उपनिवेशों के थोड़े से 'मूल निवासियों' को ही लाभ पहुंचाया।

## 26.2 उपनिवेशवाद-विरोधी संघर्ष पर द्वितीय विश्व-युद्ध का प्रभाव

द्वितीय विश्व–युद्ध ने औपनिवेशिक दुनिया के उन लोगों को भी प्रेरित कर दिया जो पहले राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलनों से अछूते रह गए थे। कुछ मामलों में उपनिवेश के लोगों द्वारा नए आक्रांताओं (मुख्यतः जापान) के विरुद्ध किए जा रहे सैन्य संघर्षों को उपनिवेशों पर पुनः कब्जा करने की कोशिश करने वाले यूरोपियनों के विरुद्ध संघर्षों में बदल दिया। अफ्रीकियों एवं एशियाइयों को विश्व के सुदूर कोनों में जर्मनी, इटैलियनों और जापानियों के विरुद्ध लड़ने के लिए औपनिवेशिक सेनाओं में शामिल कर लिया गया। जहाँ उन्होंने यह सीखा कि यूरोपियन पृथ्वी के अजेय अधिपति नहीं हैं। युद्ध के दौरान लगभग पचास लाख भारतीय सैनिकों ने ब्रिटिश नेतृत्व,वाली सेनाओं में सेवा की। एशियाई और अफ्रीकी सैनिकों का दूसरे उपनिवेशों के लोगों और यूरोपीय तथा अमेरिकी सैनिकों व नागरिकों के साथ संबंध था। जर्मन एवं जापानी आतंक 'तानाशाही' से लड़ने के लिए प्रशिक्षित इन सैनिकों ने अपने स्वयं के औपनिवेशिक शासकों के लिए खतरा उत्पन्न कर दिया। 1940 के दशक में एशिया, अफ्रीका और कैरेबियाई देशों में पुलिस और सैनिकों (अपने 'देशवासियों' सहित) के हमलों के बावजूद उपनिवेशी जनता सामूहिक प्रदर्शनों में शामिल हुई। 1945 तक युद्ध से पहले की तुलना में और अधिक जनता ने पूर्ण नागरिकता के अधिकार एवं राष्ट्रीय स्वाधीनता की माँग करनी शुरु कर दी और वे अपनी मांगों का विरोध करने वालों से लड़ने के लिए ज्यादा आत्मविश्वास से भरे थे।

1939 से पहले अफ्रीकी बुद्धिजीवी, पेशेवर और सिविल सेवकों ने राष्ट्रवादी आंदोलनों का आधार तैयार कर दिया था। फिर भी 1945 के बाद इन लोगों को अपने ही देश से अधिक दबाब एवं श्रमिक वर्ग की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने तथा अपने राष्ट्रीय स्वतंत्रता अभियानों में नेताओं को किसानों और श्रमिक स्त्री–पुरुषों की ओर से प्रजातांत्रिक सुधारों और आर्थिक समानता के लिए ज्यादा सशक्त मांगें शामिल करने का दबाव झेलना पड़ा।

### राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम

1930 के दौरान फ्रांसीसी हिंदचीन में हो ची मिन्ह ने साम्यवादी विचार फैलाने की कोशिश की। 1940–41 में जापानियों ने फ्रांस को हिंदचीन से बाहर खदेड़ दिया और उस पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। उन्हें भगाने के लिए हो ने एक राष्ट्रीय जन मोर्चा (वियत मिन्ह) बनाया और जब 1945 में फ्रांसीसी, ब्रिटेन और अमेरिका की सहमति से पुनः हिंदचीन के शासक बन गए तब हो और वियत मिन्ह ने फ्रांस के खिलाफ लड़ना जारी रखा तथा 1954 तक अधिकांश हिंदचीन पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया। इसी वर्ष वियतनाम नाममात्र के स्वतंत्र देशों में विभक्त हो गया, जिनमें से उत्तरी क्षेत्र हो और उसके सहयोगियों के नियंत्रण में आ गया और दक्षिणी भाग पर अमेरिका की राजनीति, सैन्य एवं आर्थिक उपस्थिति बढ़ने लगी। इस टकराव में लगभग 50,000 अमेरिकी सैनिक मारे गए और लाखों वियतनामियों को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा, लेकिन वियतनामियों ने 1975 में विश्व की सबसे बड़ी साम्राज्यवादी शक्ति को पीछे हटने के लिए मजबूर कर दिया।

भारत में पूरे देश में कांग्रेस के नेतृत्व में ब्रिटिश शासन के खिलाफ सामूहिक आंदोलन हुए। इसके अलावा साम्यवादियों के नेतृत्व में मजदूरों और किसानों द्वारा और साथ ही युवाओं, लेखकों, महिलाओं एवं निम्न जातियों के संगठनों द्वारा स्वतंत्र आंदोलन भी चलाए जा रहे थे। 1947 में ब्रिटिशों को भारत छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ा। स्वतंत्रता विभाजन बंटवारे और दो स्वतंत्र राष्ट्रों भारत एवं पाकिस्तान के निर्माण के साथ प्राप्त हुई।

### पाठगत प्रश्न 26.1

1. 1867 से 1914 के बीच स्वतंत्र अथवा अर्द्ध–स्वतंत्र हुए कुछ देशों के नाम बताइए।

2. द्वितीय विश्व युद्ध ने उपनिवेशीकृत देशों के लोगों को किस प्रकार प्रेरित किया?

3. 1945 के बाद सशस्त्र संघर्ष से राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्त करने वाले कुछ देशों के नाम बताइए।

## 26.3 औपनिवेशिक राष्ट्रवाद, स्वाधीनता संग्राम और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग

सन् 1945 के बाद एशिया और अफ्रीका के कुछ औपनिवेशिक राष्ट्रवादी नेताओं ने सोवियत अथवा अमेरिकी सहायता मांगी अथवा पाई और उन्हें **संयुक्त राष्ट्र संघ** (1945 से जिसका मुख्यालय अमेरिका में है) जैसे नए अंतर्राष्ट्रीय संगठनों से निष्कपट वार्ता की उम्मीद हुई। उन्होंने राष्ट्रीय स्वतंत्रता और विकास के समान हितों वाले स्वतंत्र राष्ट्रों का एक क्षेत्रीय संघ भी बनाया। इन संघों में से एक अफ्रीकी एकता संगठन (ओ.ए.यू.) था, जिसकी स्थापना 1963 में नए राष्ट्रों के बीच होने वाले विवादों में मध्यस्थता करने तथा औपनिवेशिक ताकतों को अपने शेष अधीनस्थ राष्ट्रों से चले जाने के लिए बाध्य करने हेतु हुई थी। एक और महत्त्वपूर्ण घटनाक्रम था **गुटनिरपेक्ष आंदोलन (एन.ए.एम.)** का अस्तित्व में आना, जिसमें अन्य देशों के अलावा चीन, भारत, पाकिस्तान, इंडोनेशिया, ईरान और मिश्र शामिल थे। 1955 में साम्राज्यवाद, राष्ट्रीय आक्रमण, जातिवाद और अधिक हथियारों की निंदा करने के लिए बांडुंग, इंडोनेशिया में 29 राष्ट्रों का एक सम्मेलन आयोजित किया गया।

गुटनिरपेक्ष आंदोलन ने तीसरी दुनिया के देशों द्वारा आपस में तथा दोनों महाशक्तियों के साथ शांतिपूर्ण सहयोग की आवश्यकता बताई। गुटनिरपेक्ष आंदोलन के सदस्य देशों में से अधिकतर के नेता एक मध्यम मार्ग खोजने और अपनाना चाहते थे, जो न तो विशुद्ध साम्यवादी हो और न ही विशुद्ध पूंजीवादी। 1950 के दशक से 1970 के दशक के बीच समाजवाद एवं प्रजातंत्र के एशियाई और अफ्रीकी 'मार्गों' पर खूब चर्चा हुई। अफ्रीका के अनेक नए राष्ट्र स्वतंत्र होते ही तानाशाही के अधीन हो गए, जैसे जायरी (पूर्व बेल्जियम उपनिवेश) जो मोबुतो सेस सेको (राष्ट्रपति, 1965–1977) के अधीन और युगांडा (पूर्व ब्रिटिश उपनिवेश) इदी अमीन दादा (1924–2003, 1979 में पद्च्युत) के अधीन था।

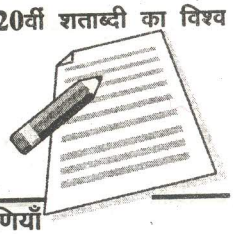



सहारा अफ्रीका (जैसे मिस्र एवं लीबिया) के कुछ नेताओं ने आर्थिक विकास के मामलों में और इजराइल राष्ट्र (पूर्व ब्रिटिश फिलस्तीन) को फिलस्तीनी भूमि का अवैध, अर्द्ध–औपनिवेशिक कब्जा समाप्त करवाने में मध्यपूर्वी राष्ट्रों के साथ सहयोग किया। यह अखिल अरब आंदोलन का एक हिस्सा था। 1970 के दशक से 1980 के दशक के बीच 'काले अफ्रीका' के नेता रोडेशिया और दक्षिण अफ्रीका गोरे–अल्पसंख्यक शासनों पर जाति भेद और काले लोगों के साथ पक्षपात खत्म करने के लिए दबाव डालते रहे। उन्होंने गोरी–अल्पसंख्यक सरकारों द्वारा गैर–कानूनी करार दिए गए (जैसे दक्षिण अफ्रीका की अफ्रीकी राष्ट्रीय कांग्रेस) को मदद पहुंचाई।

नव–स्वतंत्र राष्ट्रों को शीतयुद्ध के दौर (1945–1991) में राष्ट्रीय स्वाधीनता और विकास संबंधी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। साम्यवाद के प्रति सहानुभूति रखने वाले–या कम से कम उसका विरोध न करने वाले नेताओं को अक्सर लोकप्रियता मिलने लगी। लेकिन जब उन्होंने पुराने औपनिवेशिक 'मूल' श्रेष्ठजनों की स्थिति कमजोर करने की कोशिश की तो उन्हें विरोध का सामना करना पड़ा।

इंडोनेशिया में स्वतंत्रता सेनानी अहमद सुकर्णो (1901–1970) ने 1920 के दशक में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस जैसे इंडोनेशिया ने राष्ट्रीय स्वाधीनता के पांच सिद्धांत प्रतिपादित किए : ईश्वर में आस्था, मानवतावाद, राष्ट्रीय स्वाधीनता, प्रजातंत्र और सामाजिक न्याय (जिसका अर्थ था केंद्रीय आर्थिक मार्गदर्शन एवं धन का पुनः वितरण)। मुसलमान (बहुसंख्यक धार्मिक समुदाय) इस शर्त पर केंद्रीकृत इंडोनेशियाई राष्ट्र द्वारा शासने के लिए सहमत हुए कि उन्हें उनके पास कुछ स्थानीय नियंत्रण, विशेषकर धार्मिक मामलों में रहेगा। 1950 के दशक में सुकर्णो ने चीनियों से प्रेरित साम्यवादी जन–आंदोलन भी शुरु किया, किंतु 1959 में उन्होंने तानाशाही स्थापित कर दी हालांकि उन्होंने साम्यवादी आंदोलन की वैधता स्वीकार की। 1965 में सुकर्णो के आंतरिक दुश्मनों (मुख्यतः सैन्य अधिकारियों) ने उन्हें अपदस्थ कर दिया और हजारों लोगों का कत्ल करते हुए इंडोनेशियाई साम्यवादियों पर शिकंजा कसना प्रारंभ कर दिया। सोवियत संघ किनारे खड़ा यह सब देखता रहा, जबकि अमेरिका ने सैन्य अधिकारियों को गुप्त रुप से मदद की। इंडोनेशिया में अभी हाल तक सैन्य तानाशाही बनी हुई थी।

## पाठगत प्रश्न 26.2

बाएं कॉलम में दिए गए शब्दों को दाएं कॉलम में दिए गए अर्थ से या शब्द को मिलाइए।

| | |
|---|---|
| 1. इदी अमीन | 1945 में स्थापित |
| 2. सुकर्णो | इसमें भारत शामिल है। |
| 3. गुटनिरपेक्ष आंदोलन | अफ्रीकी तानाशाह |
| 4. संयुक्त राष्ट्र संघ | इंडोनेशिया |

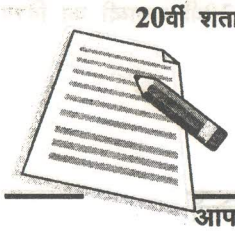

आपकी टिप्पणियाँ

## 26.4 वि-उपनिवेशीकरण और वैश्विक राजनीति

उपनिवेशवाद का विरोध करने पर हजारों स्त्री–पुरुषों को कष्ट झेलने पड़े, जैसे–फ्रांसीसी ट्यूनीशिया (उत्तरी अफ्रीका) में स्वतंत्रता–आंदोलन के नेता हबीब बुर्गीबा (1903–2000) में और ब्रिटिश पश्चिमी अफ्रीका में घाना के स्वाधीनता–संग्राम की प्रमुख हस्ती क्वामे एनक्रूमाह (1909–1972) को तथापि अन्य नेता अपने औपनिवेशिक शसकों के गृह–राष्ट्रों में रहकर युद्ध के समय राजनीतिक विचार तथा संगठन की तकनीकें सीखते रहे। हो चि मिन्ह (1894–1969) 1918 से 1930 के बीच फ्रांस में रहे, जहाँ उन्होंने वियतनामी स्वतंत्रता हेतु लड़ने के लिए फ्रांसीसी हिंदचीन लौटने से पहले फ्रांसीसी साम्यवादी दल की स्थापना की। लियोपोल्ड सेदर सेनघोर (1906–2001) फ्रांस में एक यूनिवर्सिटी प्रोफेसर और कवि थे और सेनेगल के प्रजातांत्रिक ब्लॉक का नेतृत्व करने के लिए अपने मूल स्थान पश्चिम अफ्रीका लौटने से पहले वे 1960 से 1980 तक सेनेगल के प्रथम राष्ट्रपति रहे।

1945 के बाद वि–उपनिवेशीकरण में तेजी आई। कुछ क्षेत्रें में सीमित हिंसा एवं जन–हानि के साथ वि–उपनिवेशीकरण हो गया। उदाहरण के लिए, 1958 के बाद फ्रांसीसी आधिपत्य वाला पश्चिमी अफ्रीका स्वतंत्र सेनेगल, मारीशियाना, माली, आइवरी कोस्ट, गीनिया और अन्य राष्ट्रों में विभाजित हो गया, जबकि ब्रिटिश आधिपत्य वाला पश्चिमी अफ्रीका 1957 से 1961 के बीच सियरा तिओन और नाइजीरिया के स्वतंत्र राष्ट्रों में बंट गया।

सन् 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान अंग्रेजों ने हजारों भारतीयों को जेलों में ठूंस दिया। लेकिन उसके बाद भारतीय स्वाधीनता संग्राम में भारतीयों और अंग्रेजों के बीच कम हिंसा हुई। फिर भी लाखों दक्षिण एशियाई आगामी भारत–पाकिस्तान बंटवारे के समय अपनी जान से हाथ धो बैठे या सीमाओं के पार विस्थापित हो गए। पूर्व ब्रिटिश राज के कुछ पड़ोसी क्षेत्र जैसे सीलोन (अब श्रीलंका) और बर्मा (अब म्यांमार) कम हिंसा से ही स्वाधीन हो गए।

1950 के दशक में उत्तरी अफ्रीका के मोरक्को एवं ट्यूनीशिया शांतिपूर्वक फ्रांस के चंगुल से अलग हो गए, लेकिन पड़ोसी अल्जीरिया को आठ वर्षों के संघर्षों के बाद स्वतंत्रता प्राप्त हुई, जिसमें हजारों अल्जीरियाई और फ्रांसीसी मारे गए। आज के अंगोला एवं मोजांबिक (दक्षिण अफ्रीका में) ने एक दशक की लड़ाई के बाद 1975 में पुर्तगाली शासन से अपने को स्वतंत्र कराया, जिसमें बड़ी संख्या में अफ्रीकियों और पुर्तगालियों की जानें गई। वर्तमान मलेशिया की जनता ने दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान जापानी कब्जे के खिलाफ संघर्ष किया। इसी मलायी जापान–विरोधी जन–सेना ने फिर ब्रिटेन द्वारा पुनः कब्जा किए जाने के खिलाफ लड़ाई की। अगले 10 वर्षों में एक समय 100,000 से अधिक ब्रिटिश सैनिक ब्रिटिश नेताओं द्वारा कथित 'साम्यवादी बगावत' कुचलने के लिए मलाया में उपस्थित थे। 1957 में ब्रिटेन को अपनी सेनाएं वापस बुलानी पड़ीं और ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के एक अर्ध–स्वतंत्र सदस्य के रुप में मलेशियाई संघ को मान्यता देनी पड़ी।

1945 के बाद अर्थात् दोनों महाशक्तियों के गुटों के बीच शत्रुता से वि–उपनिवेशीकरण की प्रक्रिया का शीतयुद्ध गहरा रिश्ता रहा है। जिनमें से 'पहली दुनिया' की अगुआई अमेरिका कर रहा था, जो पूँजीवादी प्रजातंत्र का पक्षधर माना जाता था, और दूसरी

दुनिया की प्रणाली की प्रतिनिधित्व सोवियत संघ तथा चीन गणराज्य जैसे उभरते समाजवादी राष्ट्र कर रहे थे। उपनिवेश की बेड़ियों से मुक्त हुई तीसरी दुनिया के नए राष्ट्रों को दोनों महाशक्तियों में से किसी एक के साथ निकट संबंध बना लेने से लाभ हुआ।

1945 में कोरिया से जापान के निकलने के बाद कोरिया जलडमरु का उत्तरी भाग सोवियत संघ एवं चीन गणराज्य के प्रभाव में आ गया, जबकि दक्षिणी भाग अमेरिका पर आश्रित हो गया। 1953 से 1970 के बीच अमेरिका ने दक्षिण कोरिया को **'विकास सहायता'** के तौर पर दस बिलियन डॉलर से अधिक की राशि दी। अर्थशास्त्री 1970 के दशक से ही दक्षिण कोरिया, ताइवान, हांगकांग और सिंगापुर को निर्यात के लिए एशिया को 'नन्हे ड्रैगन' कहने लगे थे। 'बड़े ड्रैगन' औद्योगिक वस्तुओं (जैसे इस्पात, जहाज, इलेक्ट्रॉनिक उपकरण) के उत्पादन पर आधारित अपनी तेजी से बढ़ रही अर्थव्यवस्थाओं के कारण जापान एवं चीनी गणराज्य कहलाते थे। नन्हे ड्रैगन विकसित देशों, मुख्यतः अमेरिका, जापान और ग्रेट ब्रिटेन से मिलने वाली भारी सहायता राशि और ऋणों के साथ–साथ व्यापारिक समझौतों से लाभान्वित हुए।

किंतु अफ्रीका में यूरोपीय देशों ने अपने आधिपत्य वाले अफ्रीकी देशों में शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य मानव–विकास संबंधी जरुरतों पर थोड़ा ही धन लगाया। यहां तक कि लैटिन अमेरिका में जहाँ 1900 तक कुछ औपचारिक उपनिवेश बने हुए थे, अनेक लोग लगभग गरीब, अशिक्षित और राजनीतिक रुप से शक्तिहीन बने रहे, जैसे 18वीं एवं 19वीं सदी में उनके पूर्वज थे।

### पाठगत प्रश्न 26.3

1. 1945 के बाद की महाशक्तियों ने किस प्रकार उपनिवेश–विरोधी संघर्ष में अपनी रुचि प्रदर्शित की?

2. 1953 से 1980 के बीच एशिया के कुछ 'नन्हे ड्रैगनों' के नाम बताइए?

3. 1945 के बाद कौन–से महाद्वीप अविकसित बने रहे?

## 26.5 चीन : राष्ट्रीय स्वाधीनता, दो राष्ट्र

1911–1912 में एक सम्राट द्वारा नियंत्रित चीनी तानाशाही प्रणाली औपचारिक रुप से समाप्त हो गई और उसके स्थान पर गणराज्य बन गया, लेकिन नया गणराज्य विदेशी आधिपत्य को हटाने में असमर्थ रहा। 1920 के दशक के अंतिम चरण में माओ जेडोंग, (1893–1976) चाऊ एनलाई, डेंग झिआओपिंज एवं अन्य नेताओं के नेतृत्व में साम्यवादियों ने चीनी राष्ट्रवादियों (गुओमिनडंग) के विरुद्ध लड़ाई लड़ी और दोनों ही समूहों ने जापान को खदेड़ने की कोशिश की जिसने 1840 के दशक से उन पर क्षेत्रीय

और आर्थिक नियंत्रण बनाया हुआ था। माओ का मानना था कि चीनी राष्ट्रवादी ऐसे सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन नहीं लाना चाहते, जिनसे चीन की जनता का उद्धार हो सके और वे इतने अधिक भ्रष्ट हैं कि विदेशियों का विरोध नहीं कर सकते। इसलिए चीन के साम्यवादी नेताओं ने 1949 तक न केवल जापानी, फ्रांस और ब्रिटेन को अधिकांश 'राष्ट्रीय' क्षेत्र से बाहर निकालने के लिए बाध्य किया, वरन् अपने विरोधी चीनी 'राष्ट्रवादियों गुओमिनडंग को मुख्यभूमि चीन से एक–एक पतली खाड़ी के पार फॉरमोसा द्वीप–वर्तमान ताइवान में धकेल दिया। हांगकांग 1977 तक ब्रिटेन का उपनिवेश था। उनका परम उद्देश्य ताइवान को चीनी मुख्य भूमि के साथ एकीकृत करना था, जो एक अलग राष्ट्र बन गया था।

1945 से चीन में इतिहास की संभवतः सबसे बड़ी क्रांति आई, जिसमें उसने खुद को मूल श्रेष्ठजनों और ब्रिटेन, फ्रांस तथा अमेरिका के भी, जिनका देश के अधिकांश व्यापार पर नियंत्रण था, प्रभुत्व वाले किसान–बहुल समाज से चीनी लोकतांत्रिक गणराज्य नामक एक समाजवादी राष्ट्र में बदल डाला। समाजवादी राष्ट्र का मतलब था राष्ट्र के स्वामित्व वाले औद्योगिक उद्यम और सामूहिक स्वामित्व वाली भूमि पर सामूहिक खेती की नीति।

किंतु 1980 से चीनी साम्यवादी दल (सीपीसी) के नेतृत्व ने विनिर्माण और वाणिज्यिक क्रियाकलापों में मुक्त उद्यम को बढ़ावा दिया है। 1993 तक चीनी गणराज्य का दस प्रतिशत से भी कम औद्योगिक उत्पादन केंद्रीय योजना के अधीन था। 1980 के दशक से चीनी गणराज्य ने अपने वैचारिक विरोधी देशों से सैकड़ों बिलियन (अमेरिकी) डॉलर के विदेशी निवेश का स्वागत किया है। कुछ अर्थशास्त्रियों का अनुमान है कि चीनी गणराज्य 2010 तक विश्व की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था होगा, जैसा कि वह 1800 से पूर्व था, लेकिन आर्थिक उदारीकरण एवं सरकारी नियंत्रण में कुछ ढिलाई बरतने से 1949–1980 के रुझान को उलट भी दिया, जब सीसीपी का लक्ष्य चीनियों को हर संभव तरीके से अधिकाधिक समान बनाना था।

एक ओर जहां चीनी गणराज्य ने पश्चिमी आक्रमण तथा परमाणु हथियारों के विकास की निंदा की वहीं दूसरी ओर वह 1960 के दशक के प्रारंभ तक परमाणु हथियार–संपन्न राष्ट्र बन गया। चीनी नेताओं ने अपने सैन्य निर्माण को यह कहकर उचित ठहराया कि कोरियाई युद्ध (1950–1953) के दौरान अमेरिका ने चीनी गणराज्य पर परमाणु बम गिराना चाहा था। साथ ही 1950 के दशक में चीन और रुस के रिश्ते बिगड़ने लगे थे, क्योंकि माओ का मानना था कि मार्क्सवाद एवं लेनिनवाद को चीन की स्थितियों के अनुसार समायोजित किए जाने की आवश्यकता है और उन्हें तथा कुछ अन्य नेताओं को सोवियत प्रभुत्व की आशंका थी। 1960 एवं 70 के दशक के दौरान सोवियत संघ ने वियतनामी साम्यवादियों को अमेरिका के विरुद्ध संघर्ष में सैन्य सहायता मुहैया करवाई थी, लेकिन चीन ने वियतनामी के साम्यवादी आंदोलन का समर्थन करने से मना कर दिया। इस समय चीन अफ्रीका में चल रहे साम्यवाद–समर्थक जन–संग्राम को मदद कर रहा था। चीन ने तीसरी दुनिया के अनेक देशों को विकास संबंधी सहायता उपलब्ध कराई।

## पाठगत प्रश्न 26.4

1. सीसीपी द्वारा 1930 से चीन के दुश्मनों के रुप में चिह्नित दो राष्ट्रों के नाम बताइए।

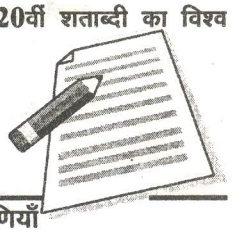



2. क्या प्रमाण हैं कि चीन के साम्यवादी नेतृत्व ने 1980 से समाजवाद और विकास की अपनी संकल्पना में संशोधन कर लिया?

_____

3. क्या चीनी गणराज्य ने वियतनाम के स्वाधीनता संग्राम को मदद पहुंचाई या हतोत्साहित किया?

_____

## 26.6 उपनिवेशोत्तर विश्व में 'विकास' की समस्याएँ

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान और बाद में बड़ी शक्तियों के नेतृत्व ने वैश्विक स्तर पर अधिक समान धन–वितरण को विश्व–शांति और स्थायित्व के लिए अनिवार्य माना। 1945 के बाद धन उत्पादन और व्यापार में पैठ को लेकर होने वाले विवादों के समाधान के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ, अंतअंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक जैसी नई वैश्विक संस्थाओं की स्थापना की गई। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष उन देशों के लिए ऋणों की व्यवस्था करता है जो उन्हें आयातों पर होने वाले अपने व्यय को 'संतुलित' करने के लिए अपने निर्यातों से पर्याप्त धन नहीं जुटा पाते। विश्व बैंक सिंचाई और जल–विद्युत प्रणालियों के लिए भुगतान करने और उत्पादकता तथा आर्थिक सुरक्षा बढ़ाने के लिए अपेक्षित अन्य बुनियादी सुविधा विषयक सुधार करने के लिए राष्ट्रों को ऋण देता है, जो प्रायः 'विकास सहायता' के पूरक के रुप में दिए जाते हैं।

किंतु अनेक लोगों का कहना है कि इन संस्थाओं ने उन्हीं राष्ट्रों के हित पूरे किए हैं, जो पहले से ही विकसित हैं। अंतअंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ऋण लेने वाली सरकारों से अपना घाटा कम करने की अपेक्षा करता है, जिसे ये सरकारें अक्सर 'सामाजिक मदों पर व्यय' (जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास के लिए निधि प्रदान करना) घटाकर करती हैं। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने सरकारों को अपनी मुद्राओं का अवमूल्यन करने का परामर्श भी दिया है जिससे विश्व बाजार में उनके द्वारा निर्यात की जाने वाली वस्तुओं की कीमत कम हो जाती है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थायी सुरक्षा परिषद में 1945 के बाद रुस, अमेरिका, राष्ट्रवादी चीन (1970 तक), ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस शामिल थे। शीतयुद्ध के दौरान ब्रिटेन और फ्रांस ने सुरक्षा परिषद में उठाए गए लगभग दो–तिहाई मुद्दों पर अमेरिका का पक्ष लिया, जिससे विश्व की राजनीति तथा आर्थिक मसलों पर अमेरिकी प्राथमिकताएं और निर्णय हावी रहे। एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के कुछ व्यक्तियों की दृष्टि में विकसित पूंजीवादी समाजों के नेताओं द्वारा स्वाधीनता एवं न्याय के संबंध में किए गए दावे अक्सर खोखले लगते हैं और उनके द्वारा बनाई गई नीतियां पाखंड प्रतीत होती हैं। दूसरी ओर विश्व भर में लोग पत्रिकाओं, सिनेमा और टेलीविजन के माध्यम से 'पश्चिमी' जीवनशैली के गहन संपर्क में आए, जिससे वे पश्चिमी (विशेषकर अमेरिकी) तरीकों से अपने आर्थिक तथा अन्य क्रियाकलाप व्यवस्थित करने लगे। अमेरिकी अर्थशास्त्री डब्ल्यू डब्ल्यू रोस्टो मानते थे कि पूर्ववर्ती उपनिवेश ब्रिटेन जैसे प्रारंभिक औद्योगिक राष्ट्रों द्वारा अपनाए गए मार्ग पर चल सकते हैं और वे अपने कृषि–उत्पादन बढ़ाकर तथा मुक्त व्यापार की नीतियों का अनुसरण करके उद्योग विकसित करने के लिए पूंजी एकत्र कर सकते हैं और इस

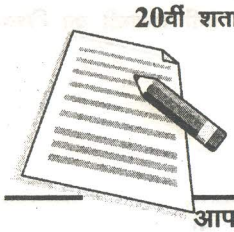

आपकी टिप्पणियाँ

प्रकार आर्थिक आधुनिकता की दिशा में बढ़ सकते हैं। विकास के इस सिद्धांत को 'आधुनिकीकरण का सिद्धांत' कहते हैं।

पहले अर्जेंटीना और फिर ब्राजील ने इस मॉडल को अपनाने का प्रयास किया और कुछ उद्योग भी लगाए, लेकिन अनेक अमेरिकी, अफ्रीकी और एशियाई देशों में 1960 के दशक से 1980 के दशक के बीच विकास के संकट के संकेत दिखे। औद्योगिकीकरण ठहर गया और गरीबी बढ़ गई। 1960 के बाद लैटिन अमेरिका में विदेशी कंपनियाँ निवेशित धन से कहीं अधिक धन (लाभ के रुप में) निकालकर ले गईं। निजी निकायों जैसे अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से लिए गए ऋणों से हालात नहीं सुधरे। 1980 के दशक में लैटिन अमेरिकी देशों को कुल 200 बिलियन अमेरिकी डॉलर से अधिक ऋण अदायगी करनी थी। 1990 के दशक के प्रारंभ में 60 प्रतिशत से अधिक लैटिन अमेरिकी परिवार अपनी मूलभूत आवश्यकताएं, जैसे–भोजन, कपड़ा और मकान पूरी करने लायक भी नहीं कमा पाते थे। अफ्रीका में आर्थिक स्थिति और खराब थी, 1980 के दशक में जाइरा एवं बुरुंडी जैसे अफ्रीका के कुछ देशों में नकारात्मक संवृद्धि होने लगी।

लैटिन अमेरिका के अर्थशास्त्रियों एवं वैज्ञानिकों ने रोस्टो जैसे अर्थशास्त्रियों द्वारा दिए गए तर्कों और कुछ पश्चिमी नेताओं द्वारा प्रवर्तित विकास संबंधी सिद्धांत की आलोचना की। यह आलोचना कभी–कभी 'निर्भरता नीति' अथवा 'अल्पविकास का सिद्धांत' कही जाती है। राउल प्रेविस्च और अन्य 'निर्भरता सिद्धांतवादियों' ने दावा किया कि शताब्दियों के स्पेनी एवं पुर्तगाली शासन और उसके बाद ब्रिटेन, अमेरिका तथा अन्य देशों द्वारा दशकों के आर्थिक प्रभुत्व के कारण अधिकतर लैटिन अमेरिकी देशों को अपनी स्वतंत्रता कार्यान्वित करने में, खासकर रोजगार और आर्थिक संसाधनों के उपयोग जैसी भौतिक परिस्थितियों के संबंध में, असमर्थ बना दिया। प्रेविस्च की भांति 1970 के दशक में अफ्रीका में वाल्टर रॉडनी ने पाया कि उपनिवेश सदियों के उपनिवेशवाद के दौरान सृजित 'निर्भरता पैटर्न' से आसानी से बाहर नहीं निकल सकते। (यूनिट 5.1 में साम्राज्यवाद पर की गई चर्चा देखें)। उनका दावा था कि जब तक बड़े जमींदार गरीब किसानों एवं श्रमिकों का शोषण करना बंद नहीं करेंगे, तब तक कृषि पिछड़ी ही रहेगी : बड़ी जागीरों (जैसे भारत में जमींदारी) तोड़ कर किसनों को पुनः वितरित की जानी चाहिए। 'तीसरी दुनिया' के अनेक सफल राजनेताओं ने सोवियत संघ एवं चीन के अनुभवों के आधार पर उद्यमों और संसाधनों पर राष्ट्र के स्वामित्व अथवा नियंत्रण पर आधारित आर्थिक विकास की रणनीति अपनाई है। उन्होंने विदेशी निवेशकों एवं राष्ट्रों को भारी लाभ प्राप्त करने से रोकने और मुफ्त शिक्षा, सुलभ स्वास्थ्य सुविधाओं आदि के माध्यम से गरीबों का उत्थान करने की भी कोशिश की है। उदाहरण के लिए क्यूबा में फिदेल कास्त्रे (1927) ने 1950 के दर्शक के उत्तरार्ध में एक राष्ट्रवादी क्रांति का नेतृत्व किया और क्यूबाई जनता के हित के लिए हितकर नीतियों का अनुसरण करते रहे। कास्त्रों क्रांति कुछ लैटिन अमेरिकी देशों में लोकप्रिय रही है, जो अपने देश की अमेरिका द्वारा प्रेरित तानाशाही एवं सतत विदेशी प्रभाव से नाराज़ हैं। अधिकांश क्यूबा निवासी का जीवन–स्तर धनी देशों के लोगों की तुलना में बेहतर है।

1960 के बाद अन्य लैटिन अमेरिकी देशों ने कुछ संदर्भों में क्यूबा के उदाहरण को अपनाया। 1970 में सल्वाडोर अलेंडे एक समाजवादी के रुप में चिली के राष्ट्रपति चुने गए। अपने संक्षिप्त कार्यकाल में उन्होंने चिली के विदेशी निगमों द्वारा नियंत्रित खनिज

संसाधनों के 'राष्ट्रीयकरण' का प्रयास किया। लेकिन वे अमेरिका की मदद से आंतरिक दु मनों द्वारा 1973 में अपदस्थ कर मार दिए गए और उनके स्थान पर एक तानाशाह (जनरल पिनोचे) आकर 1990 तक पदासीन रहे। हाल ही में एक सेनाधिकारी ह्यू चावेज (1954) 1998 में वेनेजुएला के राष्ट्रपति चुने गए। वेनेजुएला को गरीबी से उबारने के लिए राष्ट्र के स्वामित्व वाली तेल–कंपनियों से प्राप्त राजस्व का इस्तेमाल किया। उनके कार्यकाल के पहले वर्ष सामाजिक कार्यक्रमों पर सरकारी व्यय नाटकीय रुप से बढ़ा और वे काफी कारगर ढंग से अमेरिका का मुकाबला करने में सफल रहे। क्यूबा में कास्त्रे का शासन एवं वेनेजुएला में चखेज का उदय राष्ट्रवादी विकासशील विश्व के भागों में बल और विकास के जनोन्मुखी प्रतिमान को प्रदर्शित करते हैं।

## पाठगत प्रश्न 26.5

बाईं ओर के कालम में दिए गए शब्दों को दाईं ओर के कॉलम में दिए गए नामों से मिलाइए।

| | |
|---|---|
| 1. डब्ल्यू डब्ल्यू रोस्टो | भुगतान–संतुलन संबंधी समस्याओं का समाधान |
| 2. अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष | क्यूबा |
| 3. प्रेब्रिस्च | वेनेजुएला के राष्ट्रीय नेता |
| 4. फिडेल कास्त्रे | आधुनिकीकरण का सिद्धांत |
| 5. चावेज | आश्रित का सिद्धांत |

## आपने क्या सीखा

आज संसार अनेक ऐसे राष्ट्रों में बँटा है, जो अपने मामलों में निर्णय लेने के लिए औपचारिक रुप से स्वतंत्र है। यूरोपीय देश अब अपने से कहीं बड़े और अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्रें पर शासन नहीं करते। सैकड़ों राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम, जिनमें से कुछ द्वितीय विश्वयुद्ध से पहले शुरु हुए, युद्ध के बाद सफल रहे। एक ओर जहां राष्ट्रों और 'राष्ट्रीय' अलगाववादी आंदोलनों (अन्य राष्ट्रों में शमिल होने की या अपने स्वयं के राष्ट्र बनाने के इच्छुक लोगों द्वारा चलाए गए) के बीच आक्रामकता जारी है, वहीं ऐसे टकरावों को न्यूनतम करने के लिए पारदेशीय संस्थाएं और संगठन भी मौजूद हैं। इनमें से कुछ संगठन पूर्ववर्ती उपनिवेशों और विश्व के अन्य गरीब क्षेत्रें के 'विकास' में सहायता करने के लिए स्थापित हुए थे। फिर भी, राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्रामों की शुरुआत के पचास से ज्यादा साल बाद भी पांच–छह राष्ट्र शेष सब राष्ट्रों की सम्मिलित धन–संपदा से भी ज्यादा धन–संपदा पर नियंत्रण रखते हैं : विश्व में असमान आर्थिक शक्ति के बारे में बहस भी जारी है।

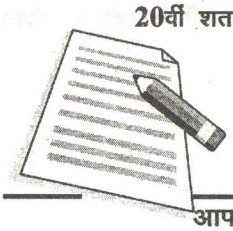

आपकी टिप्पणियाँ

## पाठांत प्रश्न

1. 'पुरानी' आधुनिक क्रांतियों (अमेरिका और फ्रांस की) और 1917 की रुसी क्रांति ने बीसवीं शताब्दी के राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्रामों को किस प्रकार प्रभावित किया।
2. उपनिवेश–विरोधी संग्रामों के उन कुछ नेताओं के बारे में बताएं, जिन्होंने अपने औपनिवेशिक 'स्वामियों' के देश में रहकर कार्य किया?
3. कौन से उपनिवेश–विरोधी राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम दूसरे विश्वयुद्ध से प्रारंभ हुआ या उसमें से निकला?
4. यह कहना क्यों उचित है कि बीसवीं सदी की चीनी क्रांति इतिहास की 'महानतम क्रांति' रही है?
5. राष्ट्रीय विकास की कुछ प्रमुख (भिन्न) रणनीतियों का वर्णन करें?
6. वैश्विक व्यापार और विकास में समानता लाने के लिए कौन–सी अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएं आविष्कृत की गई हैं?

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

### 26.1

1. ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, दक्षिण अफ्रीका, कनाडा
2. उपनिवेशी जनता को ाही सेना में शामिल करने और युद्ध–उद्योगों में भागीदारी से उन लोगों को पूर्ण नागरिकता के अधिकार तथा राष्ट्रीय स्वाधीनता की मांग करने की प्रेरणा मिली।
3. अल्जीरिया, मलाया, अंगोला, मोजाम्बिक, वियतनाम

### 26.2

1. अफ्रीकी तानाशाह
2. इंडोनेशिया
3. भारत
4. 1945 में स्थापत

### 26.3

1. 1945 के बाद सोवियत संघ ने अनेक स्वाधीनता संग्रामों को मदद दी। अमेरिका ने कुछ राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्रामों का विरोध किया और कुछ को प्रोत्साहित किया। महा ाक्तियों ने इस बात को ध्यान में रखकर राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्रामों का समर्थन या विरोध किया कि इससे उनके विरोधियों पर क्या प्रभाव पड़ेगा।
2. दक्षिण कोरिया, ताइवान, हांगकांग, सिंगापुर

3. अफ्रीका और लैटिन अमेरिका

**26.4**

1. सोवियत संघ के साथ जापान, अमेरिका और चीनी लोकतांत्रिक गणराज्य के संबंध 1957 के बाद की तुलना में पहले बेहतर थे। चीनी लोकतांत्रिक गणराज्य के ग्रेट ब्रिटेन के साथ खराब संबंध थे, क्योंकि उसने हांगकांग पर कब्जा (1997 तक) किया हुआ था।
2. 1980 में सीसीपी का पिछले तीन दशकों की तुलना में राष्ट्रीय उद्योगों के एक छोटे हिस्से पर नियंत्रण था और उसने भारी विदेशी निवेश को आमंत्रित और प्राप्त भी किया।
3. चीनी लोकतांत्रिक राज्य ने अमेरिका के विरुद्ध वियतनाम की सहायता नहीं की, हालांकि समाजवादी आदर्शों के अनुसार उसे ऐसा करना चाहिए था।

26.5

1. आधुनिकीकरण का सिद्धांत
2. भुगतान–संतुलन संबंधी समस्याओं का निवारण
3. निर्भरता का सिद्धांत
4. क्यूबा
5. वेनेजुएला के राष्ट्रीय नेता

**पाठान्त प्रश्नों के लिए संकेत**

1. देखें पैरा 26.1
2. देखें पैरा 26.4
3. देखें पैरा 26.2, 26.4
4. देखें पैरा 26.5
5. देखें पैरा 26.6 उपपैरा 4 से 9
6. देखें पैरा 26.6 उपपैरा 1.2

**शब्दावली**

वि–उपनिवेशीकरण – यह साम्राज्यवाद की उलटी प्रक्रिया है, जिसमें उपनिवेश राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र राष्ट्र बन जाते है। ऐतिहासिक दृष्टि से वि–उपनिवेशीकरण सामान्यतः 1945–90 की अवधि को कहा जाता है।

शीतयुद्ध – 1945 से 1990 तक की अवधि जब दो नई महाशक्तियों ने एक दूसरे से सीधे युद्ध (उष्ण युद्ध) न करके छदय युद्धों के माध्यम से एक दूसरें के

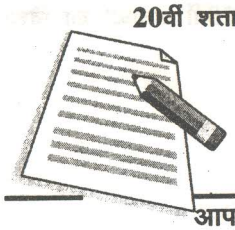

आपकी टिप्पणियाँ

विस्तार का विरोध करने की कोशिश की। शीतयुद्ध के मुख्य संघर्ष थे– सोवियत संघ द्वारा वियतनामी राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम को सहायता पहुँचाना। और अमेरिका द्वारा सोवियत संघ के खिलाफ लड़ रहे अफगानी स्वंत्रता सेनानियों की मदद करना।

गुटनिरपेक्ष आंदोलन (एन ए एम नाम) – 1950 से पूर्ववती उपनिवेशीकृत राष्ट्रों का एक संघ, जिसने 'महाशक्तियों' अमेरिका और सोवियत संघ पर नई निर्भरता से बचने का प्रयास किया। नाम राष्ट्रों में भारत, पाकिस्तान, मिस्र, क्यूबा एवं इंडोनेशिया शामिल है। गुटनिरपेक्षता की शपथ लेने के बावजूद कुछ राष्ट्र सैन्य सुरक्षा, व्यापार और आर्थिक विनिमय जैसे मामलों में किसी न किसी महाशक्ति पर निर्भर हो गए।

तीसरी दुनिया – 'विकास' (आर्थिक आधुनिकीरण) के जरुरतमंद पूर्ववर्ती औपनिवेशिक क्षेत्रों को दर्शाने के लिए 1950 के दशक के प्रारंभ में गढ़ा गया शब्द। पहली दुनिया यू0 के0, अमेरिका एवं कनाडा सहित धनी पूँजीवादी या गैर–समाजवादी राष्ट्रों को कहा जाता है। दूसरी दुनिया में (1990 तक) सोवियत संघ और उसका समाजवादी मार्ग अपनाने वाले अन्य यूरोपीय देश आते है, जैसे पोलैंड एवं बुलारिया।

विकास सहायता – धनी राष्ट्रों (या ऐसे राष्ट्रों के संघों) द्वारा गरीब देशों को उनके आर्थिक आधुनिकीकरण के लिए दिया जाने वाला धन या वित्तीय ऋण। शीतयुद्ध के दौरान महाशक्यिों अथवा उनके सहयोगी राष्ट्रों द्वारा विकास सहायता राशि का उपयोग पूर्ववर्ती उपनिवेशीकृत राष्ट्रों को अमेरिका या सोवियत संघ के पक्ष में करने के लिए किया गया।

आधुनिकीकरण का सिद्धांत – अमेरिकी अर्थशास्त्री डब्लयू डब्लयू रोस्टो द्वारा 1950 के दशक में प्रतिपादित आर्थिक विकास का सिद्धांत। रोस्टो का मानना था कि आर्थिक विकास और आधुनिकीकरण में औद्योगीकरण शामिल होगा, लेकिन पूँजीवादी कृषि विकास के बाद। मोटे तौर पर ब्रिटेन, अमेरिका और जर्मनी ऐसे देश थे, जिनका तीसरी दुनिया के देशों ने अनुसरण किया।

बाज़ार का समाजवाद – चीनी लोकतांत्रिक गणराज्य के नेताओं द्वारा सन् 1980 से अपने विकास की मिश्रित या संयुक्त रणनीति को परिभाषित करने के लिए प्रयुक्त शब्द।

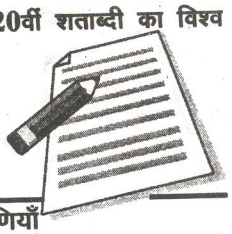

आपकी टिप्पणियाँ

पूरे देश में सशक्त केन्द्रीय (आर्थिक) आयोजना और संसाधनों (उत्पादन के साधनों) पर राष्ट्र के स्वामित्व के बजाय, जैसा कि 1980 से पहले था, विदेशी भागीदारों सहित पूँजीपतियों को अपनी निवेशकों के लिए लाभ कमाने की अनुमति होती है। विशेष 'मुक्त उद्यम क्षेत्रों' को मान्यता देकर चीनी राज्य उनमें पूँजीवाद को कार्य करने की अनुमति देते है।

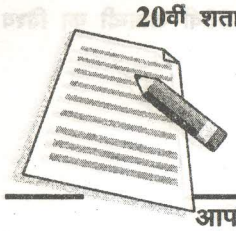



27

# 20वीं शताब्दी में सामाजिक रूपांतरण

अध्याय 26 में आपने 19वीं शताब्दी में औपनिवेशिक विस्तार तथा पूँजीवादी औद्योगिकीकरण के फलस्वरूप हुए परिवर्तनों का अध्ययन किया। इस अध्याय में हम 20वीं शताब्दी की उस सामाजिक प्रक्रिया की तीव्रता और गहराई का अध्ययन करेंगे जिसने 19वीं शताब्दी को पहचान दी थी। इनमें से कुछ तो मानव जीवन पर अमिट प्रभाव डालने वाली थीं।

20वीं शताब्दी के अंतिम दशक ने यूरोप में समाजवादी समूहों का पतन तथा पूँजीवादी कल्याणकारी राज्यों का विनाश भी देखा। इसने पूँजीवादी देशों के बीच तथा पूँजीवादी देशों के भीतर असमानता में वृद्धि भी देखी। हम इनमें से कुछ तथा पूँजीवाद तथा समाजवादी विचारधाराओं के सामाजिक रूपान्तर में भिन्नताओं का भी अध्ययन करेंगे।

## उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- औद्योगिकीकरण के विकास ने किस प्रकार विश्व के कई भागों में समाज के आधारभूत परिवतनों में सहयोग दिया, इस पर चर्चा कर सकेंगे;
- यह पहचान कर सकेंगे कि पहले से ही विकसित देशों तथा 20वीं शताब्दी में अंग्रेजी राज से आजाद होने वाले देशों के बीच अंतर था;
- विकसित देशों में समय के साथ हुए परिवर्तन का अध्ययन कर पाएँगे;
- पूँजीवादी तथा समाजवादी देशों के बीच अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे।

## 27.1 जनसांख्यिकी परिवर्तन

19वीं शताब्दी में विद्यमान जनसांख्यिकी परिवर्तन अगली सदी में भी जारी रहा। नब्बे के दशक में विश्व में 5 या 6 खरब लोग थे, शायद उस संख्या से तीन गुना जो प्रथम विश्व युद्ध के लड़े जाने के बाद थी। यह संख्या उन 18.70 करोड़ लोगों की मृत्यु के बावजूद थी जिनकी इस शताब्दी के दौरान विविध कारणों से स्वाभाविक मृत्यु हुई।

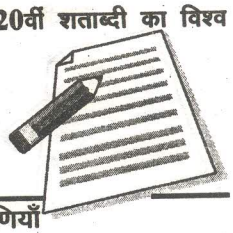

आपकी टिप्पणियाँ

पूरे देश में सशक्त केन्द्रीय (आर्थिक) आयोजना और संसाधनों (उत्पादन के साधनों) पर राष्ट्र के स्वामित्व के बजाय, जैसा कि 1980 से पहले था, विदेशी भागीदारों सहित पूँजीपतियों को अपनी निवेशकों के लिए लाभ कमाने की अनुमति होती है। विशेष 'मुक्त उद्यम क्षेत्रों' को मान्यता देकर चीनी राज्य उनमें पूँजीवाद को कार्य करने की अनुमति देते है।

संपूर्ण 20वीं शताब्दी में विश्व जनसंख्या में वृद्धि दिखाई देती है। पश्चिमी यूरोप तथा उत्तरी अमेरिका में यह मुख्यतः विकसित स्वास्थ्य सुविधाएं तथा कम शिशु मृत्यु दर की वजह से हुआ तथा सामाजिक सुरक्षा प्रणाली ने जीवन आयु वृद्धि में मुख्य भूमिका निभाई। यूरोप तथा अन्य प्रायद्वीपों में यह वृद्धि इसलिए थी क्योंकि जन्म दर बहुत ऊंची थी।

किंतु 1930 के पश्चात हम पूर्वी यूरोप में भी कमी का रुख देखते हैं तथा 1960 तक तो लगभग पूरे यूरोप में कम प्रजनन था, हालांकि न्यून मृत्यु दर के प्रति संतुलन था। अतः कुल मिलाकर पूरे विकसित संसार में जनसंख्या में वृद्धि हुई।

किंतु 20वी शताब्दी में हुए दो विश्व युद्धों का यूरोप की जनसंख्या वृद्धि पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा। क्योंकि काफी संख्या में लोग मारे गए तथा देर से विवाह तथा परिवारिक जीवन में अवरोध भी कारण बने।

1945 के पश्चात विकासशील देशों में पश्चिम की तुलना में कहीं अधिक जनसंख्या वृद्धि देखी गई। 20वी शताब्दी में जहाँ एक ओर विकसित स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध होने लगीं वहीं कृषि प्रधान पुरानी अवधारणा (जितने हाथ उतने काम) भी प्रचलन में रही, जिसकी परिणति अधिक गति से जनसंख्या वृद्धि में हुई।

एक तुलनात्मक तथ्य प्रदर्शित करता है कि सदी के अंत में पश्चिमी जगत में विश्व की जनसंख्या का 1/6 हिस्सा ही होगा।

जनसांख्यिकी परिवर्तनों ने मानवीय रहन–सहन तथा जनसंख्या वितरण के ढंग को भी बदल दिया। उदाहरण के लिए, 20वीं शताब्दी में जनसंख्या वितरण को प्रभावित करने में लगातार प्रवास एक महत्त्वपूर्ण घटक रहा। 1901 से 1915 तक यूरोप में अत्यधिक मात्रा में प्रवास हुआ। दक्षिण तथा पूर्वी यूरोप से जहाँ एक ओर लोग बाहर जा रहे थे वहीं उत्तरी यूरोप में प्रवासी वापस आ रहे थे और जा भी रहे थे। पश्चिमी यूरोप में प्रवासी आ अधिक रहे थे और जा कम रहे थे। प्रवास का यह विशिष्ट ढाँचा राजनीतिक प्रभाव के चलते श्रमिकों की बढ़ती तथा घटती मांग के कारण था। उदाहरणार्थ, नाजी नीतियों की वजह से जर्मनी से यहूदियों, अल्पसंख्यकों तथा राजनीतिक कैदियों का पलायन हुआ। जबकि युद्ध के पश्चात पुनर्वास की वजह से जर्मनी में तुर्क श्रमिकों का प्रवास हुआ। रूस तथा स्पेन में नागरिक युद्ध के चलते भी बाहरी प्रवास हुआ।

इस प्रकार हम देख सकते है कि जनसंख्या वृद्धि तथा स्थानांतरण कई महत्त्वपूर्ण घटनाओं के परिणाम थे। आज हम गरीब देशों से अमीर देशों में पलायन देखते हैं किन्तु अधिकतर प्रशिक्षित तथा कुशल मध्य वर्ग को, जबकि गरीब व्यक्ति के पास कड़े नियम के चलते प्रवास का कोई अवसर ही नहीं होता। हालांकि मध्य–एशिया में गरीब तबकों का प्रवास कोई बड़ी बात नहीं है।

पुत्र की अभिलाषा ने भारत तथा चीन जैसे देशों में लिंग संतुलन को नष्ट कर दिया तथा अब यह चिंता का विषय बन गया है।

## 27.2 शहरीकरण

आधुनिक शहरी जीवन पूँजीवादी औद्योगीकरण से संबंधित है। शहरीकरण का क्या अर्थ है? शहरों की सख्या में वृद्धि तथा ग्रामीण जनसंख्या की तुलना में शहरी जनसंख्या में

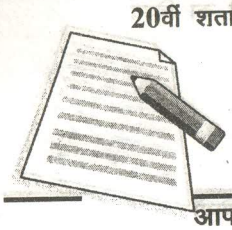

आपकी टिप्पणियाँ

तेजी से वृद्धि। इस प्रकार शहरीकरण एक स्वाभाविक प्रक्रिया न होकर औद्योगीकरण तथा शहरों में बेहतर आर्थिक अवसरों की वजह से ग्रामीण जनसंख्या का शहरों की ओर पलायन है। आप पाठ 22 में इस प्रक्रिया के विषय में पढ़ चुके हैं। यह आपको पूरे विश्व में, यहाँ तक कि पूरे यूरोप में भी एक सा नहीं मिलेगा, एक देश में भी यह नहीं है और यह प्रक्रिया अचानक नहीं आई है।

हमें औद्योगीकरण तथा अनौद्योगीकरण वाले क्षेत्रों में भारी असमानता देखने को मिलती है। कई क्षेत्रों में कृषि–का मशीनीकरण हो गया तो कहीं नहीं हुआ। औद्योगीकरण के साथ ही अधिकतर व्यक्ति निर्मित सामान के उत्पादन तथा सेवाओं के क्षेत्र में आए, किंतु ये दोनों ही क्षेत्र शहरों तथा कस्बों में ही केन्द्रित रहे।

सन 1900 में ब्रिटेन जहाँ औद्योगीकरण हुआ, प्रथम देश था, सर्वाधिक 77% तक शहरी जनसंख्या वाला देश था, जबकि जर्मनी जिसमें तब तक काफी गति से औद्योगीकरण हो रहा था, 56% शहरी जनसंख्या वाला देश हो चुका था। अन्य देशों में 50 प्रतिशत से कम ही शहरी जनसंख्या थी। और यदि इस शताब्दी के प्रारंभ में पूरे विश्व को आँके तो हम पाएँगे कि करीब 70 प्रतिशत जनसंख्या अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती थी।

20वीं शताब्दी के परिप्रेक्ष्य में यदि हम देखें तो पाएँगे कि विज्ञान तथा तकनीक में परिवर्तन के चलते उत्पादन वृद्धि ने शहरीकरण को और अधिक विस्तृत कर दिया। अमेरिका तथा इंग्लैंड में 1970 के मध्य तक 95 प्रतिशत से अधिक कार्यरत जनसंख्या निर्माण तथा सेवा क्षेत्र में कार्यरत थी, जबकि कृषि क्षेत्र में मात्र 5 प्रतिशत जनसंख्या ही रोजगार पा रही थी। यूरोप में (रूस के अतिरिक्त) 1980 के मध्य तक 70 प्रतिशत, जापान में 80 प्रतिशत तक जनसंख्या शहरी क्षेत्र में निवास कर रही थी, जबकि 20 प्रतिशत से कम कृषि क्षेत्र में।

रूस जैसे देशों में 1917 तक अधिकतर जनसंख्या गांवों से जुड़ी थी। हालांकि 1930 तथा शताब्दी के उत्तरार्द्ध में रूस में तेजी से शहरीकरण हुआ। एशिया तथा अफ्रीका के कई देशों में (भारत–सहित) कृषि अभी भी ऐसा क्षेत्र था, जहाँ लोग अधिक संख्या में रोजगार पा रहे थे। शहरीकरण का अर्थ बड़े शहरों में प्रगति ही नहीं बल्कि हमारे जैसे विकासशील देशों में छोटे कस्बों का विस्तार भी था। सन 1900 में करीब 16 शहर ही एक लाख से अधिक जनसंख्या वाले थे, 1950 में ये 67 तथा 1985 में ये 250 से अधिक हो गए। कुल मिलाकर पूरे विश्व में करीब 40 प्रतिशत से अधिक व्यक्ति शहरों में निवास कर रहे थे। और आज यह संख्या पचास प्रतिशत तक हो सकती है। आप यह प्रवृत्ति हमारे देश में भी देख सकते है। हजारों की संख्या में लोग नौकरी की तलाश में बाहर आ रहे हैं। वास्तव में विकासशील देशों में कई शहर तो विश्व के सबसे बड़े शहर हैं – कोलकाता, दिल्ली, मुंबई, फैरो, शंघाई, नैरोबी, सियोल, बैंकाक, इत्यादि।

## पाठगत प्रश्न 27.1

1. जनसंख्या वृद्धि किस प्रकार दो विश्व युद्धों से प्रभावित हुई?

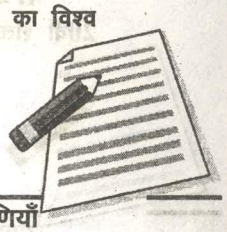

आपकी टिप्पणियाँ

2. किस प्रकार राजनीतिक पहलुओं ने जर्मनी में जनसंख्या पलायन को प्रभावित किया?

3. शहरीकरण से आप क्या समझते हैं?

4. विकासशील देशों के कुछ बड़े शहरों के नाम बताएं?

## 27.3 आधुनिक सामाजिक वर्ग

पूँजीवादी औद्योगीकरण का परिणाम आधुनिक सामाजिक वर्ग के रूप में सामने आया जिससे हमारा तात्पर्य उस सामाजिक वर्ग से है जो रूपांतरित होने से पहले हुआ करता था तथा पूँजीवादी अर्थव्यवस्था तथा समाज का अभिन्न अंग था। दो नए वर्गों का उदय हुआ–मध्य वर्ग तथा श्रमिक वर्ग। पूर्व–पूँजीवाद व्यवस्थाएं भूमि की संपत्ति तथा भूमि के स्वामित्व के द्वारा संचालित होती थीं। जैसे ही यह संसार के हर क्षेत्र में फैला, दोनो पूँजीवादी उद्योगीकरण से बहुत बुरी तरह प्रभावित हुए। जनसंख्या तथा शहरीकरण में परिवर्तन के फलस्वरूप पूरे विश्व में सामाजिक ढांचे में बदलाव एक समान नहीं थे तथा न ही अचानक आए थे।

अधिकांश यूरोप के लिए 19वीं. शताब्दी एक महत्त्वपूर्ण युग था, जब अचानक आई कुलीनता ने उनकी जिंदगी को बदल कर रख दिया। इंग्लैंड में वे आधुनिक जमींदार बन गए जो भूमि के किराए तथा अन्य पूँजीवादी कामों, जैसे – वाणिज्य, खनन, रेलवे इत्यादि से पैसा कमाते थे। इन जमींदारों का वर्चस्व 20वीं शताब्दी में भी कायम रहा।

किसान हालाँकि पूँजीवादी औद्योगीकरण तथा कृषि में पूँजी की अधिकता के बावजूद समाज का महत्त्वपूर्ण घटक बने रहे, लेकिन पूँजीवादी अर्थव्यवस्था ने उनकी जिंदगी को बदल कर रख दिया कृषक वर्ग स्वयं वर्गों में विभाजित हो गया – अमीर, गरीब तथा मध्य किसान तथा सम्पत्ति आपराधिक तथा राज्य प्राधिकरणों की संचालन अलग–अलग करने लगे। इसी दौरान भूमिहीन खेती श्रमिकों का वर्ग भी हमें दीखता है। हालांकि कृषि में संलग्न व्यक्तियों की संख्या यूरोप में तब तक कम नहीं हुई, जब तक कि 1940 में कृषि का मशीनीकरण हो गया था। जमींदार के साथ रिश्ते सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र के महत्त्वपूर्ण पहलू बने रहे।

20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में लगभग पूरे पश्चिमी जगत से किसान हमें गायब मिलते हैं तथा सामान्यतया जापान तथा पूर्वी एशिया में भी किसानों की संख्या में ह्रास दिखाई पड़ता है, मात्र सहारा – अफ्रीका, भारत तथा चीन में किसान भारी तादाद में बने रहे।

तीसरी दुनिया के देश विशेषकर एशिया तथा अफ्रीका की सरकारों द्वारा आत्मसमर्पण ने कृषि संबंधी विपदाओं को बढ़ाया तथा किसानों के लिए परेशानी वाली स्थिति उत्पन्न कर दी थी। भूमिहीनता बढ़ रही थी तथा व्यावसायिक कृषि के बढ़ने का अर्थ था फसलों का स्थानातंरण होना। निर्यात करने वाली फसलों के प्रति यूरोप के पूँजीवादी देशों की मांग ने खाद्यान्न फसलों के उत्पादन को कम कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप किसान वर्ग

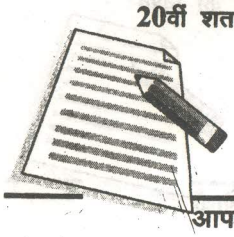

आपकी टिप्पणियाँ

ने खाद्य पदार्थों के उपयोग को भी कम कर दिया जो कि यह हजारों किसान वर्गो की आत्महत्या की वजह बनी और समर्थन मूल्य, लागत का कम मूल्य तथा सिंचाई के लिए पानी और बिजली के लिए आंदोलन में सहायक रही। चीन अपनी कृषि व्यवस्था को राजनीतिक प्रणाली के साथ जोड़ने में सक्षम रहा। किंतु दो दशकों के भूमि सुधार असंतोष को बढ़ावा दे रहे थे क्योंकि औद्योगिक उद्देश्यों के लिए कृषि भूमि की माँग थी।

मध्यवर्ग प्रगतिशील तथा अंततः अधिकार स्थापित करने वाला वर्ग बनकर 20वीं शताब्दी में उभरा। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से पूरे पश्चिमी यूरोप में सबसे समृद्ध तथा प्रभावशाली मध्यवर्ग रहा था – उद्योगपति, फैक्ट्री मालिक, बैंकर तथा खान मालिक।

मध्यवर्ग में दुकानदार, प्रबंधन, डॉक्टर, इंजीनियर तथा सेवारत लोग भी शामिल थे। शिक्षा के विस्तार के साथ ही इस वर्ग का भी विस्तार हुआ। 20वीं शताब्दी के दौरान इसमें निम्न मध्यवर्ग की संख्या भी देखी जाने लगी जिन्हें कम वेतन प्राप्त हुआ करता था। यह वर्ग सर्वाधिक असुरक्षित वर्ग तथा अर्थव्यवस्था के उतार–चढ़ाव में सबसे ज्यादा प्रभावित वर्ग हुआ करता था ।

श्रमिक वर्ग का निर्माण जो श्रम के मूल्य पर आधारित था, का संबंध पूँजीवादी उद्योग की प्राप्ति से है। पूरे यूरोंप में श्रमिक वर्ग संतुष्ट तथा 20वीं शताब्दी में भिन्न बना रहा क्योंकि मशीनीकरण अचानक नहीं आया था तथा सभी उद्योग एक साथ मशीनीकृत नहीं हुए थे। कुछ बड़ी फैक्ट्रियों के उदय से कुछ हस्तशिल्प तो मर चुके थे, किंतु नई योग्यताओं की आवश्यकता थी तथा नए दक्ष श्रमिक, धातु से संबंधित तथा इलैक्ट्रिक तथा बाद में इलैक्ट्रांनिक व्यक्तियों की माँग दिन – ब – दिन बढ़ रही थी। किंतु लगभग हर समय में कुशल कारीगर, घरेलू नौकर, दर्जी, धोबी, छपाई कर्मचारी, मजदूर, डाक अधिकारी, कई पदों पर तैनात थे। भारतीय रेलवे के कर्मचारी सभी शहरों में साथ–साथ निवास किया करते थे। इन श्रमिकों का एक महत्त्वपूर्ण घटक महिलाएं थी, हालांकि इस क्षेत्र में महिलाओं का प्रवेश निषिद्ध था। यह सब औपनिवेशिक संसार में श्रमिक वर्ग के लिए एकदम सटीक था। जैसे कि एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका में – और बाद में भी जब वे स्वतंत्र हो गए।

### नगर तथा सामाजिक जीवन

शहर तथा सामाजिक जीवन गरीब तथा अमीर के भेदों को प्रत्यक्ष दर्शाता है। उनके शहर में रहने के ठिकाने एकदम अलग थे, तथा मिलने वाली सुविधाएं भी अलग थीं। बहुमंजिला इमारतों, मॉल, बड़े स्टोर, पार्को, मुख्य मार्ग ने आधुनिक शहरों के जमीनी संसार को बदलकर रख दिया था। लेकिन इनके कारण प्रदूषण, गंदे सीवेज, झुग्गी–झोपड़ी, एक दो या तीन परिवार एक कमरे में ही रहते थे। यह आज भी संसार के किसी भी शहर का हिस्सा बन हुआ है। बेरोजगारी एक गंभीर समस्या बनी हुई थी।

## 27.5 परिवार

पूँजीवादी उद्योगीकरण के परिणामस्वरूप एकल तथा संयुक्त दोनों परिवारों में परिवर्तन आए। आर्थिक क्रांति से पूर्व गृहस्थी का अर्थ पारिवारिक कार्यों तथा श्रम में कोई अंतर न समझना था जबकि कई महत्त्वपूर्ण काम महिला तथा पुरुष द्वारा अलग–अलग किए करते रहे।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के साथ ही परिवार उत्पादन की एक इकाई न रहा, हालांकि उपयोग के मामले में यह एक ही इकाई बना रहा। उत्पादकों तथा कारखानों की वृद्धि ने श्रम मूल्य को जन्म दिया, हर व्यक्ति परिवार में पृथक् रूप से कमाता था। मध्यवर्ग के मूल्य थे – एक व्यक्ति का वेतन पूरे परिवार का वेतन समझा जाता था अर्थात एक व्यक्ति के वेतन पर ही पूरा परिवार जीवन–यापन करता था तथा महिलाओं के काम थे मुख्यतः घर को संभालना तथा बच्चों की देखभाल करना। ये हालांकि मध्य वर्ग के मूल्य थे, जिन्हें थोड़ा सा बेहतर कामकाजी वर्ग पाना चाहता था, किंतु ये श्रमिक वर्ग के लिए बाध्यकारी नही थे।

श्रमिक वर्ग की महिलाएं भी पुरुषों की भांति मजदूर थीं। जबकि वास्तव में कुछ उद्योग तो महिलाओं और बच्चों को ही श्रमिक के रूप में रखते थे क्योंकि उन्हें कम वेतन देना होता था। व्यवहार में समान काम समान दाम का सिद्धांत महिलाओं पर लागू नहीं होता था।

आधुनिक संसार में महिलाएँ घर और परिवार दोनों की ही जिम्मेदारी सँभाल रही हैं। इस स्थिति से तो आज सभी भली – भांति परिचित ही होंगे।

### पाठ्यत प्रश्न 27.2

1. पूँजीवादी औद्योगीकरण के फलस्वरूप कौन से दो वर्गों का उदय हुआ?

   _____

2. मध्य वर्ग में कौन–से व्यक्ति सम्मिलित थे?

   _____

3. बड़े कारखानों के उदय ने श्रमिकों को किस प्रकार प्रभावित किया?

   _____

4. पूँजीवादी औद्योगीकरण ने महिलाओं के रोजगार के क्षेत्र में क्या प्रभाव डाले?

   _____

## 27.6 महिला की समानता तथा नारीवाद

20वीं शताब्दी में अर्थव्यवस्था के विस्तार ने साक्षरता के संग महिलाओं के लिए नई राहें खोलीं, मध्यवर्ग तथा श्रमिक वर्ग दोनों ही महिलाओं के लिए। घरेलू सेवाओं के अतिरिक्त महिलाएं अब दुकानों तथा कार्यालयों में भी कार्यरत थीं। नर्स तथा स्कूल अध्यापिका इत्यादि को प्रथम महिला अनुकूल नौकरियाँ माना गया। दोनों विश्वयुद्धों में महिलाओं को नए अवसर प्रदान किए गए, क्योंकि पुरुषों के युद्ध में चले जाने की वजह से उनके काम महिलाओं को करने पड़े। इन सबसे महिलाओं की सामाजिक स्थिति तथा अपेक्षाओं में बदलाव आया।

मध्यवर्गीय महिलाओं ने मतदान का अधिकार मांगा तथा समानता की मांग में मताधिकार आंदोलन एक महत्त्वपूर्ण घटक बन गया। पश्चिमी जगत में महिलाओं की स्थिति में वास्तविक बदलाव श्रम तथा सामाजिक आंदोलनों के फलस्वरूप आया, जिसने सभी दबे–कुचलों के मुद्दे उठाए तथा समाज में ऐसे परिवर्तन की मांग की जो समानता लाए। महिलाओं ने इसे यथार्थ माना। महिलाओं ने बड़ी संख्या में संघ के सदस्य तथा सामाजिक संगठन बनाए तथा आंदोलनों के भी हालांकि नेतृत्व के मुद्दे पर वे उठ नहीं पाईं। महिलाओं के लिए इन संस्थानों में समानता पाना संभव न था और महिलाओं को समान अधिकार की मांग कई आंदोलनों के दबाव के फलस्वरूप पूरी की गई।

रोज़ा लक्समबर्ग तथा बेट्रिक वेब प्रख्यात समाजवादी नेता थीं, कॉलेट तथा सेलमा लेजरलोफ महत्त्वपूर्ण लेखिकाएँ थीं। तथा आरंभिक 20वीं शताब्दी से ही महिलाएं महत्त्वपूर्ण टेनिस प्रतियोगिताओं, जैसे विम्बलडन, अमेरिकी ओपन में भाग लेने लगी थीं। महिलाओं ने पत्रकारिता तथा फोटोग्राफी को भी पेशे के रूप में अपनाना प्रारंभ कर दिया था तथा वे डॉक्टर तथा इंजीनियर भी बनने लगी थीं। सोवियत संघ में उसके बड़े संस्थानों, संसद आदि में काफी संख्या में महिलाएं थीं तथा वैज्ञानिक संस्थानों में भी।

रूस में श्रमिक आंदोलन में महिलाओं की भूमिका अहम रही। तथा कृषक महिलाएँ हरित आंदोलन का हिस्सा थीं। रूस में तथा उपनिवेश विरोधी आंदोलन में उन्होंने जन प्रतियोगिता के लिए उपयुक्त माहौल पाया। भारत और चीन जैसे देशों में महिलाओं को शिक्षा के प्रश्न तथा सामाजिक पिछड़ापन, स्वतंत्रता आंदोलन का ही अंग थे तथा महिला–पुरुष दोनों ने ही इसके प्रति सहास दिखया जिसके परिणामस्वरूप स्वतंत्रता के पश्चात महिलाओं को भी पुरुषों के समान मत डालने का अधिकार मिला। रूस की क्रांति 1917 के बाद रूस में यह काफी पहले मिल गया था।

सन 1990 तक महिलाएं 16 देशों में शासनाध्यक्ष हो चुकी थी। कार्यस्थल पर उनकी संख्या नाटकीय रूप से एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका में बढ़ी। मॉरीशस इसका सटीक उदाहरण है। चीन तथा पूर्वी यूरोप में सौ प्रतिशत महिला रोजगार हासिल हो चुका है।

और यह कहने की बात नहीं कि समानता के लिए महिलाओं का संघर्ष समाप्त हुआ; यह संसार में प्रत्येक स्थान पर लागू नहीं होता। 1990 की नव–उदार नीतियों ने बेरोजगारी को बढ़ावा दिया। महिलाएं भी इसकी चपेट में आईं जिनमें पूर्व समाजवादी देश भी थे। तीसरी दुनिया के देशों में महिलाओं को गैर–संगठित क्षेत्र में काम करने को बाध्य होना पड़ा जिसमें न तो श्रमिक अधिकार थे, न ही न्यूनतम भत्ते की गारंटी। घरेलू सेवा अभी भी महिलाओं के रोजगार का साधन थी।

भारत में कन्या शिशु हत्या तथा भ्रूण हत्या 20वीं शताब्दी के आखिरी दशक में काफी बढ़ गइ थी। भारत में दहेज हत्या तथा संसार में घरेलू हिंसा में भी बढ़ोतरी पाई गई।

## 27.7 काम के तरीकों में परिवर्तन

जैसे–जैसे कारखाना प्रणाली विकसित होती गई, काम करने के तरीके बदलते गए। यूरोप में यह 19वीं शताब्दी में हुआ, किंतु बाकी संसार में यह 20वीं शताब्दी में हुआ। श्रमिकों का कार्यस्थल कारखाना हो गया। उसे समय काम के निर्धारित समय का

अनुसरण करता होता था। महिलाएं तथा बच्चे भी काम पर लग गए तथा उन्हें भी कारखाने के नियमानुसार ही चलना पड़ता था। कारखाना पद्धति का अपने अनुसार नियम तथा शर्तें थीं और श्रमिक नहीं, बल्कि मशीन काम का स्वरूप निर्धारित करती थी। नई तकनीक का आविष्कार बहुधा छंटनी का कारण बनता था। अतः श्रमिकों के बीच तनाव तथा बेरोजगारी बढ़ाता था, किंतु कई बार यह नई मशीनरी के अनुसार अपनी दक्षता को ढालने का अवसर देता था।

शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, एक अन्य प्रकार का परिवर्तन कार्य स्थल पर देखने को मिला। पश्चिमी देशों की कुछ बड़ी फर्मों ने पाया कि कम्प्यूटर के साथ घर से ही काम करना संभव है तथा यह सस्ता है क्योंकि उन्हे ऑफिस मशीनरी पर कुछ खर्च नहीं करना पड़ता। ये परिवर्तन कर्मियों के फायदे दर्शाते थे, किंतु हकीकत में ये कर्मी कभी काम से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाते थे। वे छुट्टी तथा अन्य सुविधाएं नहीं मांग सकते थे, क्योंकि वे नौकरी नहीं करते थे तथा ट्रेड यूनियन (श्रमिक संघों) की स्थापना तथा अन्य सहयोगियों के साथ दुख बांटने का कोई अवसर भी नहीं मांग सकते थे।

नए प्रकार के सॉफ्टवेयर ने मालिकों को काम पर नजदीक से नजर रखने के अवसर दिए तथा कम्यूटर नेटवर्क के जरिए अपने कर्मियों को काम के समय पर भी आप समाचार पत्रों में पढ़ सकते हैं कि बी पी ओ तथा कॉलसेंटर में काम करने वाले लोगों की परिस्थितियों के विषय में जो हमारे देश में कुकुरमुत्तों की तरह खुल रहे हैं।

एक अन्य बड़े परिवर्तन को हम आउट–सोर्सिंग कह सकते हैं। बड़ी राष्ट्रीय कंपनियों के लिए यह बड़े फायदे का सौदा होता है कि वे अपने कुछ काम तीसरी दुनिया के देशों में स्थानांतरित कर दें, जहां वेतन भत्ते कम हैं तथा जहाँ वे सरकार करों में छूट के लिए दबाव बना सकें। इसका अर्थ हुआ, पश्चिमी देशों में बेरोजगारी में वृद्धि तथा तीसरी दुनिया के देशों के लिए नौकरी किंतु खराब दशाओं में।

बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने छोटी दुकानों का दौर भी वापस बुलाया है। जहाँ वे अपना कार्य ठेके पर दे पाएं। जिसका अर्थ हुआ कि उत्पादन घर में ही होता था। यहाँ वेतन बहुत कम था तथा श्रमिक अत्यधिक शोषित थे। क्योंकि इस प्रकार का काम तीसरी दुनिया के देशों में तेजी से बढ़ा, क्योंकि अधिकतर महिलाएं यह कार्य करना चाहती हैं।

## पाठगत प्रश्न 27.3

1. 20वीं शताब्दी में महिलाओं द्वारा अपनाई गई नई नौकरियां क्या थी?

2. 1990 की नव उदार नीतियों ने महिलाओं को किस प्रकार प्रभावित किया?

3. कारखाना व्यवस्था ने काम के ढंग को किस प्रकार बदला?

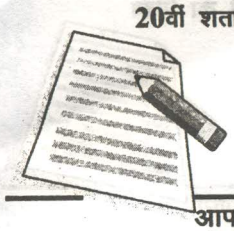

आपकी टिप्पणियाँ

4. 'आउट–सोर्सिंग' के द्वारा आए बदलावों की व्याख्या कीजिए।

## 27.8 सामाजिक और राजनीतिक संगठन

20वीं शताब्दी में सामाजिक तथा राजनीतिक संगठन की संख्या चामत्कारिक रूप से बढ़ी। राजनीतिक दलों तथा श्रम संघों के अतिरिक्त कर्मचारियों के विभिन्न वर्गों के बीच, महिलाओं तथा क्षेत्रों और लेखकों के संगठन के अतिरिक्त संगठनात्मक रूप को हर प्रकार के विचार तथा संभावनाएँ प्राप्त हो जाएँगी – शिक्षा पर, जन स्वास्थ्य पर, अल्पसंख्यकों के अधिकार, मानवाधिकार, शक्ति आंदोलन, सभ्यता, समलैंगिक अधिकार, पर्यावरण, तथा संरक्षण, कर्ज तथा स्व–मदद समूह इत्यादि। जिंदगी का कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं है। इनमें से कई संस्थान मांग उठा चुके हैं जो यह बताने के लिए पर्याप्त है कि हमारे समाज में क्या होता है किंतु कई संगठन समाज के पक्ष में भी हैं।

## 27.9 पूँजीवाद, समाजवाद और असमानता

20वीं शताब्दी के तकनीकी तथा वैज्ञानिक उपलब्धियों ने महान प्रगति तथा मानव जाति को लाभ पहुंचाए। सर्वश्रेष्ठ उपलब्ध सभावनाएँ पूरे विश्व की जनसंख्या की बेहतरी के लिए उपलब्ध कराई गईं तथा सभी व्यक्तियों के जीवन स्तर में बेहतरी भी उपलब्ध कराई गई। किंतु वैश्वीकरण तथा आर्थिक स्तर ने अमीर और गरीब की खाई को चौड़ा ही किया है।

समाजवादी विचारधारा अपने कई दोषों के बावजूद अधिक समान समाज की रचना करने में सक्षम रही, उस बड़े अंतर के बिना जो पूँजीवादी देशों में अमीरों तथा गरीबों के बीच दीखता है।

समाजवाद के पतन के पश्चात (सोवियत संघ तथा पूर्वी यूरोप में) पूँजीवादी सरकारों ने कल्याणकारी कार्यों में काफी विराम लगाए हैं। जिसका परिणाम संसार के अधिकतर व्यक्तियों के खिलाफ रहा।

### आपने क्या सीखा

इस अध्याय में आपने पढ़ा कि किस प्रकार 19वीं शताब्दी में प्रारंभ हुई सामाजिक प्रक्रिया 20वीं शताब्दी में फली फूली। जनसंख्या परिवर्तन के अतिरिक्त शहरीकरण की प्रगति तथा शहरी जीवन में परिवर्तन भी देखे जा सकते हैं। पूँजीवादी औद्योगीकरण के विस्तार ने आधुनिक कुलीन वर्ग को जन्म दिया तथा परिवार तथा काम के ढंग में बदलाव प्रस्तुत किए। इसने लोकप्रिय आंदोलनों तथा सामाजिक और राजनीतिक संगठनों को भी बढ़ावा दिया, जो विभिन्न वर्गों के विचारों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

पूँजीवादी औद्योगीकरण ने 20वीं शताब्दी में विस्तार किया जिसने प्रगति तो की, किंतु समाज में असमानता को भी बढ़ावा दिया।

## पाठांत प्रश्न

1. पश्चिमी यूरोप तथा उत्तरी अमेरिका में जनसंख्या वृद्धि के मुख्य कारणें पर प्रकाश डालिए।
2. आधुनिक कुलीन वर्ग से क्या तात्पर्य है?
3. तीसरी दुनिया के देशों में कृषि संबंधी आपदा के प्रभावों का वर्णन करें।
4. अमीरों और गरीबों की जिंदगी का चित्रण शहर किस प्रकार करते हैं?
5. श्रमिक तथा सामाजिक आंदोलनों ने महिलाओं को किस प्रकार प्रभावित किया?
6. कम्प्यूटर द्वारा कार्य की पद्धति पर पड़ने वाले प्रभावों की समीक्षा कीजिए।
7. कुछ उदहारण देकर स्पष्ट कीजिए कि किस प्रकार विज्ञान तथा तकनीक ने मानव जीवन को बेहतर बनाया है।
8. क्या अमीरों और गरीबों का अंतर आज बढ़ रहा है या कम हो रहा है विस्तार से चर्चा करें।

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

### 27.1

1. बड़ी संख्या में लोग मारे गए, विवाह टले तथा पारिवारिक जीवन का विध्वंस।
2. नाजी नीतियों ने यहूदियों, अल्पसंख्यकों तथा जर्मनी के राजनीतिक कैदियों के पलायन को जन्म दिया, वहीं युद्ध उपरांत पुनर्वास ने तुर्की के मजदूरों का जर्मनी में प्रवास कराया।
3. औद्योगीकरण तथा शहरों में बेहतर आर्थिक सुविधाओं के चलते ग्रामीण जनसंख्या का शहर में पलायन
4. कलकत्ता, दिल्ली, मुम्बई, शंघई, कैरो इत्यादि।

### 27.2

1. मध्यवर्ग, श्रमिक वर्ग
2. उद्योगपति, बैंकर, वकील, डॉक्टर, इंजीनियर, अध्यापक तथा अन्य कामकाजी वर्ग।
3. कुछ रोजगार बढ़े, कुछ ने बेरोजगारी का सामना किया, कारखाने में श्रम मूल्य कामगारों के भत्ते में परिवर्तन।
4. घर के बाहर रोजगार, असमान वेतन, कारखाना अनुशासन

### 27.3

1. कारखाने का काम, शिक्षक, कार्यालय, तथा दुकानें

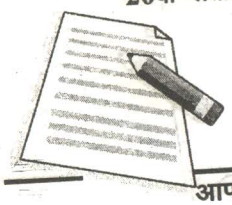

आपकी टिप्पणियाँ

2. बेरोजगारी में वृद्धि, गैरसंगठित क्षेत्रों में तथा घरेलू काम के लिए धकेल दिया जाना
3. जगह, ढंग, काम के घंटे, अनुशासन
4. बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियां अपने काम का कुछ हिस्सा तीसरी दुनिया के देशों में स्थानांतरित कर देती हैं जहां वेतन कम है तथा जहाँ वे सरकार के ऊपर करों में छूट का दबाव बना पाए।

## पाठान्त प्रश्नों के संकेत

1. देखें 27.1 अनुच्छेद 2
2. देखें 27.3 अनुच्छेद 1
3. देखें 27.3 अनुच्छेद 5
4. देखें 27.4
5. देखे 27.6 अनुच्छेद 2
6. देखें 27.7 अनुच्छेद 2 तथा 3
7. खुद खोजें और उत्तर दें।
8. लिखें जो आप सोचते हैं।

# 28

# 20वीं शताब्दी में परिवर्तन

बीसवीं सदी को प्रायः बोल्शेविक क्रांति, विश्व युद्धों, फासिज्म और एशियन और अफ्रीकन राष्ट्रों के उपनिवेशवादी शासन से स्वतंत्र होने जैसी मुख्य ऐतिहासिक घटनाओं के कारण याद किया जाता है।

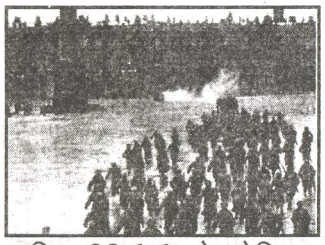

*चित्र 28.1.1 बोलशेविक क्रांति किले पर पत्थरबाजी*

*चित्र 28.1.2 अफ्रीका की स्वतंत्रता*

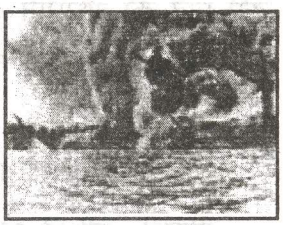

*चित्र 28.1.3 पर्ल हार्बर पर आक्रमण द्वितीय विश्व युद्ध*

*चित्र 28.1.4 इटली में फासिस्टवाद*

*चित्र 28.1.5 इथियोपिया का स्वतंत्रता आंदोलन*

*चित्र 28.1.6 प्रथम विश्व युद्ध में एक खाई*

यह सभी विकास निस्संदेह निर्णायक थे और इन्होंने समसामयिक विश्व पर अपना बहुत गहरा प्रभाव छोड़ा। तथापि, यह जानना दिलचस्प है कि समाज में आए परिवर्तन किन्हीं नाटकीय घटनाओं के परिणाम नहीं हैं, बल्कि अर्थव्यवस्था, संस्कृति और जनसांख्यिकीय में धीरे–धीरे आए दीर्घकालिक परिवर्तनों का भी परिणाम हैं। बीसवीं शताब्दी के दौरान ऐसे भी अनेक परिवर्तन देखने में आए जो उस काल के व्यक्तियों की प्रत्यक्ष कल्पना में नहीं आ सके, परन्तु जिन्होंने अंत में, विश्व के वर्तमान रूप को आकार देने में बहुत बड़ी भूमिका निभाई।

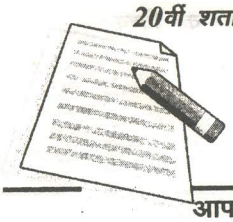

आपकी टिप्पणियाँ

पिछले पाठ में आपने ऐसी अनेक विकासशील घटनाओं के संबंध में पढ़ा जिनमें जनसांख्यिकीय विस्फोट, तेज गति से आया शहरीकरण और पिछली सदी के दौरान मध्य और कामगार वर्गों मे आया चमत्कारिक विकास शामिल है।

विभिन्न देशों के सामाजिक ढाँचों या उनके प्रमुख सामाजिक समूहों के परस्पर संबंधों में इसी प्रकार के परिवर्तन; सांस्कृतिक परिवर्तन, यानी लोगों के मूल्यों, व्यवहारों, कलात्मक रुचियों इत्यादि में भी इसी अवधि के दौरान धीरे–धीरे और दीर्घकालिक परिवर्तन देखने में आए। अगले पाठ में हम इनमें से कुछ सांस्कृतिक परिवर्तनों के संबंध में विस्तृत विचार–विमर्श करने का प्रयास करेंगे और यह भी जानने का प्रयास करेंगे कि क्या इन परिवर्तनों ने वर्तमान व्यापक साझा वैश्विक संस्कृति का विकास किया है या संस्कृतियों के बीच और अधिक तनाव और मन–मुटाव आए हैं।

## उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- संस्कृति शब्द के विभिन्न अभिप्रायों की व्याख्या कर सकेंगे;
- संस्कृति के विशेष लक्षणों पर प्रकाश डाल सकेंगे और संस्कृति की समस्याओं की व्याख्या कर सकेंगे;
- बीसवीं सदी के दौरान विज्ञान, कला, धर्म, शिक्षा, मीडिया, मनोरंजन और व्यवहार और मूल्यों में आए मुख्य परिवर्तनों का संक्षिप्त वर्णन कर सकेंगे, और
- 'वैश्वीकरण' अथवा एकीकृत विश्व अर्थव्यवस्था और संस्कृति तथा वर्तमान में पश्चिमी वर्चस्व के सतत विरोध के बीच संतुलन का आकलन कर सकेंगे।

## 28.1 संस्कृति की परिभाषा

परन्तु इससे पहले कि हम 20वीं सदी में आये सांस्कृतिक परिवर्तनों को समझें, यह लाभकारी होगा कि विभिन्न शास्त्रों में दिए गए संस्कृति शब्द के विभिन्न अर्थों को हम ध्यान से जाँच परख लें। वास्तव में 'संस्कृति' शब्द सामाजिक विज्ञानों में सबसे जटिल शब्द है। न सिर्फ इसलिए कि यह शब्द रीति–रिवाजों, आदतों, मूल्यों इत्यादि जैसे व्यापक स्वभाविक गुणों की ओर संकेत करता है जिन्हें आंकना या उनके परिणाम निर्धारित करना कठिन है परन्तु इसलिए कि इस शब्द को विभिन्न विद्वानों द्वारा अनेक अर्थों में प्रयोग में लाया गया है। उदाहरण के लिए, सरकारी घोषणाओं और समाचार बुलैटिनों में संस्कृति शब्द का उपयोग प्रायः कलात्मक सृजनात्मकता और बौद्धिक सफलताओं का उल्लेख करने के लिए किया जाता है। इस प्रकार शास्त्रीय तथा लोक संगीत, नृत्यों की किस्मों, साहित्य इत्यादि के जरिए दर्शाए जाने वाली भारतीय संस्कृति के लिए भी इसी शब्द का प्रयोग किया जाता है।

इस धारणा से थोड़ा हटकर, मानवविज्ञानी (एन्थ्रोपॉलोजिस्ट) संस्कृति शब्द को किसी भी समुदाय के संपूर्ण जीवन के हर पक्ष, जैसे–खान–पान, वेश–भूषा, काम और खाली समय व्यतीत करने की दिनचर्या के साथ–साथ लोकप्रिय परम्पराओं, त्योहारों इत्यादि को

व्यक्त करने के लिए प्रयोग करते हैं। इस प्रकार के प्रयोग में दृष्टि महान कलाकारों अथवा विचारकों की विशिष्ट या उत्कृष्ट उपलब्धियों पर अधिक नहीं होता है परन्तु उनके दिन–प्रतिदिन के कार्यों पर होता है जिनमें समुदाय पारंपरिक रूप से सम्मिलित रहा है अथवा उन्हें स्वीकृत किया जाता रहा है। अतः इस परिभाषा के अनुसार भारतीय संस्कृति के अध्ययन में दृष्टि हमारे लोकप्रिय त्योहारों, धार्मिक परंपराओं और जाति व्यवस्था पर होगा।

एक अन्य परिभाषा में संस्कृति शब्द में समाहित हैं किसी समुदाय के निहित मूल्य, विश्वास और आचार–व्यवहार जो सभी के साझे हों या जो किसी समुदाय की मुख्य विशेषता के रूप में समझे और पहचाने जाते हों। अतः इस प्रकार भारतीय संस्कृति में पारंपरिक पारिवारिक बंधनों का और बड़ों के सम्मान का महत्त्व पश्चिमी विश्व से कहीं अधिक है जहाँ पर बच्चे विवाह के पश्चात अपने माता–पिता को छोड़ देते हैं और उनके वैवाहिक बंधन भी बहुत नाजुक होते हैं। ऐसी मानसिकताओं या आदर्शों और विश्वास पद्धतियों के सरोकारों के विपरीत, पुरातत्वविज्ञानी प्राचीन समुदायों की भौतिक संस्कृति' (मैटीरियल कल्चर) या आमतौर पर प्रयोग में लाई जाने वाली शिल्पकृतियों, जैसे–मिट्टी के बर्तन, आभूषण और भवन इत्यादि पर अधिक केन्द्रित हैं जिनके अवशेषों को खुदाइयों के जरिए ढूँढने का प्रयास करते हैं।

यदि आपको पीछे दी गई परिभाषाओं की ध्यानपूर्वक समीक्षा करनी हो तो आप नोट करेंगे कि किसी भी संस्कृति का अध्ययन मस्तिष्क में दो विभिन्न मानदंडों के आधार पर किया जा सकता है : एक ओर कलात्मक और बौद्धिक परिष्करण और दूसरी ओर एतिहासिक रूप से की गई सह–भागीदारी अथवा लोकप्रिय परंपराएँ। दूसरे मानदंडों की भी विभिन्न स्तरों पर पहचान की जा सकती है : भौतिक वस्तुएँ, प्रथाएँ या मूल्यों और व्यवहारों में।

संस्कृति के इन बहुआयामी पहलुओं का अनुसरण करते हुए अब हम विज्ञान, कला, मनोरंजन, मूल्य, धर्म और शिक्षा से संबंधित क्षेत्रों के कुछ असाधारण विकासों के संबंध में पढ़ेंगे जो कि 20वीं शताब्दी के दौरान देखने में आयी थी।

1. बीसवीं शताब्दी के दौरान दिखाई देने वाले, क्रांतिकारी और धीमी प्रकृति के परिवर्तनों के दो उदाहरण दीजिए।
2. संस्कृति शब्द की विभिन्न परिभाषाओं के समान और विरोधी लक्षणों का उल्लेख करें। क्या आप इन परिभाषाओं में कुछ सामान्य विशेषताओं का पता लगा सकते हैं?
3. सामाजिक विज्ञानों में संस्कृति शब्द एक जटिल अभिव्यक्ति क्यों है?

## 28.2 विज्ञान और प्रौद्योगिकी

बीसवीं शताब्दी की अत्यधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों में शायद विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास रहा है जिसने उस अवधि के दौरान मनोरंजन और शिक्षा से लेकर परिवहन और संचार तक जीवन के हर पक्ष को तीव्र गति से प्रभावित और परिवर्तित किया। पिछली सदी के दौरान आधुनिक प्रौद्योगिकी ने कारें एवं वायुयान, रेडियो और ट्रांजिस्टर, फिल्में तथा टेलीविजन, कैलक्यूलेटर एवं कम्प्यूटर, सैटेलाइट और मोबाइल फोन तथा लेजर एवं अंग प्रत्यारोपण कुछेक ऐसे नए उत्पाद और सेवाएँ उपलब्ध कराईं। इन प्रौद्योगिकी आविष्कारों के इस महासमुद्र के पीछे विविध वैज्ञानिक क्षेत्रों, जैसे–सब–एटॉमिक

फिजिक्स, आनुवंशिकी और अणु जीवविज्ञान और अंतरिक्ष अनुसंधान में जटिल विकास हुए हैं। इन क्षेत्रों में प्रमुख खोजें करने वाले कुछ प्रसिद्ध वैज्ञानिक हैं, मैडम क्यूरी, अलबर्ट आईंस्टाइन, फिनमैन और होमी जे भाभा।

*चित्र 28.2.1 मैडम क्यूरी, रेडियो एक्टिविटी की खोज*

*चित्र 28.2.2 रिचर्ड पी फिनमैन*

*चित्र 28.2.3 अलबर्ट आइंस्टाइन, परमाणु वैज्ञानिक*

*चित्र 28.2.4 होमी जे भामा, परमाणु वैज्ञानिक*

परन्तु कुल मिलाकर हाल ही में हुए वैज्ञानिक विकास किसी एक प्रतिभाशाली व्यक्ति की प्रगति नहीं हैं बल्कि विश्व के विभिन्न देशों और विकसित देशों खासतौर से अमरीका में अत्यधिक वित्त पोषित अनुसंधान केन्द्रों के वैज्ञानिकों की प्रगति का परिणाम हैं।

यह ध्यान देना भी महत्त्वपूर्ण है कि जबकि समकालीन विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने जनसामान्य को अत्यन्त लाभ पहुँचाया है, फिर भी लोगों में विज्ञान के प्रति आशंका और भय उत्पन्न हुए हैं। आंशिक तौर पर ऐसा शिक्षित जन सामान्य का आधुनिक विज्ञान की नवीनतम उन्नतियों की अज्ञानता के कारण हुआ है।

पहले से अधिक विध्वंसक हथियारों का निर्माण करने की इसकी शक्ति ने आधुनिक विज्ञान को शायद और अधिक खौफनाक बनाया है और यह पृथ्वी के संवेदनशील पारिस्थितिकीय संतुलन के लिए चुनौती है।

वर्तमान युग में वैज्ञानिक अनुसंधान को बढ़ावा देने और उनका स्पष्टतया संचालन करने की वैज्ञानिकों और सरकारों की सामाजिक जवाबदेही और जिम्मेदारी बहुत अधिक है।

**कला और साहित्य**

विज्ञान के अतिरिक्त, बीसवीं शताब्दी कला के रूपों, जैसे–चित्रकला, संगीत और साहित्य और कुछ नवीनतम कलात्मक माध्यमों, जैसे–सिनेमा और रिकॉर्ड किए गए संगीत में भी महत्त्वपूर्ण प्रगति हुई है।

इस अवधि के दौरान संपूर्ण राष्ट्रों में नये सृजनात्मक कार्य को दिशा देने वाले कुछ मुख्य कला आंदोलनों में आधुनिकतावाद, सामाजिक यथार्थवाद और उत्तर–आधुनिकतावाद थे।

वास्तव में आधुनिकतावाद उन्नीसवीं सदी की अंतिम चौथाई अवधि (क्वार्टर) के दौरान यूरोप में अग्रणी लेखक वर्ग या अग्रणी कला प्रवृत्ति के रूप में विकसित हुआ और उसने बीसवीं सदी में संपूर्ण विश्व पर प्रभाव डाला। यद्यपि आधुनिकतावाद की विभिन्न शाखाएँ

थीं, जैसे–प्रतीकवाद, प्रभाववाद और अतियथार्थवाद, परन्तु इन सभी में एक मुख्य सामान्य प्रवृत्ति थी कि प्रत्यक्ष विश्व में दिखाई दे रही वस्तुओं और व्यक्तियों को यथारूप में चित्रित करने के स्थान पर अवचेतन मन की भावनाओं और विचारों की गहराई को प्रकट करने पर बल दिया गया है। इसके अतिरिक्त इस आधुनिक सरोकार को व्यक्तिनिष्ठ और अवचेतन तत्वों सहित अभिव्यक्ति देने के लिए, कलात्मक अभिव्यक्ति के पारंपरिक तरीकों को भी श्रेष्ठ बनाया गया और बार–बार साहसिक प्रयोगों को दोहराने का प्रयास किया गया। ये प्रायः एक साधारण दर्शक को अत्यन्त सूक्ष्म और अबोधगम्य लगने लगे थे।

इस प्रवृत्ति में अपनी निजी शैलियाँ विकसित करने वाले कुछ महान आधुनिकतावादी स्पेन के चित्रकार पाब्लो पिकासो जो चित्रकारी में आकृतियों के बहु–आयामी चित्र प्रस्तुत करने के लिए प्रसिद्ध थे। क्यूबिज्म आयरिश लेखक जेम्स जॉयस ने उलिसेस नामक अपनी पुस्तक में द स्ट्रीम ऑफ कॉन्शियसनेस की तकनीक प्रस्तुत की थी।

*चित्र 28.3 पिकासो*

विडम्बना यह है कि अधिकांश आधुनिकतावादी अपने सामाजिक और राजनीतिक दृष्टिकोण की कलात्मक अभिव्यक्ति में नई शैलियां विकसित करने में अत्यंत साहसी और प्रौद्योगिकी दृष्टिकोण अपना रहे थे, वहीं उनमें से अनेक अपने समय की राजनीतिक चुनौतियों के प्रति बिल्कुल उदासीन रहे और समग्र रूप से आधुनिक सभ्यता या यहाँ तक कि मानवीय परिस्थितियों के प्रति गहरी निराशाजनक स्थिति में रहे।

तथापि, इसी अवधि के दौरान, कलाकारों के एक अन्य वर्ग ने सामाजिक यथार्थवाद की शैली के माध्यम से अपनी कला कृतियों में अधिक प्रगतिशीलता और सामाजिक परिवर्तनों के प्रति आशावादी दृष्टिकोण की कलात्मक अभिव्यक्ति की। जर्मनी में बर्टोल्ड ब्रेख्त और ब्रिटेन के जॉर्ज बर्नाड शॉ और रूस में मैक्सिम गोर्की जैसे उपन्यासकारों और अलेक्जेन्डर ब्लोक जैसे कवियों की इस प्रवृत्ति के दिशा निर्देशकों में गणना की जा सकती है। ये कवि और लेखक, समाज के समतावादी परिवर्तन के आदर्श से प्रेरित थे। बोल्शेविक क्रांति और सोवियत संघ के गठन ने अनेक लोगों को प्रेरित किया और कलात्मक प्रवृत्ति के रूप में सामाजिक यथार्थवाद ने इन्हें अनेक गैर–कम्युनिस्ट देशों में, जो कि समानान्तर रूप से उपनिवेशवाद, सामंतवाद और पूंजीवादी शोषण के हिंसक जाल में फंसे हुए थे, पर्याप्त भाग में सृजनात्मक कार्य करने के लिए प्रेरित किया। उदाहरणतया भारत में 1940 में वामपंथियों के स्पष्ट समर्थन से मजाज और जोश जैसे प्रबुद्ध शायरों

ने और अन्य विद्वान लेखकों जैसे प्रेमचंद ने समकालीन ग्रामीण जीवन के सामजिक सरोकारों का बहुत ही गहन यथार्थवादी चित्रण किया। इसी प्रकार चीन में, लू हसुन जैसे प्रबुद्ध और महान यथार्थवादी लेखकों ने, जिनकी लेखकीय प्रवृत्तियाँ समाजवाद से प्रेरित थीं, अपनी महान कृतियाँ लिखीं जबकि लैटिन अमेरिका में संयुक्त राष्ट्र (यू एस) विरोधी प्रतिरोध ने पाब्लो नेरूदा के काव्य को प्रेरित किया।

वास्तव में 19वीं और 20वीं सदी के दौरान एशियाई, अफ्रीकी और लैटिन अमरीकी देशों में कला और साहित्य की समृद्धि, हाल ही के वर्षों में हुए विकास में से एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विकास रहा है। इन देशों के कलाकारों ने एक ओर तो राष्ट्रीय महत्त्वाकांक्षाओं को अभिव्यक्ति दी और इसके साथ ही अपने समाजों में उभर रही सामंतवादी और पूँजीवादी शोषण की समस्याओं का भी सामना किया, वहीं दूसरी ओर तीव्र गति से आती आधुनिकीकरण की लहर के साथ–साथ अपनी परंपराओं के संश्लेषण की विशिष्ट चुनौतियों का भी सामना किया। सौ वर्ष पूर्व के प्रबुद्ध सृजनात्मक लेखक रवीन्द्रनाथ टैगोर से लेकर उपनिवेशवादी काल के बाद तक सृजित, लैटिन अमेरिका में गैब्रियल गर्सिया मर्कीज और अफ्रीका के चिनुआ ऐसीब की मधुर रचनाएँ, हाल ही में सृजित महान सर्जनात्मक साहित्यिक रचनाएँ हैं।

### दर्शनशास्त्र और मानव विज्ञान

विद्यार्थियों के संदर्भ में, विश्वविद्यालयों के संकाय और प्रकाशनों की स्थितियों और मानव विज्ञानों (सामाजिक विज्ञान और मनोविज्ञान) में, बीसवीं सदी के दौरान और विशेष रूप से द्वितीय विश्व युद्ध के उपरांत अद्भुत विस्तार दृष्टिगोचर हुआ।

तथापि, प्रकाशनों के लिए बढ़ती होड़ और सामाजिक वैज्ञानिकों में हुई प्रगति के बढ़ते विस्तार के साथ–साथ विशेषज्ञता प्राप्त करने और विद्वता के लिए अपरिचित एवं क्लिष्ट तकनीकी शब्दों के प्रयोग और विशिष्ट शब्दावली के इस्तेमाल की प्रवृत्ति में भी बहुत वृद्धि हुई है, जो कि समकालीन शैक्षिक लेखन को पर्याप्त सीमा तक चित्रित करती है।

*महान विचारक*

*चित्र 28.4.1 ई. वी. थाम्पसन*

*चित्र 28.4.2 अमर्त्य सेन*

वास्तव में, सामाजिक और दर्शनशास्त्रीय जिज्ञासा की समग्र और गैर–विशेषज्ञतापूर्ण समझ से विशेषज्ञता पूर्ण अध्ययन के विषयों तक के उद्भव की जड़ों को हम उन्नीसवीं सदी के यूरोप में ढूँढ सकते हैं जब अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान, मानव–विज्ञान और मनोविज्ञान धीरे–धीरे अपनी विशिष्ट पद्धतियों के साथ, पृथक अध्ययन विषयों के रूप में विकसित हुए और इन्होंने संबद्ध सरोकारों को विस्तृत बना दिया।

इसी दौरान, ए. जे. अय्यर और विटजेन्स्टीन जैसे विचारकों के प्रभाव के कारण दर्शनशास्त्र ने अपनी विचार दृष्टि की गति को नैतिकता और राजनीति के व्यापक प्रश्नों के अन्वेषण से भाषा और प्रतीकों, जिनके माध्यम से मुद्दों को व्यक्त किया जाता है, के स्पष्टीकरण के साथ और अधिक संकीर्ण और गहन सरोकार से जोड़ दिया।

इसका अभिप्राय यह नहीं है कि कार्यकारणता (कॉजेशन), मानव प्रकृति और परिवर्तनों से संबद्ध व्यापक प्रश्न, आज उठाये नहीं जा रहे हैं। बर्ट्रेन्ड रसेल, नोऐम चोम्स्की और लुईस आल्थुस्सर जैसे महान विचारकों ने सरोकारों के व्यापक संदर्भों से संबद्ध विषयों के संबंध में लेखन जारी रखा।

### पाठगत प्रश्न 28.2.1

1. बीसवीं सदी के चार प्रतिभाशाली वैज्ञानिकों के अनुसंधानों सहित, उनके नाम लिखें।

2. बीसवीं सदी के दौरान विभिन्न राष्ट्रों में हुए उन प्रमुख कला आंदोलनों के नाम लिखें, जिन्होंने सभी राष्ट्रों में कलाकारों और लेखकों को प्रभावित किया।

3. कुछ ऐसे विचारकों के नाम लिखें जिन्होंने ऐसे समय में नैतिक और राजनीतिक मुद्दों पर महत्त्वपूर्ण नवीन दृष्टिकोण से अपना लेखन जारी रखा जबकि गत सदी में विचारपूर्ण लेखन में अति–विशेषज्ञता और अपरिचित क्लिष्ट तकनीकी शब्दावली, विशिष्ट शब्दावली का अत्यधिक वर्चस्व हो चुका था।

## 28.3 सांस्कृतिक संस्थाएँ और प्रतीक

वैज्ञानिकों, दर्शनशास्त्रियों और कलाकारों के सांस्कृतिक इतिहास के महत्त्वपूर्ण पक्षों के बदलते सरोकारों के साथ–साथ, सांस्कृतिक संरचनाओं, जैसे धर्म, लोक आख्यान, भाषा, शिक्षा–प्रणालियों और मास मीडिया में आए कोई भी परिवर्तन भी, सांस्कृतिक परिवर्तनों के अध्ययन में अत्यन्त उल्लेखनीय स्थान रखते हैं। मानवविज्ञानी इन सांस्कृतिक संस्थाओं या प्रतीक प्रणाली की ओर संकेत करते हैं, जो इसके भागीदारों के मूल्यों और उनके वैश्विक दृष्टिकोण की संबद्ध पद्धति का प्रतिनिधित्व करती हैं। ऐसे सांस्कृतिक प्रतीकों का बहुत ऐतिहासिक महत्त्व है, न सिर्फ इसलिए कि यह सूचना मनोरंजन और आस्था या जीवन में अर्थ के लिए मानव की मूल अनिवार्यताओं को संबोधित करते हैं बल्कि इसलिए भी कि यह विभिन्न सामाजिक समूहों (वर्गों में

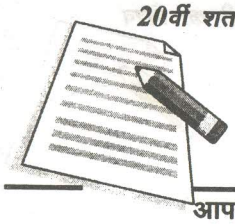

आपकी टिप्पणियाँ

लोकप्रिय) मूल्यों, विश्वासों, भावनाओं और सामान्यतया दिखने वाले आचार–व्यवहार के तरीकों को भी दिशा देते हैं।

परन्तु यहाँ ध्यान देने की मुख्य बात यह है कि अधिकांश समाजों में सांस्कृतिक संस्थाओं, जैसे शिक्षा और मास मीडिया, का विनियमन और नियंत्रण ज्यादातर प्रभावी आभिजात्य वर्ग के हाथों में है जो सम्पत्ति के साथ–साथ सत्ता के केन्द्रों को भी नियंत्रित करते हैं। आप जाति प्रथा, सती प्रथा इत्यादि से संबंधित हिंदु विश्वासों पर ब्राह्मणों के प्रभाव से पहले ही परिचित हैं जिसने उच्च जातियों को, विशेष रूप से प्राचीन भारत में, शूद्रों की मेहनत के फल भोगने का एकाधिकार प्राप्त किया। इसी प्रकार, आधुनिक युग में पूंजीवादी वर्ग, व्यापक जन मानस (मास मीडिया) को इस प्रकार प्रभावित करने का प्रयास करता है और प्रचलित विश्वासों और आचार–व्यवहारों को इस प्रकार ढालने का प्रयास करता है कि जिस व्यापक जन मानस का शोषण, बलपूर्वक अथवा बिना किसी बल प्रयोग के किया गया है। उस पर उनके वर्चस्व की सुविधा उनको मिलती रहे। सांस्कृतिक संस्थाओं के इस सामान्य स्वरूप में संचलन में उसकी विशिष्टताओं या 'अभिप्रायों' में अनेक विविधताएँ देखने में आती हैं। निस्संदेह पिछली सदी तेजी से परिवर्तन का काल था जब न सिर्फ शिक्षा के संदेश और निहित विषयवस्तु धर्म और लोक संस्कृति इत्यादि में मौलिक परिवर्तन आए बल्कि सभी देशों में इन प्रमुख सांस्कृतिक संस्थाओं के परस्पर संतुलन में भी अनेक परिवर्तन आये।

### भाषाएँ

किसी भी संस्कृति के प्रमुख घटकों में से उसकी भाषा भी एक मुख्य घटक है। बीसवीं शताब्दी के दौरान विश्व के भाषायी मानचित्र पर जनमानस द्वारा बोली जा रहीं स्थानीय बोलियों, यहाँ तक कि संस्कृत और लैटिन जैसी प्रतिष्ठित भाषाओं में भी, नाटकीय परिवर्तन देखने में आए जो कि सदियों से विद्वानों के बीच ज्ञान के लिए विशिष्ट माध्यम रही हैं और जिन्होंने उभरती हुई राष्ट्रीय पहचानों को अभिव्यक्त करने के लिए उन क्षेत्रों द्वारा अपनाई गई विशिष्ट राष्ट्रीय भाषाओं को दिशा दी।

ऐसा अनुमान है कि आज भी विश्व में लगभग 6500 भाषाएँ बोली जाती हैं। इनमें से लगभग आधी भाषाएँ छोटे समुदायों द्वारा बोली जाती हैं और यह पहले ही लुप्त होने की प्रक्रिया में हैं। दस प्रमुख भाषाएँ पहले ही विश्व की आधी से ज्यादा आबादी की मातृभाषाएँ हैं (स्त्रोत : फाउंडेशन फॉर एनडेन्जरड लैंग्युएनिज वेबसाइट)

हाल ही में विश्व के भाषाई समूह में परिवर्तन की एक दिलचस्प विशेषता रही है कि संपूर्ण विश्व में शिक्षित लोगों के बीच द्विभाषिकता या कम से कम दो भाषाओं को बोलने–समझने की बढ़ती प्रवृत्ति का विकास हुआ। विशेष रूप में अंग्रेजी भाषा बढ़ते वैश्वीकरण और इंटरनेट के विकास के साथ–साथ अपनाई जाने वाली द्वितीय भाषा के रूप में उभर रही है। जबकि चीनी भाषा अभी भी विश्व में सबसे बड़ा भाषाई समूह है, अंग्रेजी जानने वाले लोगों की संख्या (विश्व जनसंख्या का 10 प्रतिशत दूसरे नंबर पर है और अंग्रेजी को दूसरी भाषा के रूप में जानने वालों की संख्या विश्व में सर्वाधिक है। बढ़ती शिक्षा और प्रचार–प्रसार के प्रभाव के अधीन भाषाओं के बीच परस्पर आदान–प्रदान से हुआ मिश्रण बीसवीं सदी में भाषाओं के बीच हुआ एक अन्य मुख्य विकास रहा है। जबकि अंग्रेजी ने, फ्रांसीसी और हिंदी सहित, अन्य भाषाओं से अनेक नए शब्दों को अपनाया है, तो भारत

के शिक्षित वर्ग में हिंगलिश या कहें हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी की मिली–जुली बोली जाने वाली भाषा का विकास भी इस संदर्भ में रेखांकित किये जाने योग्य है।

### लोक परंपराएँ

बीसवीं सदी के दौरान विभिन्न समाजों की लोकप्रिय संस्कृति की लोक कथाओं की स्थितियों में भी बड़े परिवर्तन देखने में आए। पिछली सदी के दौरान विकासशील जगत में दर्जनों पारम्परिक कलाएँ और मनोरंजन के साधन, जैसे–कठपुतलियों के प्रदर्शन कहानियां सुनाना, पौराणिक नाटक, लोक नृत्यों आदि, को धीरे–धीरे हाशिये पर सरका दिया गया है। पुराने चले आ रहे गीत, कहानियां और पौराणिक आख्यान, जिन्हें विभिन्न समुदायों द्वारा अपने विचारों के सम्प्रेषण और भावी पीढ़ियों के लिए मूल्यों के रूप में प्रयोग किया जाता रहा है, तेजी से लुप्त हो गए हैं और उनके स्थान पर आधुनिक प्रचार–प्रसार के माध्यम से व्यावसायिक रूप में तैयार किए गए मनोरंजन और समाचार के कार्यक्रमों ने अपनी जगह बना ली है।

फिर भी, राज्यों और नागरिक एजेंसियों द्वारा, जैसा कि भारत में किया जा रहा है, अब वित्तीय सहायता और संस्थागत समर्थन से इसे बचाने का प्रयास किया जा रहा है।

### (मास मीडिया) जन संचार माध्यम

दूसरी तरफ रेडियो, सिनेमा, ग्रामोफोन रिकॉर्ड, टेलीविजन, कैसेट और सीडी और कम्प्यूटरों और मोबाइल फोनों ने तेजी से जीवन में जगह बनाई है और हमारे सूचना–प्राप्ति के तरीकों में, मनोरंजन के साधनों में और परस्पर संबंध स्थापित करने में या यहां तक कि सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिए हैं।

यद्यपि सिनेमा और टेलीविजन जैसे कुछ नए माध्यमों को चार्ली चैपलिन, सत्यजीत राय और स्टीवन स्पिलबर्ग जैसे सदी के महान कलाकारों द्वारा अत्यन्त उच्च कोटि के कलात्मक फिल्मों और शैक्षिक कार्यक्रमों के निर्माण के लिए प्रयुक्त किया गया है। व्यापक श्रोता वर्ग के लिए प्रचार और प्रतियोगिता के लिए अधिकाधिक सनसनी परक सेक्स आधारित और हिंसात्मक कार्यक्रमों को प्रोत्साहन दिया है।

जन संचार (मास कम्युनिकेशन) और मनोरंजन के इन नए चैनलों ने जो ध्यान आकर्षित किया है वह अपने आप में ऐतिहासिक है। अतः एक सर्वेक्षण के दौरान यह पाया गया कि 1980 में अमेरिका में अधिकांश परिवारों के पास दो टी.वी सेट थे और वहां का एक साधारण बालक अपनी पढ़ाई या खेलों से दुगुना समय टेलीविजन के सामने गुजारता था।

### धर्म

पारंपरिक कला के रूपों और लोक आख्यानों के अतिरिक्त, एक अन्य मुख्य सांस्कृतिक संस्था धर्म हैं जिसकी भूमिका पिछली सदी से अधिकांश समाजों में सीमित हुई है। विकसित और विकासशील दोनों देशों में, पहले से प्रभावी धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोणों और निष्ठाओं जैसे मानववाद, राष्ट्रवाद और लोकतंत्र ने पिछली सदी से लोगों में व्यापक आंदोलनों और प्रतिबद्धताओं के लिए प्रेरित किया है। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि

आपकी टिप्पणियाँ

राष्ट्रवादी (जो खुलेआम राष्ट्र राज्य के प्रति निष्ठा का दावा करते हैं) या मानवतावादी (जो मानव जीवन को मृत्यु के उपरांत जीवन से ज्यादा मूल्य देते है), साथ–साथ धार्मिक नहीं हो सकते। निस्संदेह, लगभग सभी देशों में, अधिकतर लोग (विशेष रूप से महिलाएँ) आज भी स्वयं को आस्थावानों में ही समझते हैं। उदाहरणार्थ 1981 में यू एस में धार्मिक आस्थाओं पर हुए एक सर्वेक्षण में, लगभग केवल 10% लोगों ने स्वयं को नास्तिक बताया। इसके अतिरिक्त, तीर्थ यात्राओं और व्यक्ति साहित्य और भजनों इत्यादि में पिछली सदी के दौरान अत्यधिक वृद्धि देखने में आई है।

फिर भी, दिन–प्रतिदिन के जीवन में धर्म का सिकुड़ता हुआ प्रभाव इस तथ्य में भी स्पष्टतया दिखाई देता है कि अभिवादन (ग्रीटिंग्स), खानपान, उत्सवों, सार्वजनिक समारोहों इत्यादि में, विशेष रूप में शहरों में धर्म की व्याप्ति उस रूप में नहीं है जिस रूप में यह सौ वर्ष पहले हुआ करती थी। दूसरे, धार्मिक मूल्यों और दृष्टिकोणों ने राज्य कला इत्यादि जैसी अन्य संस्थाओं को पूरी तरह वैसे संबद्ध नहीं किया है जैसे यह पहले करता था और आज हमारी अनेक प्रथाएँ वास्तव में उन सामान्य धार्मिक विश्वासों के बिल्कुल विपरीत हैं। अतः केवल एक सदी पूर्व, ज्यादातर विवाह, यहाँ तक कि पश्चिम में भी, चर्च में होते थे और बपतिस्मा (ईसाई धर्म में नामकरण संस्कार), हर नवजात शिशु के लिए अनिवार्य था। 1990 तक यह देखने में आया कि फ्रांस में केवल 30 जोड़ों की चर्च में शादियां हुईं। तलाक और गर्भपात जिसकी चर्च के द्वारा मनाही थी, अब न सिर्फ पश्चिम के अनेक देशों में विधिसम्मत बना दिए गए थे बल्कि अब ज्यादा से ज्यादा लोग इन्हें स्वीकार करने लगे थे और अब इन्हें कलंक नहीं समझा जाता था। एशिया और अफ्रीका के अनेक देशों में भी इसी प्रकार की प्रवृत्तियां दिखाई देती हैं।

**शिक्षा**

आज जबकि धर्म ने बढ़ते सामाजिक क्षेत्रों में सक्रिय नियमों और आदर्शों को परिभाषित करना बंद कर दिया है, इसके समानान्तर धर्मनिरपेक्षता और वैज्ञानिक ज्ञान पर आधारित आधुनिक शिक्षा में चमत्कारिक वृद्धि देखने में आई है। पढ़ने, लिखने और गणना करने में प्रवीण और अपने राष्ट्रीय इतिहास और विरासत पर गर्व करने वाले नागरिकों को न सिर्फ राज्य और औद्योगिक तथा अर्थव्यवस्था के सर्विस सैक्टरों में आधुनिक पदों पर तैनात करने की सख्त जरूरत महसूस की गई है बल्कि ऐसे नागरिकों के एक समरूप निकाय बनाए जाने की भी जरूरत भी महसूस की गई है जो अपने राष्ट्र राज्यों के प्रति निष्ठावान हों।

बहुत से पश्चिमी देशों ने उन्नीसवीं सदी में ही स्कूली शिक्षा को अनिवार्य और सस्ती अथवा निःशुल्क कर दिया था। पिछली सदी में एशिया और अफ्रीका के नव–स्वतंत्रता प्राप्त राष्ट्रों ने भी इसी दिशा में प्रयास किए, यद्यपि सीमित संसाधनों और उपनिवेशवादी भारी बोझ और उनकी शिक्षा प्रणालियों में विदेशी पैटर्न के कारण इन्हें बहुत कम सफलता प्राप्त हुई। हमारे देश में 1980 तक भी लगभग आधी आबादी अशिक्षित थी और सिर्फ पिछले दो दशकों में अशिक्षितों को संख्या में औसतन 25% की कमी आई है।

इस दौरान बीसवीं सदी के मध्य तक आते–आते विश्वविद्यालयी स्तर की शिक्षा में भी तेजी से विस्तार हुआ। अतः 1939 में ब्रिटेन और फ्रांस जैसे विकसित देशों में कुल आबादी के 0.1% लोगों ने कॉलेजों में अपने नाम लिखवाये। तथापि, 1990 के दशक

तक इन राष्ट्रों की कुल आबादी की लगभग 2 प्रतिशत आबादी कॉलेज की शिक्षा प्राप्त कर रही थी (लगभग 20 गुणा वृद्धि)। निस्संदेह, 1960 और 1980 के दौरान, विकासशील देशों में भी उच्च शिक्षा का विस्तार चमत्कारिक गति से हुआ और इसी अनुपात में छात्रों ने निर्धन देशों में भी शीघ्र ही विश्वविद्यालयों में अपने नाम लिखवाये, यद्यपि उनकी व्यावसायिक और प्राथमिक शिक्षा अभी भी अविकसित ही थी। इसके अलावा, इनकी अर्थव्यवस्थाओं में लघु स्तर के संगठित क्षेत्र के कारण शिक्षित बेरोजगारों की समस्या भी इन देशों में अत्यधिक विकट थी।

विश्वविद्यालयों के विद्यार्थी सामाजिक और सांस्कृतिक विरोधों में सक्रिय थे। व्यापक पैमाने एवं समकालिक छात्र विरोध 1968 में न्यूयॉर्क और सान फ्रांसिस्को से लेकर पैरिस और पेरुग्वे तक जंगल की आग की तरह फैला था, इसकी मौलिकता के लिए आज भी याद किया जाता है क्योंकि इन्होंने न सिर्फ अपने–अपने देशों में राज्य की शोषणकारी नीतियों और शैक्षिक विशिष्ट वर्ग का विरोध किया बल्कि वियतनाम में यू एस के हस्तक्षेप को चुनौती देकर बृहदाकार अन्तरराष्ट्रीयवाद और युद्ध विरोधी साम्राज्यवाद, विरोध भावनाओं को जागृत किया। फिर भी, हाल ही के बीते दशकों में विशेष रूप से सोवियत संघ के विघटन और पलायनवादी मनोरंजन चैनलों की बाढ़ आने के बाद, पूरे विश्वस्तर पर विद्यार्थी आंदोलनों में कुछ शांति की स्थिति दिखाई देती है।

### पाठगत प्रश्न 28.3

1. दिये गए पाठ में 'सांस्कृतिक संस्थाएँ' शब्द का क्या अभिप्राय है? संस्कृति की कुछ प्रमुख संस्थाओं के नाम लिखें।

   ---

2. बीसवीं सदी के दौरान विश्व (ग्लोब) के भाषाई पैटर्न में किस प्रकार के परिवर्तन आए?

   ---

3. जन संचार (मास कम्युनिकेशन) के विभिन्न नए चैनलों के नाम लिखें जिन्होंने आजकल के समाचार, सूचना प्राप्त करने और मनोरंजन और बातचीत के तरीकों में क्रांतिकारी परिवर्तन किया है।

   ---

## 28.4 वैश्वीकरण

आधुनिक शिक्षा, मास मीडिया (जन संचार माध्यम) और धर्मनिरपेक्ष राजनीतिक सिद्धांतों के उदय ने, बीसवीं सदी के एक अन्य महत्त्वपूर्ण विकास में योगदान दिया है और जिसे वैश्वीकरण का नाम दिया है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया को बढ़ते बहु–राष्ट्रीय व्यापार, उत्पादन और वित्त के साथ–साथ राजनीतिक और कल्याणकारी एजेंसियों, जैसे संयुक्त राष्ट्र संघ और व्यावसायिक निकायों, जैसे विश्व सामाजिक मंच (वर्ड सोशल फोरम) ने परस्पर–निर्भरता के रूप में अत्यधिक संख्या में व्यक्तियों को जोड़ने वाले एक समेकित विश्व के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें धनी लोगों को महत्त्व दिया गया।

वैश्वीकरण बहु–राष्ट्रीय निगमों के विकास, नगरों के मॉल्स और इंटनेट पर संपूर्ण विश्व से आये सामान और सेवाओं की उपलब्धता, विचारों, समाचारों और सूचनाओं को पूरे विश्व में सस्ती दरों पर और तुरंत भेजा जाना, ग्लोबल सामानों और फैशन मार्किट, खानपान और मनोरंजन में ग्लोबल झलक इत्यादि सभी कुछ स्पष्टतया आज के वैश्वीकरण को ही दर्शाते हैं। यहां यह समझना बहुत महत्त्वपूर्ण है कि, बीसवीं सदी के दौरान, ग्लोबलाइजेशन का उद्भव अचानक से नहीं हुआ। विश्वस्तर पर व्यापारिक नेटवर्क और चिकित्सा और तकनीकी ज्ञान के प्रवाह की धारा के अवशेष प्राचीन कालावधियों में भी खोजे जा सकते हैं। यूरोपियन शक्तियों द्वारा गैर–यूरोपियन देशों के औपनिवेशीकरण की प्रक्रिया ने बहुत अद्भुत ढंग से विश्व के असमान एकीकरण को बढ़ावा दिया जो सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभ में शुरू हुई थी। परन्तु, शक्तिशाली और सुदूर क्षेत्रों तक पहुंच वाले ट्रांसनेशनल कार्पोरेशनों और संगठनों का विकास और ग्लोबल मीडिया नेटवर्क का विकास खासतौर पर केवल पिछली शताब्दी के दौरान ही हुआ।

जबकि, ये न्यूज चैनल सामान, सेवाओं और सूचना के प्रवाह को संभव बनाते हैं और आशा की जा सकती है कि यह कुछ क्षेत्रों में और अधिक चुनाव की सुविधा और शायद समृद्धि भी लायेंगे, परन्तु वास्तविकता यह है कि इन्होंने न सिर्फ अत्यंत प्राचीन सांस्कृतिक पद्धतियों और सामाजिक प्रथाओं को तहस–नहस कर दिया है बल्कि यह संपूर्ण विश्व में धनियों और निर्धनों के बीच असमानताओं को और अधिक तेज करने के अतिरिक्त, संपूर्ण विश्व को सामान्यतया पश्चिमी आदतों और मूल्यों की तरफ मोड़ रहे हैं।

दुर्भाग्यवश, संपूर्ण विश्व में पश्चिमी विचारों और आदतों के पुनः आगे आने से, स्वतंत्रता, समानता और लोकतंत्र के महान विचारों का गैर–पश्चिमी विश्व में स्थानांतरण, पश्चिमी व्यक्तिवाद, भौतिकतावाद, संयुक्त परिवार और सामुदायिक संबंधों के टूटने, एकाकीपन, मानसिक विक्षिप्तता इत्यादि जैसे संक्रमणों का प्रसार पहले की तुलना में अत्यधिक हो गया है। इससे भी ऊपर जाकर देखें तो अनेक विकासशील देशों में, बेलगाम गरीबी, भ्रष्टाचार, अपराधीकरण, निरंकुशता या तानाशाही समान रूप से अभी भीं परिस्थितियों को अधिकाधिक जटिल बना रही हैं।

इस परिदृश्य में, युवा पीढ़ी के कंधों पर बड़ी भारी जिम्मेदारी है कि वे मौजूदा प्रलोभनों के विकल्पों में से सही चुनाव करें और इस नई सदी में सांस्कृतिक और सामाजिक परिवर्तनों में आशंकित तेजी आने के तूफान के बीच से निकलकर अपने–अपने देशों की दिशा निर्दिष्ट करें।

## आपने क्या सीखा

नेताओं, युद्धों और क्रांतियों का समय–समय पर विश्व पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा है, परंतु जनसांख्यिकी और सामाजिक श्रेणियों में होने वाले धीरे–धीरे और अप्रत्यक्ष परिवर्तन और व्यापक स्तर पर समन्वित विश्वास, मूल्य और आचार–व्यवहार भी समेकित रूप से परिवर्तन लाते हैं।

बीसवीं शताब्दी दूसरे किस्म की प्रमुख तब्दीलियों का भी एक अद्वितीय काल रहा है। अतः इस अवधि के दौरान विज्ञान और प्रौद्योगिकी की गति में चमत्कारिक विकास हुआ, जबकि

आपकी टिप्पणियाँ

हुए, परन्तु प्रमुख परिवर्तनों के उदाहरणों में शिक्षा का प्रसार और शैक्षिक संस्थाओं के साथ–साथ मास मीडिया के जरिये विचारों का प्रसार और मनोरंजन, समाचारों और ज्ञान के उत्पादों में बढ़ता वैश्वीकरण (ग्लोबलाइजेशन) सम्मिलित है।

2. सामाजिक वैज्ञानिकों द्वारा 'संस्कृति' शब्द को दो पृथक तरह से प्रयुक्त किया गया है : कला, साहित्य, दर्शन इत्यादि जैसे सर्जनात्मक कार्यों का संदर्भ देने के लिए और किसी समुदाय के सामान्य मूल्यों, विश्वासों और व्यवहार के तरीकों को रेखांकित करने के लिए, जो कि उसने साझा इतिहास, भौतिक परिवेश और भाषा की परंपराओं और लोक आख्यानों इत्यादि से हासिल किए होंगे। जबकि संस्कृति की पहली धारणा विशेष रूप से उच्च कोटि के प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों से संबद्ध है तो दूसरी ओर कुल मिलाकर सामाजिक समूहों से संबंधित है। तथापि दोनों धराणाएं, मुख्यतः मानसिक घटनाक्रम के संबंध में ही बात करती हैं।

3. संस्कृति शब्द की अभिव्यक्ति उतनी ही कठिन है, जितनी कि यह सामाजिक विज्ञानों के लिए महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि विभिन्न विचारकों ने इसे विविध प्रकार से प्रयुक्त किया है और यह शब्द उन इन्द्रियगोचर घटनाक्रमों की ओर संकेत करता है, जो न तो प्रत्यक्ष हैं और न ही उन्हें आंका जा सकता है।

28.2

1. बीसवीं सदी के विशिष्ट वैज्ञानिकों में शामिल हैं : मैडम क्यूरी (जिसने रेडिएशन की प्रक्रिया पर काम करते समय अपने जीवन का बलिदान कर दिया), अलबर्ट आईंस्टीन (सापेक्षता के सिद्धांत का श्रेय इनको जाता है); फिनमैन (सब एटॉमिक पार्टिकल्स के तरंग सिद्धांत की खोज इन्होंने की) और चार्ल्स बैज (जिसने कम्प्यूटरों के सृजन में अग्रणी कार्य किया)।

2. आधुनिकतावाद, सामाजिक यथार्थवाद, उत्तर आधुनिकतावाद

3. बरट्रैंड रसेल, नोएम चोम्स्की, ई.पी. थाम्पसन, अमर्त्यसेन

28.3

1. यहाँ सांस्कृतिक संस्थाओं का अभिप्राय है प्रतीक प्रणालियाँ (सिम्बल सिस्टम्स) जिन्हें किसी समुदाय की अभिवशत्तियों (रुख), विश्वासों और मूल्यों को आकार देने के लिए तैयार किया गया था। सभी समाजों में सामान्यतया पाए जाने वाली कुछ मुख्य सांस्कृतिक संस्थाएं हैं, धर्म, शिक्षा, भाषा, लोक आख्यान और रीति–रिवाज और जनसंचार (मास कम्युनिकेशन) के साधन।

2. बीसवीं सदी के दौरान एशियन और अनेक अफ्रीकन देशों में भी, स्थानीय बोलियों और प्रतिष्ठित भाषाओं से ऊपर उठकर राष्ट्रीय भाषाओं या मुख्य प्रादेशिक भाषाओं में और अधिक संघटन देखने में आया। इसी के साथ–साथ अंग्रेजी वैश्वीकृत विश्व को जोड़ने वाली एक मुख्य भाषा के रूप में उभरी है।

3. टेलीफोन, रेडियो, सिनेमा, टेलीविजन, टेप रिकॉर्डर, काम्पैक्ट डिस्क, कंप्यूटर, कम्युनिकेशन, सैटेलाइट और मोबाइल फोन।

कलाओं, दर्शन और साहित्य में विश्व स्तर पर आंदोलन हुए, जैसे आधुनिकतावाद, सामाजिक यथार्थवाद और उत्तर–आधुनिकतावाद और सर्वव्यापी (यूनीवर्सल) सांस्कृतिक संस्थाएं, जैसे–भाषा, धर्म, क्रिया, शिक्षा और मास मीडिया इत्यादि के कार्य–व्यवहार में बहुत बड़े स्तर पर मात्रात्मक और गुणात्मक परिवर्तन आए।

चारों ओर तीव्र गति से होने वाले इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप, अब संपूर्ण विश्व भी अधिकाधिक वैश्वीकृत (ग्लोबलाइज्ड) बन रहा है। इसमें न सिर्फ विश्व के अनेक देशों में बढ़ता एकीकरण वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन और उपभोग के संदर्भ में ही सम्मिलित नहीं है, बल्कि इनमें समाचारों, सूचनाओं, विचारों और मनोरंजन के साधनों के जरिए एकीकरण का भी समावेश है।

जबकि, बढ़ती हुई सांस्कृतिक तब्दीलियां आज के युवाओं को सीखने और गतिशीलता के नए अवसर प्रदान करती हैं, इसके साथ ही उनके समक्ष बढ़ती ग्लोबल प्रतियोगिता, अहंकार में वृद्धि, उपभोक्तावाद और भोगवाद की चुनौतियां भी खड़ी करती हैं, जिसके परिणामस्वरूप परिवार और देश से परायापन की स्थितियां पैदा करती हैं और एक न्यायपूर्ण, समृद्ध और मुक्त समाज बनाने के लिए सामूहिक प्रयास करने की चुनौती भी देती हैं।

## पाठांत प्रश्न

1. बीसवीं सदी के दौरान विज्ञान और प्रौद्योगिकी में हुआ अभूतपूर्व विकास एक अमिश्रित वरदान नहीं था। समीक्षा करें।

2. इस तथ्य के बावजूद कि विश्व में अधिकतर लोग अभी भी स्वयं को धार्मिक कहते हैं, सार्वजनिक जीवन में धर्म की भूमिका, हाल के कुछ समय में काफी कम हुई है। व्याख्या करें?

3. बीसवीं सदी के दौरान हुए सांस्कृतिक परिवर्तन में शिक्षा और विद्यार्थियों की भूमिका का उल्लेख करें।

4. वैश्वीकरण और पश्चिमीकरण में परस्पर संबंध की व्याख्या करें और साथ ही यह भी उल्लेख करें कि भारत जैसे देशों की संस्कृतियों में यह किस प्रकार की चुनौतियाँ और अवसर प्रदान करती हैं?

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

28.1

1. बीसवीं शताब्दी में हुए क्रांतिकारी परिवर्तनों के उदाहरणों में 1917 में सोवियत यूनियन का जन्म और 1947 से, भारत के नेतृत्व में, एशिया और अफ्रीका के औपनिवेशिक राष्ट्रों की स्वतंत्रता शामिल है। इसी कालावधि के दौरान धीरे–धीरे

## पाठांत प्रश्नों के संकेत

1. देखें 28.2
2. देखें 28.3
3. देखें 28.3.6
4. देखें 28.4

### परियोजना कार्य

सांस्कृतिक परिवर्तन प्रायः धीमे और अप्रत्यक्ष होते हैं। परंतु 20वीं सदी के दौरान संस्कृति में भी पहले की तुलना में बहुत तेज गति से परिवर्तन देखनें में आए। अपने पूर्वजों से पूछे और उनके जीवनकाल में उनके द्वारा देखे गए कुछ सांस्कृतिक परिवर्तनों के कुछ उदाहरण दें, जिनसे इन परिवर्तनों को रेखांकित किया जा सके।

आजकल भारत में भारतीय संस्कृति के संदर्भ में सांस्कृतिक मूल्यों, कलाओं, संस्थाओं और रीति–रिवाजों की पृष्ठभूमि में मौजूद अनेकता में एकता के कुछ तत्वों का उल्लेख करें।

### शब्दावली

**संस्कृति** – एक ओर किसी समुदाय के साझा मूल्य, विश्वास और रीति–रिवाज और दूसरी तरफ कला, साहित्य, दर्शन शास्त्र या विज्ञान के क्षेत्र में हुए सृजनात्मक कार्य।

**वैश्वीकरण** – सभी देशों के आर–पार (क्रॉस कंटरी) संचार, मनोरंजन, व्यापार और राजनीति के बढ़ते नेटवर्क के माध्यम से बढ़ता हुआ विश्व एकीकरण।

**जरमॉन** – विद्वता प्रदर्शन के लिए दिन–प्रतिदिन में प्रयुक्त होने वाले शब्दों के स्थान पर तकनीकी और अपरिचित शब्दों को अत्यधिक प्रयोग में लाना।

**द्विभाषीकरण** – समान क्षमता के साथ दो भाषाओं का प्रयोग करने और समझने की योग्यता।

**आधुनिकतावाद** – बीसवीं शताब्दी का एक बड़ा सौंदर्यपूर्ण रुझान जिसे आधुनिक समाज को आंतरिक पीड़ाओं और समस्याओं की अभिव्यक्ति के लिए तलाश किया गया था।

**धर्म निरपेक्षता** – बढ़ती नास्तिकता को अनिवार्य रूप में समाविष्ट किए बगैर सार्वजनिक जीवन में धर्म की घटती हुई भूमिका।